भारत
लोग और अर्थव्यवस्था

कक्षा 12 के लिए भूगोल की पाठ्यपुस्तक
(सत्र IV)

लेखक
एस. के. शर्मा

संपादक
आर. पी. मिश्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जुलाई 2003
आषाढ़ 1925

PD 40T RP

ISBN 81-7450-208-4

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी ।।। इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : राजपाल
उत्पादन : अतुल सक्सेना
आवरण : बिज्ञान सूतार

रु. 45.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश ऑफसेट प्रिंटिंग प्रैस, सी-450, डी. एस. आई. डी. सी. नरेला इंडस्ट्रियल पार्क, दिल्ली-110040 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक *भारत : लोग और अर्थव्यवस्था* का प्रणयन कक्षा 12 के भूगोल के विद्यार्थियों के चौथे सत्र के लिए किया गया है। यह *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा — 2000* पर आधारित है, जिसका निर्माण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने विद्यालयी शिक्षा के उच्चतर माध्यमिक स्तर के लिए किया है।

तृतीय सत्र में मानव भूगोल के सिद्धांतों का अध्ययन पूरा करने के बाद, प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थियों को भारत के लोगों और अर्थव्यवस्था के अध्ययन की ओर प्रेरित करती है। इस पुस्तक में तृतीय सत्र की संकल्पनाओं और अर्जित ज्ञान का अनुप्रयोग किया गया है। यह आशा की जाती है कि द्वितीय और तृतीय सत्र में पढ़ी गईं संकल्पनाएं और तथ्यों से विद्यार्थीगण भली-भांति परिचित होंगे। इनकी सहायता से प्रस्तुत पुस्तक में समाहित विषयांगों को और अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

पुस्तक में पन्द्रह अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय को खंडों और उपखंडों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अध्याय में मानचित्र, सारणियाँ, बॉक्स तथा पुनरावृत्ति प्रश्नों के रूप में अभ्यास और परियोजना कार्य दिया गया है। बॉक्स में विषयांगों से संबंधित अतिरिक्त जानकारी भी दी गई है। ये विषय और विषयांगों के संबंधित मूल्यों के अधिग्रहण में सहायक होंगे। परीक्षकों से अपेक्षा है कि वे शिक्षार्थियों का मूल्यांकन करते समय बॉक्स में दी गई जानकारी से संबंधित प्रश्न नहीं पूछेंगे।

विषय विशेषज्ञों, कार्यशील अध्यापकों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में संलग्न विभागीय सदस्यों द्वारा इस पुस्तक की समीक्षा की गई है। परिषद् पुस्तक-निर्माण के विभिन्न चरणों में दिए गए उनके मूल्यवान योगदान के लिए आभारी है। मानचित्रों, आरेखों तथा रेखाचित्रों के निर्माण में योगदान के लिए परिषद् भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

आशा है, पुस्तक विद्यार्थियों की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी। पाठ्यचर्या का विकास एक सतत प्रक्रिया है। इस पुस्तक के परिष्कार के लिए भूगोलवेत्ताओं, शिक्षाविदों और अध्यापकों द्वारा अभिव्यक्त प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अप्रैल 2003
नई दिल्ली

पाठ्यपुस्तक समीक्षा कार्यगोष्ठी के सदस्य

आर. पी. मिश्र
पूर्व उप कुलपति
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

एस. के. शर्मा
प्रोफ़ेसर, भूगोल विभाग
डॉ. हरिसिंह गौड़ विश्वविद्यालय, सागर

यशपाल सिंह (अनुवादक)
पूर्व उप प्राचार्य
राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
शिक्षा निदेशालय, दिल्ली

एस. एस. रस्तोगी
पूर्व प्राचार्य
राजकीय बाल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
नई दिल्ली

एस. एल. गुप्ता
पूर्व रीडर
शहीद भगत सिंह कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

महिन्द्र सिंह
पी.जी.टी.
सर्वोदय बाल विद्यालय
राधेश्याम पार्क, दिल्ली

आर. एस. शुक्ला
रीडर, भूगोल विभाग
जी.बी. पंत पी.जी. कॉलेज
प्रतापगंज, जौनपुर

करतार सिंह
पूर्व सहायक कमिश्नर
केंद्रीय विद्यालय संगठन, नई दिल्ली

डी. एस. यादव
पूर्व प्राचार्य
जैन संस्कृत वाणिज्यिक
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
कूँचा सेठ, नई दिल्ली

शिव प्रकाश
पूर्व प्रवक्ता
सर्वोदय बाल विद्यालय
मयूर विहार, दिल्ली

जय लक्ष्मी सेठ
उप प्राचार्य
डी. टी. ए. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
मोतीबाग, नई दिल्ली

इंदु शर्मा
पी.जी.टी.
डिमांस्ट्रेशन स्कूल
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर

एन.सी.ई.आर.टी. संकाय
सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग

सविता सिन्हा
प्रोफ़ेसर

बी. के. बनर्जी
रीडर

जे. पी. सिंह (**संयोजक**)
प्रोफ़ेसर

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

चित्रों एवं मानचित्रों की सूची

विषय-सूची

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।
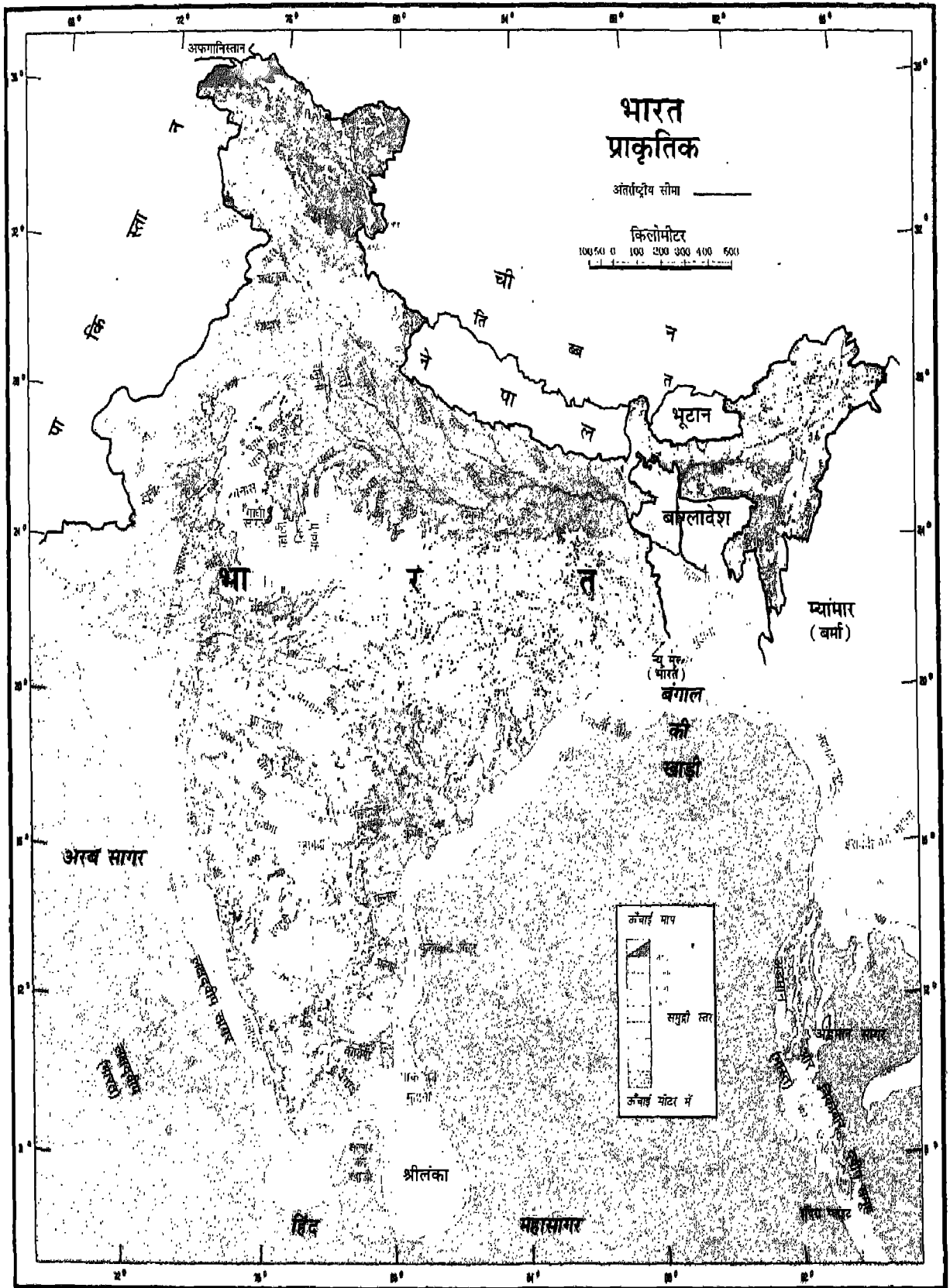
भारत
राज्य और केंद्रशासित प्रदेश, 2001
अंतर्राष्ट्रीय सीमा
राज्य/के.शा.प्र. सीमा
किलोमीटर
100 50 0 100 200 300 400 500
अफगानिस्तान
जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
पंजाब
हरियाणा
देहरादून
उत्तरांचल
दिल्ली
नई दिल्ली
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
पटना
बिहार
झारखंड
रांची
गांधीनगर
गुजरात
भोपाल
मध्य प्रदेश
छत्तीसगढ़
रायपुर
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
उड़ीसा
भुवनेश्वर
दादरा और नगर हवेली
सिलवासा
महाराष्ट्र
अरब सागर
मुंबई
हैदराबाद
आंध्र प्रदेश
पणजी
गोवा
कर्नाटक
बैंगलौर
चेन्नई
पांडिचेरी
तमिलनाडु
केरल
तिरुवनंतपुरम
कवरत्ती
श्रीलंका
हिंद
महासागर
बंगाल की खाड़ी
न्यू मूर
(भारत)
भूटान
अरुणाचल प्रदेश
इटानगर
गुवाहाटी
असम
नागालैंड
कोहिमा
शिलांग
मेघालय
इंफाल
मणिपुर
बांग्लादेश
त्रिपुरा
अगरतला
आइजोल
मिजोरम
म्यांमार
(बर्मा)
पोर्ट ब्लेयर
अंडमान सागर
इंदिरा प्वाइंट
ची
ने
पा
ल
चंडीगढ़, हरियाणा और पंजाब के प्रशासी
मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

1 अध्याय

जनसंख्या : वितरण और वृद्धि

भारत, चीन के बाद संसार के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देशों में से एक है। लेकिन क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का संसार में सातवां स्थान है। भारत की कुल जनंसख्या 102.7 (2001 में) करोड़ है, जो संसार की कुल जनसंख्या का 16.7 प्रतिशत है, लेकिन इसका क्षेत्रफल संसार के कुल क्षेत्रफल का मात्र 2.4 प्रतिशत ही है। भारत की जनसंख्या कितनी अधिक है, इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि यह (जनसंख्या) उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया की संयुक्त जनसंख्या से भी अधिक है। इतनी विशाल जनसंख्या के सीमित संसाधन पर निर्भर होने के कारण अनेक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उलझनें पैदा हो जाती हैं। यदि भारत की जनसंख्या वृद्धि दर और कुल जनसंख्या कम होती तो भारत एक राजनीतिक और आर्थिक महाशक्ति बन सकता था।

जनगणना

संसार के विभिन्न देशों में जनसंख्या के आंकड़े प्राय: जनगणना द्वारा एकत्रित किए जाते हैं। भारत में पहली जनगणना 1872 में हुई थी। लेकिन पहली पूर्ण जनगणना केवल 1881 में ही हुई। तब से प्रति दस वर्ष के अंतराल पर जनगणना की जाती रही है।

विशाल जनसंख्या प्राकृतिक तथा मानव द्वारा निर्मित संसाधनों पर एक बोझ है। गरीबी और पर्यावरण का ह्रास वर्तमान भारत की दो प्रमुख समस्याएं हैं। इन समस्याओं का मुख्य कारण भी जनसंख्या की अधिकता ही है। जनसंख्या की विशालता के अलावा, नृजातीय विविधता, अत्यधिक ग्रामीण स्वरूप और असमान वितरण, अन्य पहलू हैं जो सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया और गति को प्रभावित कर रहे हैं।

भारत गांवों का देश है। इसकी दो तिहाई (72.2 प्रतिशत) से अधिक जनसंख्या विभिन्न आकार के 5.81 लाख गांवों में रहती है। इन सभी ग्रामीण बस्तियों में सामाजिक सेवाएं व सुविधाएं जुटाना एक बहुत बड़ा काम है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण ये समस्याएं कई गुनी बढ़ गई हैं। यही नहीं, अधिकतर ग्रामीण जनसंख्या छोटे पैमाने के कृषि-कार्य में लगी हुई है। अपनी विशेष प्रकृति के अनुरूप, कृषि तीव्र प्रगति से बढ़ रही जनसंख्या का भरण-पोषण नहीं कर सकती है।

जनसंख्या का वितरण

भारत की जनसंख्या असमान रूप से वितरित है। पर्वतों, मरुस्थलों तथा वनीय भूमियों की अपेक्षा मैदानों में जनसंख्या ज्यादा है। सामान्य रूप में बड़े क्षेत्र के राज्यों में अधिक जनसंख्या होती है। लेकिन यह नियम तभी लागू होता है जब उसका प्राकृतिक संसाधनों का आधार, विशेषत: भूमि समान हो। इसलिए, नदी द्रोणी तथा तटीय मैदानों में स्थित राज्यों तथा जिलों और नगरीकृत क्षेत्रों में भी जनसंख्या अधिक होती है।

यदि हम भारत में राज्यवार जनसंख्या के वितरण पर नजर डालें तो हमें अनेक विषमताएं मिलती हैं। यह मुख्य रूप से इसलिए कि राज्यों के क्षेत्र में तथा उनके संसाधन आधार में भी अनेक भिन्नताएं हैं। उदाहरण के लिए, हिमालयी लघु राज्य सिक्किम की जनसंख्या मात्र 5.4 लाख है। इसके विपरीत उत्तर प्रदेश की जनसंख्या 16.6 करोड़ है। 10 राज्य ऐसे हैं जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या पांच करोड़ से अधिक है। केवल पांच राज्यों (उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश) में देश की आधे से अधिक जनसंख्या निवास करती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि विशाल क्षेत्रफल वाले राज्यों की जनसंख्या भी विशाल ही है। क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य है। लेकिन यहां देश की मात्र 5.50
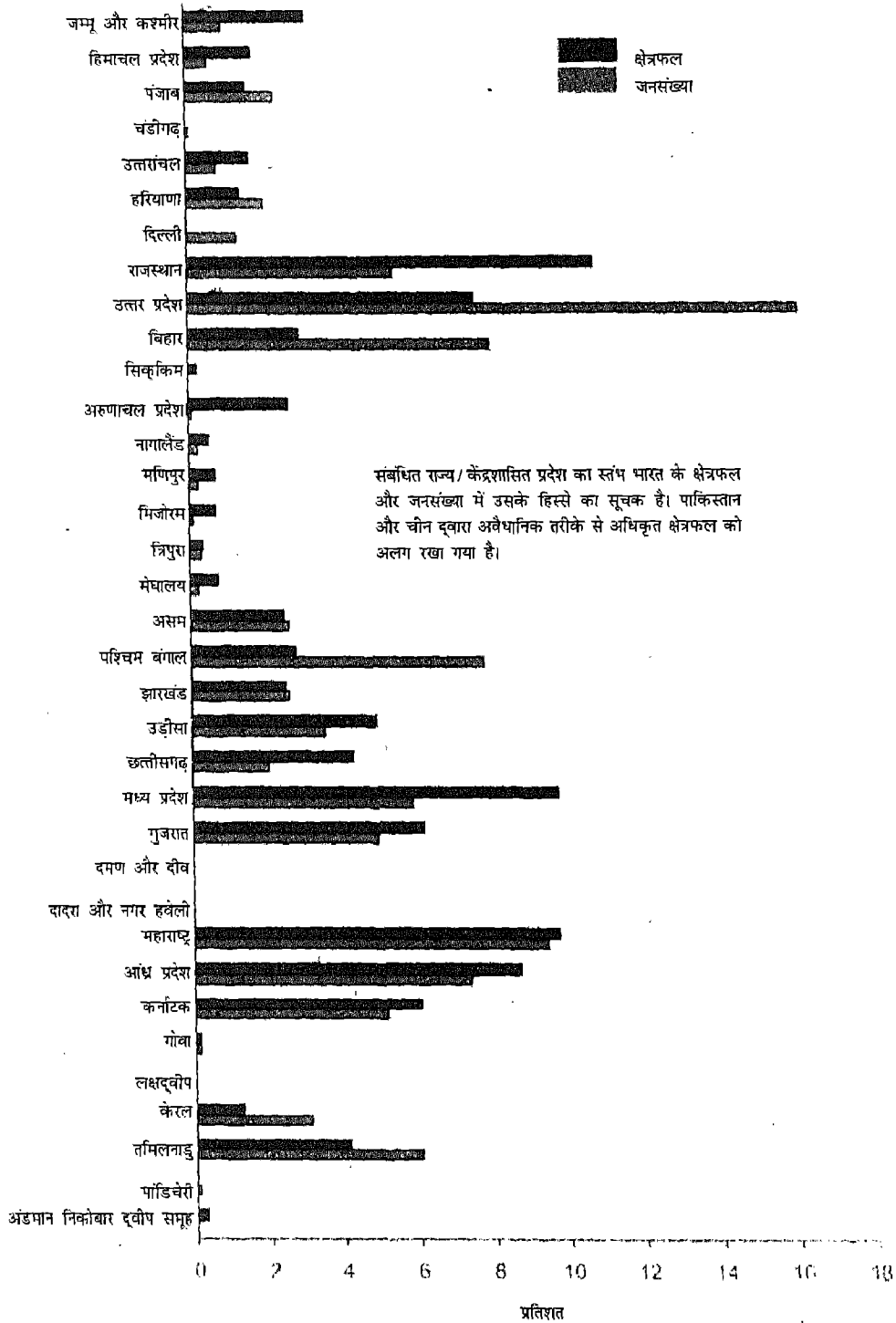
चित्र 1.1 भारत : क्षेत्रफल और जनसंख्या का राज्यवार वितरण (प्रतिशत), 2001

प्रतिशत जनसंख्या ही रहती है। इसी प्रकार, क्षेत्रफल की दृष्टि से, मध्य प्रदेश देश का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। इसका क्षेत्रफल देश के क्षेत्रफल का 9.37 प्रतिशत है जबकि जनसंख्या केवल 5.88 प्रतिशत ही है। इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश 7.26 प्रतिशत क्षेत्र पर स्थित है। देश के 2.86 प्रतिशत क्षेत्रफल वाले बिहार राज्य में 8.07 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है (चित्र 1.1)। कुल मिलाकर, 11 राज्यों और छ: केंद्रशासित प्रदेशों में क्षेत्रफल की तुलना में जनसंख्या अधिक विशाल है। परिणामस्वरूप, इन राज्यों के प्रति इकाई क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है। इसके विपरीत, जम्मू और कश्मीर का क्षेत्रफल देश के कुल क्षेत्रफल का 6.76 प्रतिशत है, लेकिन यहां देश की केवल 0.98 प्रतिशत जनसंख्या का ही निवास है। देश के कुल क्षेत्रफल के 2.55 प्रतिशत वाले राज्य अरुणाचल प्रदेश में देश की केवल 0.11 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है।

जनसंख्या घनत्व

राज्यस्तरीय विश्लेषण

जनसंख्या और भूक्षेत्र के अंतर्संबंध (मानव-भूमि अनुपात) को भौगोलिक क्षेत्र की प्रति इकाई में व्यक्तियों की जनसंख्या के द्वारा प्रकट किया जाता है। उदाहरण के लिए सन् 2001 में दिल्ली के 1483 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में 1,37,83,976 लोग रहते थे। यहां जनसंख्या का घनत्व 9,294 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. था। सन् 2001 में भारत में जनसंख्या का औसत घनत्व 324 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. था। यह औसत घनत्व चीन के औसत घनत्व से कहीं अधिक है। संसार के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश चीन में सन् 1997 में जनसंख्या का औसत घनत्व 129 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. था। संसार के दस सबसे अधिक जनसंख्या वाले देशों में, जनसंख्या के घनत्व की दृष्टि से भारत का तीसरा स्थान है। था। सन् 1951 में यह बढ़कर 117 व्यक्ति, 1971 में 177 व्यक्ति, 1991 में 267 व्यक्ति तथा 2001 में 324 व्यक्ति हो गया। सन् 2011 में इसके 400 व्यक्ति हो जाने की संभावना है।

राज्यों के अनुसार भी जनसंख्या के घनत्व में बहुत अंतर पाया जाता है। अरुणाचल प्रदेश में जनसंख्या का घनत्व 13 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर तथा पश्चिम बंगाल में 904 व्यक्ति है। देश के प्रमुख राज्यों में पश्चिम बंगाल अब भी सबसे अधिक घना बसा राज्य है। बिहार (880 व्यक्ति) दूसरा सबसे अधिक घना बसा राज्य है। जनसंख्या के घनत्व की दृष्टि से ही केरल का तीसरा स्थान है। अत्यधिक तथा अधिक जनसंख्या घनत्व वाले राज्य गंगा और सतलुज के मैदान में स्थित हैं। दक्षिणी भारत के तटीय राज्यों, केरल (819) तथा तमिलनाडु (478) में भी जनसंख्या का घनत्व बहुत है (चित्र 1.2)।

प्रायद्विपीय भारत के राज्यों में तमिलनाडु और केरल को छोड़कर जनसंख्या का घनत्व मध्यम है। जनसंख्या का घनत्व महाराष्ट्र में 314 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. से लेकर उड़ीसा में 236 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. है। गोवा, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और गुजरात में जनसंख्या के घनत्व का परिसर 200 से 300 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. है। मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, नागालैंड, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर और मेघालय में जनसंख्या का घनत्व 100 से लेकर 200 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. पाया जाता है। 100 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से कम जनसंख्या घनत्व वाले राज्य हैं : जम्मू और कश्मीर (99), सिक्किम (76), मिजोरम (42) और अरुणाचल प्रदेश (13)।

जनसंख्या का घनत्व भूमि पर जनसंख्या के दबाव का वास्तविक परिचायक नहीं है। यह सही है कि कोई भी भूमि बेकार नहीं होती, लेकिन केवल कृषि योग्य (कृष्य) भूमि ही लोगों का भरण-पोषण करती है। यदि कृष्य भूमि पर विचार किया जाए तो एक नया तथ्य उद्घाटित होता है। बिरल जनसंख्या वाला राज्य, मध्य प्रदेश सघन जनसंख्या वाला राज्य बन जाता है क्योंकि इस राज्य का अधिकतर भाग पहाड़ी, ऊबड-खाबड़ और वनों से ढका है। घनत्व से केवल सामान्य दशा का पता चलता है। इससे न केवल कृषीय भूमि का ज्ञान होता है, अपितु घनत्व में प्रादेशिक भिन्नता के लिए उत्तरदायी सामाजिक, आर्थिक और तकनीकीय कारकों के प्रभाव का भी परिचय मिलता है।

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

*चित्र **1.2** भारत : जनसंख्या का घनत्व, 2001*

शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा कृषि-इतर क्रियाकलाप और इनके परिणामस्वरूप होने वाला लोगों का आप्रवासन भी घनत्व के प्रतिरूपों को बदल देते हैं। पश्चिम बंगाल, केरल और दिल्ली इन कारकों के प्रभाव को प्रदर्शित करने वाले विशिष्ट उदाहरण हैं।

जिला स्तर का विश्लेषण

जनसंख्या के घनत्व का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने में क्षेत्रफल की दृष्टि से राज्य प्रायः बहुत बड़े होते हैं। कुछ विरल जनसंख्या घनत्व वाले राज्यों में भी कुछ जिलों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है। इसके विपरीत भी स्थिति हो सकती है। जिला स्तर के घनत्व का परिसर बहुत व्यापक है। 29,395 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. का उच्चतम घनत्व दिल्ली के उत्तर पूर्वी जिले में और न्यूनतम घनत्व, दो व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी., हिमाचल प्रदेश के लाहुल तथा स्पीति जिलों में हैं।

देश के सबसे अधिक घने दस बसे जिले ये हैं : उत्तरपूर्वी दिल्ली, मध्य दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई, पूर्वी दिल्ली, मुंबई, उपनगरीय मुंबई, हैदराबाद, पश्चिमी दिल्ली और उत्तरी दिल्ली। ये सभी नगरीय जिले हैं। इन जिलों में जनसंख्या का घनत्व उत्तरपूर्वी दिल्ली के 29,395 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. और उत्तरी दिल्ली के 12,996 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के बीच घटता-बढ़ता है। इन दस जिलों में देश की 3 प्रतिशत जनसंख्या का निवास है।

इसके विपरीत, दस जिले ऐसे हैं, जहां जनसंख्या का घनत्व 13 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. से अधिक नहीं है। देश में कुल 593 जिलों में से लगभग आधे जिलों में घनत्व राष्ट्रीय औसत से कम तथा आधों में राष्ट्रीय औसत से अधिक है। राजस्थान के धौलपुर जिले में जनसंख्या का घनत्व राष्ट्रीय औसत (324 व्यक्ति) के बराबर है।

औसत घनत्व की दृष्टि से तीन प्रकार के जनसंख्या घनत्व के क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है :

(i) उच्च घनत्व वाले जिले, 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. से अधिक

(ii) मध्यम घनत्व वाले जिले, 200 से 400 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. और

(iii) निम्न घनत्व वाले जिले, 200 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. से कम।

उच्च घनत्व वाले जिले

देश के 254 जिलों में जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. से अधिक है। इन जिलों के तीन समूह हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, हरियाणा और पंजाब के निकटवर्ती जिले तथा दिल्ली का पहला समूह है। जनसंख्या के उच्च घनत्व वाली यह सबसे बड़ी पट्टी है। यहां घनत्व 400 और 700 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. के मध्य घटता-बढ़ता है। इस पट्टी के अधिकतर जिलों में घनत्व 500 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. से अधिक है। पश्चिमी और पूर्वी छोर पर क्रमशः दिल्ली और कोलकाता के नगरीय और औद्योगिक क्षेत्र हैं। इनके कारण यहां जनसंख्या का विशाल संकेंद्रण हो गया है। इन्हें छोड़कर यह पूरा क्षेत्र प्रायः ग्रामीण है। ऊपरी गंगा के मैदान को छोड़कर यहां कृषि का अधिक विकास नहीं हुआ है।

दक्षिण में, केरल और तमिलनाडु की उच्च भूमियों के 33 जिलों में उच्च तथा अति उच्च घनत्व है। केरल में घनत्व 850 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से अधिक है। तमिलनाडु के नगरीकृत जिलों में भी घनत्व बहुत अधिक है। विकसित कृषि तथा छोटे नगरों में कुटीर उद्योगों का प्रसार जनसंख्या के उच्च घनत्व के लिए उत्तरदायी है। नगरीकरण ने भी जनसंख्या के संकेंद्रण को बढ़ावा दिया है।

उच्च घनत्व के तीसरे समूह का आधार डेल्टा क्षेत्र है। ये क्षेत्र पूर्वी तट पर महानदी, गोदावरी और कृष्णा नदियों के मैदानों तथा पश्चिमी तट पर महाराष्ट्र और गुजरात के मैदानी भागों में फैले हैं। इन क्षेत्रों में कृषि का बहुत विकास हुआ है। गुजरात और महाराष्ट्र के मैदानी भागों में जनसंख्या के वितरण को औद्योगिक प्रगति ने भी प्रभावित किया है। जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि देश के अत्यधिक नगरीकृत जिलों में ही असाधारण रूप से जनसंख्या का उच्च घनत्व दिखाई पड़ता है। ऐसे जिले पूरे देश में फैले हुए हैं।

ऊपर चर्चा से यह स्पष्ट है कि उच्च घनत्व के क्षेत्र गंगा और सतलुज के मैदान की पारंपरिक कृषीय पट्टी तथा उपजाऊ तटीय मैदानों में सीमित है। स्वतंत्रता के बाद हुए औद्योगिक और नगरीय विकास के कारण, पारंपरिक कृषीय पट्टी के कुछ जिलों में अत्यंत उच्च घनत्व अध्यारोपित हो गया है। तमिलनाडु के आंतरिक भाग में औद्योगिक और नगरीकरण के द्वारा ही जनसंख्या के उच्च घनत्व का पोषण हो रहा है।

मध्यम घनत्व वाले जिले

देश के 172 जिलों में 200 से लेकर 400 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. का घनत्व पाया जाता है। ये मध्यम घनत्व वाले जिले हैं। उत्तरी राज्यों में ये उच्च घनत्व वाले जिलों के निकट ही स्थित हैं। प्रायद्वीपीय भारत में मध्यम घनत्व का एक क्षेत्र, संपूर्ण महाराष्ट्र, गुजरात के अधिकतर भाग, तेलंगाना और तटवर्ती आंध्र प्रदेश में फैले हैं। दक्षिण कर्नाटक, आंध्र प्रदेश के रायलसीमा के भागों तथा तमिलनाडु के निकटवर्ती भागों में विस्तृत मध्य घनत्व का दूसरा संबद्ध क्षेत्र है। ऊबड़-स्थलाकृति, अपेक्षाकृत कम उपजाऊ-मृदा और सिंचाई के लिए पानी का अभाव, इन क्षेत्रों की विशेषता है। तथापि नगरीय और औद्योगिक विकास ने इस प्रदेश में मध्यम घनत्व के पोषण में सहायता दी है। मध्यम घनत्व के अन्य क्षेत्र हैं : पंजाब और हरियाणा के मैदानों के कुछ भाग तथा राजस्थान के उत्तरी भाग। आज़ादी के बाद कृषि में हुई हरित क्रांति का भरपूर लाभ इन मैदानों को मिला है।

निम्न घनत्व वाले जिले

पर्वतीय तथा ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र, शुष्क और अर्धशुष्क प्रदेश तथा वनाच्छादित प्रदेश भौतिक बाधाओं से ग्रस्त हैं। अत: ये विरल जनसंख्या वाले हैं और यहां घनत्व कम (200 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से कम) और बहुत कम पाया जाता है। लोग ऐसे प्रदेशों में बसना नहीं चाहते। इस वर्ग में 167 जिले हैं। कुछ जिलों में तो घनत्व 10 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. भी नहीं है। जनजातीय निर्वाह अर्थव्यवस्था, निम्नस्तरीय सामाजिक-प्रौद्योगिक विकास तथा प्रतिकूल भौतिक दशाएं, विरल जनसंख्या के लिए उत्तरदायी कारकों में से कुछ कारक हैं।

राजस्थान के कुछ क्षेत्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और पश्चिमी उड़ीसा, निम्न घनत्व के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। पूर्वी कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के मध्यवर्ती भाग जनसंख्या के निम्न घनत्व के अन्य क्षेत्र हैं। यहां जनसंख्या के निम्न घनत्व के मुख्य कारक हैं : पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ भूमि, उथली और कम उपजाऊ मिट्टियाँ, कम वर्षा और पानी का अभाव।

संक्षेप में, सतलुज-गंगा का मैदान उच्च और अति उच्च-जनसंख्या घनत्व का सबसे बड़ा क्षेत्र है। इसी क्षेत्र के समान घनत्व वाले क्षेत्र दक्षिण के तटीय मैदानों में विस्तृत रूप से फैले हैं। इनके विपरीत पहाड़ी, मरुस्थलीय क्षेत्रों और घटिया जल निकास वाले क्षेत्रों (जलभराव वाले क्षेत्रों) में जनसंख्या का कम घनत्व पाया जाता है। उथली मृदा वाले पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र में घनत्व कम होता है। निम्न घनत्व वाला सबसे बड़ा क्षेत्र पश्चिम में अरावली पर्वत श्रेणी से लेकर पूर्व में उड़ीसा तक फैला है। मध्यम घनत्व के क्षेत्र प्राय: उच्च और निम्न घनत्व वाले क्षेत्रों के बीच में ही पाए जाते हैं।

जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्नलिखित समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

1. भौतिक कारक
2. सामाजिक-आर्थिक कारक
3. जनांकिकीय कारक।

भौतिक कारक : क्षेत्र का स्वरूप, मृदा, जलवायु तथा खनिज संसाधनों की सुलभता, जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। गहरी उपजाऊ मृदा संयुक्त पर्याप्त वर्षा प्राप्त करने वाली या सुविकसित सिंचाई की सुविधाओं वाली समतल भूमि पर प्राय: सघन जनसंख्या पाई जाती है।

सामाजिक-आर्थिक कारक : मनुष्यों ने अपने क्रियाकलापों, प्रौद्योगिकीय ज्ञान और सामाजिक संगठनों के द्वारा भौतिक कारकों को अपने लाभ के लिए बदलने का प्रयत्न किया है। विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की पोषण क्षमताओं में व्यापक अंतर पाया जाता है। द्वितीय और तृतीय क्रियाकलापों की तुलना में प्राथमिक क्रियाकलापों की पोषण क्षमता प्राय: कम होती है। इसीलिए अत्यधिक नगरीय और औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या का अत्यधिक उच्च घनत्व पाया जाता है। मुंबई, कोलकाता और दिल्ली, इस प्रकार के क्षेत्रों के कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं। इसी प्रकार आधुनिक अधिक उपज देने वाली फसलों की खेती वाले जिलों में भी जनसंख्या का उच्च घनत्व पाया जाता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब को इसी वर्ग में शामिल किया जाता है।

जनांकिकीय कारक : जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले जनांकिकीय कारक हैं : प्रजनन दर, मृत्यु दर और प्रवास। आप्रवासन महानगरों में विशाल जनसंख्या के संकेंद्रण का मुख्य कारक है। नगरीकृत और औद्योगीकृत जिलों में जनसंख्या के उच्च घनत्व का मुख्य कारक जनसंख्या का बड़े पैमाने पर आप्रवासन है।

सारणी 1.1 — भारत : जनसंख्या में वृद्धि 1901-2001

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में) वृद्धि (प्रतिशत में)	कुल परिवर्तन (करोड़ में)	परिवर्तन (प्रतिशत में)	औसत वार्षिक वृद्धि (प्रतिशत में)	1901 के बाद उत्तरोत्तर
1901	238.40	—	—	—	—
1911	252.09	13.70	5.75	0.56	5.75
1921	251.32	-0.77	-0.31	-0.03	5.42
1931	278.98	27.66	11.00	1.04	17.02
1941	318.66	39.68	14.22	1.33	33.67
1951	361.09	42.43	13.31	1.25	51.47
1961	439.23	78.15	21.64	1.96	84.25
1971	548.16	108.92	24.80	2.20	129.94
1981	683.33	135.17	24.66	2.22	186.64
1991	843.39	163.06	23.86	2.14	255.03
2001	1027.02	180.63	21.34	1.93	330.80

जनांकिकीय संक्रांति

किसी समाज की जनसंख्या में परिवर्तन की प्रक्रिया को जनांकिकीय संक्रांति कहते हैं। इस संक्रांति का आरंभ, मध्य और अंत होता है। इसकी चार अवस्थाएं होती हैं। प्रथम अवस्था में मृत्यु दर और जन्म दर उच्च तथा वृद्धि दर निम्न होती है। द्वितीय अवस्था में मृत्यु दर तेजी से होती है, जन्म दर बढ़ी हुई उच्च रहती है तथा वृद्धि दर अति उच्च होती है। तृतीय अवस्था में जन्म दर तेजी से घटती है, मृत्यु दर कम होती रहती है और वृद्धि दर घटना आरंभ हो जाती है। चौथी अवस्था में मृत्यु दर तथा जन्म दर कम हो जाती हैं और वृद्धि दर भी घट जाती है।

जनसंख्या वृद्धि

दो समय बिंदुओं के मध्य जनसंख्या में होने वाले शुद्ध परिवर्तन को वृद्धि दर कहते हैं। इसे मूल (प्रारंभिक) जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। यदि विचाराधीन समयावधि में जनसंख्या घटती है, तो यह ऋणात्मक वृद्धि दर होगी। इसके विपरीत यदि जनसंख्या बढ़ती है, तो वृद्धि दर धनात्मक होगी। जन्म, मृत्यु और प्रवास के कारण जनसंख्या में परिवर्तन होते हैं। विगत शताब्दी में भारत की जनसंख्या में चार गुनी (330.8 प्रतिशत) वृद्धि हुई है (सारणी 1.1)।

भारत में जनसंख्या वृद्धि की अवस्थाएं

सन् 1901 में भारत की जनसंख्या 23.84 करोड़ थी जो बढ़कर 2001 में 102.702 करोड़ हो गई (चित्र 1.3)। इस प्रकार विगत एक शताब्दी में भारत में 78.862 करोड़ व्यक्ति बढ़ गए हैं। सन् 1901 से भारत की जनसंख्या निरंतर बढ़ रही है; केवल 1911 और 1921 के बीच की अवधि में यह थोड़ी-सी घटी थी। तथापि जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर में सन् 1981 तक निरंतर वृद्धि हुई है। लेकिन इसके बाद इसमें कमी आनी शुरू हो गई थी। इस प्रकार भारत के जनांकिकीय इतिहास को चार अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है।

(i) धीमी वृद्धि को अवधि (1921 से पूर्व)
(ii) निरंतर वृद्धि की अवधि (1921 से 1951)
(iii) तीव्र वृद्धि की अवधि (1951 से 1981) और
(iv) घटती वृद्धि की अवधि (1981 के बाद)।

1. 1921 के पूर्व जनसंख्या की वृद्धि छुट-पुट और धीमी थी। 1921 के बाद यह धीरे-धीरे बढ़ी। इसलिए 1921 के पूर्व की भारत की जनसंख्या के अध्ययन को *जनांकिकीय विभाजक* कहा जाता है।
2. 1921 और 1951 के मध्य जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हुई। इसका कारण स्वास्थ्य सेवाओं में विकास था, जिसके परिणामस्वरूप प्लेग, हैजा, मलेरिया आदि महामारियों के कारण होने वाली मौतें घट गईं। अकाल के कारण होने वाली मौतों में कमी हो गई तथा स्वच्छता और चिकित्सा सुविधाएं बेहतर हो गईं। परिवहन के विकसित साधनों के द्वारा खाद्यान्नों की कमी से उत्पन्न संकट पर काबू पाया जा सका।

स्तंभ के ऊपर का अंक प्रतिशत में दशकीय वृद्धि को दर्शाता है।

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (दस लाख में)	दशकीय वृद्धि (%)
1901	238.4	
1911	252.09	+.75
1921	251.32	-0.31
1931	278.98	+11.00
1941	318.66	+14.22
1951	361.09	+13.31
1961	439.23	+21.64
1971	548.16	+24.80
1981	683.33	+24.66
1991	843.39	+23.86
2001	1027.02	+21.34
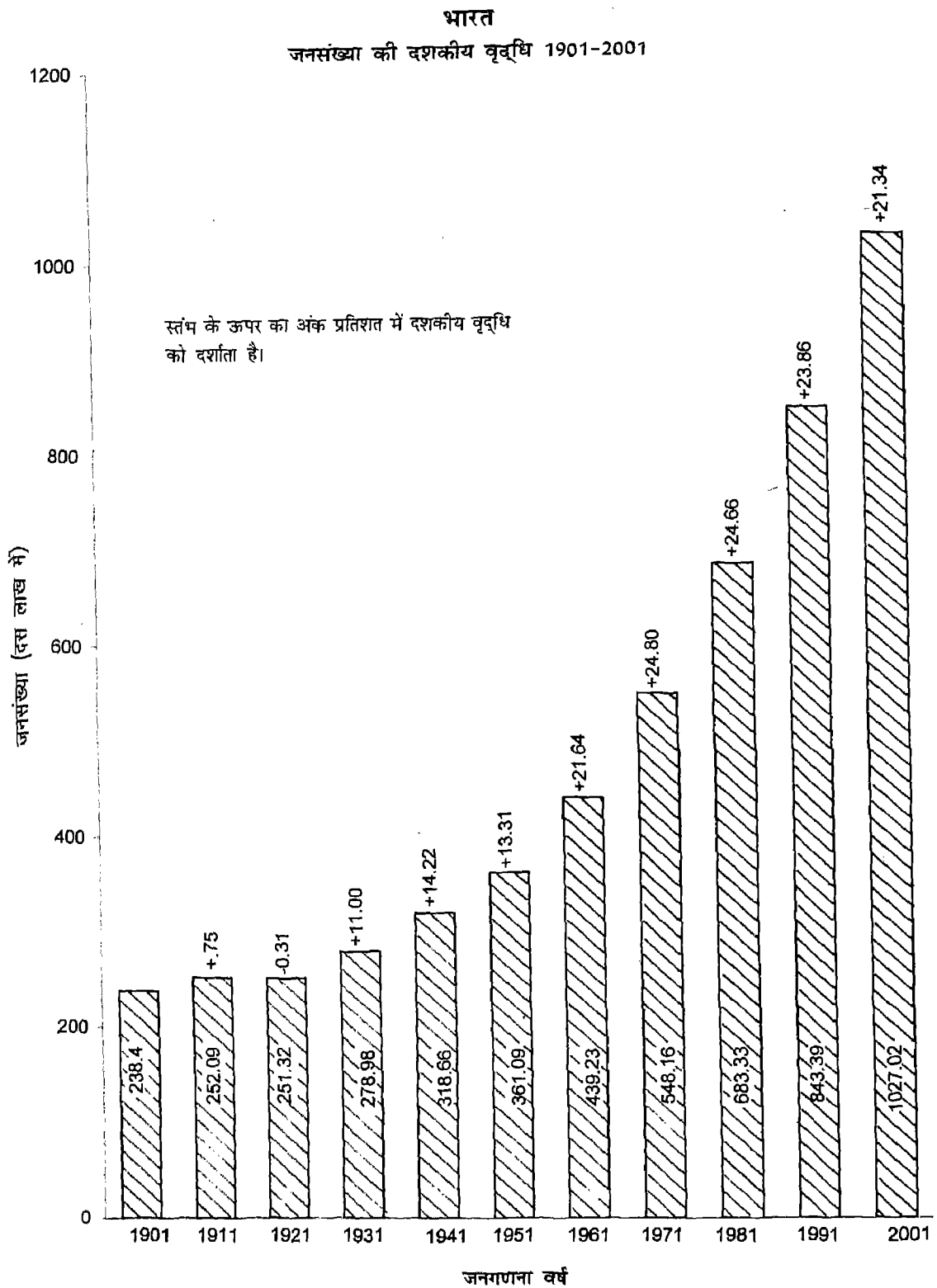
*चित्र **1.3** भारत : जनसंख्या की दशकीय वृद्धि, 1901-2001*

सारणी 1.2 — भारत : परिवर्तनशील जन्म दर, मृत्यु दर और नैसर्गिक वृद्धि, 1911-2001

वर्ष प्रति हजार	अशोधित जन्मदर प्रति हजार	अशोधित मृत्युदर प्रति हजार	नैसर्गिक वृद्धि दर
1911	49	43	6
1921	48	47	1
1931	46	36	10
1941	45	31	14
1951	40	27	13
1961	42	23	19
1971	37	15	23
1981	34	12	22
1991	31	11	20
1999	26	9	17

कृषीय अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार हुआ। परिणामस्वरूप मृत्यु दर तो कम हो गई लेकिन जन्म दर ऊंची ही बनी रही (सारणी 1.2)। इसे *मृत्यु प्रेरित वृद्धि* कहा गया है।

3. 1951 और 1981 की अवधि में भारत की जनसंख्या लगभग दुगुनी हो गई। इस अवधि में औसत वृद्धि दर लगभग 2.2 प्रतिशत थी। जनसंख्या में यह अभूतपूर्व वृद्धि विकास कार्यों में तेजी तथा चिकित्सा सुविधाओं में और अधिक सुधार के परिणामस्वरूप हुई। लोगों की जीवन की दशाओं में बहुत सुधार हुआ। तथापि जन्म दर की तुलना में मृत्यु दर तेजी से घटी। इसी का परिणाम अति उच्च प्राकृतिक वृद्धि है। इस प्रकार यह *प्रजनन प्रेरित वृद्धि* थी।
4. यद्यपि 1981 के बाद भी जनसंख्या में उच्च वृद्धि हुई, लेकिन वृद्धि दर में क्रमिक ह्रास हुआ। भारत के जनांकिकीय इतिहास में यह नए युग की शुरुआत का संकेत है। इस अवधि में जन्म दर तेजी से घटी। यह 1981 में 34 प्रति हजार थी जो 1999 में घटकर 26 प्रति हजार हो गई। मृत्यु दर में घटने की प्रवृत्ति बनी रही लेकिन कमी की दर धीमी हो गई। जन्म दर और मृत्यु दर में अंतर घटते-घटते 17 रह गया है। जनसंख्या में ह्रास की यह प्रवृत्ति संतति निरोध के सरकारी प्रयत्नों और लोगों के छोटे परिवार के प्रति अपने रुझान का सकारात्मक संकेत है।

वृद्धि दर में स्थानिक अंतर

अंतर्राज्यीय भिन्नताएं : 1991 और 2001 की अवधि में देश की जनसंख्या की औसत वृद्धि 21.34 प्रतिशत थी। राज्यस्तर पर वृद्धि केरल की 9.42 प्रतिशत और नागालैंड की 64.41 प्रतिशत के मध्य घटती-बढ़ती रही (चित्र 1.4)। उच्च वृद्धि (2.0 प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक वृद्धि) वाले राज्य एक सतत पट्टी से स्थित हैं और यह पट्टी देश के उत्तरी आधे भाग में विस्तीर्ण है। उत्तर-पूर्वी राज्यों में भी दर ऊंची रही। इसके विपरीत दक्षिण के प्रमुख राज्यों में वृद्धि दर धीमी रही। सामाजिक-आर्थिक विकास के स्तर में अंतर के परिणामस्वरूप ही जनसंख्या वृद्धि में उत्तर-दक्षिण का अंतर उत्पन्न हुआ है। दक्षिण के राज्यों में साक्षरता दर ऊंची, नगरीय जनसंख्या अधिक तथा आर्थिक विकास अपेक्षाकृत अधिक है। दक्षिण के राज्यों में जन्म दर अपेक्षाकृत कम है।

नगरीय और ग्रामीण अंतर : जन्म और मृत्यु के अलावा प्रवास की भी जनसंख्या की वृद्धि में उल्लेखनीय भूमिका रहती है। परिणामस्वरूप नगरों की तुलना में गाँवों में वृद्धि कम हुई है (सारणी 1.3)।

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दरों में व्यापक प्रादेशिक भिन्नताएं अंकित की गई हैं। ये दिल्ली की 1.5 प्रतिशत और केरल की 10.05 प्रतिशत से लेकर नागालैंड की 63.37 प्रतिशत के मध्य घटती-बढ़ती रही है। गोवा और तमिलनाडु की ग्रामीण वृद्धि दर ऋणात्मक रही है। इन दोनों राज्यों की वृद्धि दर क्रमशः -2.16 प्रतिशत तथा -5.20 प्रतिशत थी। इस

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 1.4 भारत : जनसंख्या वृद्धि 1991-2001

सारणी 1.3 — **भारत : ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या की दशकीय वृद्धि (%),1951-2001**

वर्ष	*ग्रामीण*	*नगरीय*	*कुल*
1951	8.80	41.40	13.31
1961	20.64	26.41	21.64
1971	21.86	38.23	24.80
1981	19.32	46.14	24.66
1991	20.01	36.47	23.86
2001	17.97	31.13	21.34

धीमी वृद्धि दर का मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों और अन्य राज्यों की ओर उत्प्रवास को माना जाता है।

ग्रामीण जनसंख्या की तुलना में नगरों की जनसंख्या में अधिक वृद्धि होती रही है। देश में दादरा और नगर हवेली की नगरीय जनसंख्या में अधिकतम वृद्धि (330.30 प्रतिशत) हुई। प्रमुख राज्यों में सबसे अधिक वृद्धि (101.29 प्रतिशत) अरुणाचल प्रदेश में हुई है। इसके विपरीत आंध्र प्रदेश (14.63 प्रतिशत) तथा केरल (7.64 प्रतिशत) की नगरीय जनसंख्या में वृद्धि कम और धीमी थी। नगरीय जनसंख्या में उच्च तथा अति उच्च वृद्धि के कारण हैं: नगरीय सीमाओं का विस्तार, नए नगरों को मान्यता, तथा गांवों से भारी संख्या में आप्रवासन।

जनसंख्या का प्रवास

अपेक्षाकृत लंबी अवधि के लिए निवास-स्थान में परिवर्तन को 'प्रवास' कहा जाता है। स्थानीय गतिशीलता, कम समय के लिए स्थान परिवर्तन या अनेक स्थानों पर आना-जाना प्रवास नहीं कहलाता है। प्रवासी वही है, जिसकी गणना अपने जन्म स्थान पर नहीं अपितु किसी अन्य स्थान पर होती है। उद्भव प्रदेश या अभिग्राही प्रदेश के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों का सीधा संबंध जनसंख्या के प्रवास से है। लोग बेहतर आर्थिक अवसरों, रोजगार और जीवन की बेहतर दशाओं की खोज में प्रवास करते हैं। लेकिन कुछ अनार्थिक कारक, जैसे–विवाह, सामाजिक असुरक्षा, राजनीतिक उथल-पुथल, अंतर्प्रजातीय संघर्ष, तथा बेहतर सामाजिक, सांस्कृतिक और स्वास्थ्य सुविधाएं भी लोगों को अपने निवास स्थान से खदेड़ देते हैं (छोड़ने को बाध्य कर देते हैं)। इच्छुक प्रवासी को आकर्षण और प्रलोभन देने वाली अभिग्राही प्रदेश की दशाएं *अपकर्ष कारक* (full factors) कहलाती हैं। —ें लोग आकर्षित होकर मुंबई, कोलकाता और दिल्ली जैसे महानगरों में जा बसे हैं क्योंकि महानगरों में उन्हें बेहतर जीवन के अवसर मिल सकते हैं। आर्थिक मंदी वाले प्रदेश में बेरोजगारी की वृद्धि लोगों को अपना निवास स्थान छोड़ने पर बाध्य करती है, इन कारकों को *प्रतिकर्ष कारक* कहते हैं। इन कारकों में प्रमुख हैं–जनसंख्या का भारी दबाव, कृषक वर्ग की गरीबी और अत्यधिक बेरोजगारी।

1991 की जनगणना में केवल कुल जनसंख्या के 27.4 प्रतिशत भाग की (84.8 करोड़ में 23 करोड़) प्रवासी के रूप में गणना की गई थी। 1981 में प्रवासियों का प्रतिशत 30.6 तथा 1971 में 31.2 था। कुल प्रवासी जनसंख्या में से 62.14 प्रतिशत लोगों का जन्म, गणना वाले जिले में ही हुआ था। इसे अंत:जिला (राज्यांतरीय) प्रवास कहते हैं। एक चौथाई से कुछ अधिक (26.05 प्रतिशत) लोगों का जन्म उसी राज्य के अन्य जिलों में तथा दसवें भाग से कुछ अधिक (11.82 प्रतिशत) लोगों का जन्म देश के अन्य राज्यों में हुआ था। इस प्रकार दूरी के बढ़ने पर प्रवासियों का अनुपात घट जाता है।

प्रवास के कारण

अंतिम निवास स्थान बदलने वाले व्यक्तियों में से आधे से अधिक लोगों ने विवाह के कारण घर छोड़ा। इसी जनगणना वर्ष में, 15 प्रतिशत लोगों ने निवास स्थान बदला। इसके विपरीत, रोजगार के कारण केवल 9 प्रतिशत लोग प्रभावित हुए। केवल 2.0 प्रतिशत लोगों को शिक्षा के कारण प्रवास करना पड़ा। लगभग एक तिहाई प्रवासियों ने अन्य अनेक सामाजिक-आर्थिक कारणों से अपना अंतिम निवास छोड़ा था। कुल आप्रवासियों में से एक चौथाई से कुछ अधिक पुरुष थे जबकि लगभग तीन-चौथाई महिलाएं थीं। इस प्रकार विभिन्न लोग विभिन्न कारणों से प्रवास करते हैं तथा पुरुषों और महिलाओं के प्रवास के अनुपात में भिन्नता होती है।

प्रवास के प्रकार

स्थानांतरण की दिशा के आधार पर प्रवास पांच प्रकार का हो सकता है :

(i) ग्राम से नगर को
(ii) नगर से नगर को
(iii) ग्राम से ग्राम को
(iv) नगर से ग्राम को
(v) अंतर्राष्ट्रीय प्रवास।

सारणी 1.4 — भारत : 1991 में प्रवास के कारणों के अनुसार आप्रवासियों (In-migrants) का अनुपात

प्रवास के कारण	*कुल प्रवासी व्यक्ति (करोड़)*	*कुल आप्रवासियों का प्रतिशत*	*कुल पुरुष आप्रवासियों का प्रतिशत*	*कुल स्त्री आप्रवासियों का प्रतिशत*
विवाह	1303	56.1	4.0	76.1
परिवार का स्थानांतरण	356	15.3	26.6	11.0
रोजगार	2.04	8.8	27.0	1.8
शिक्षा	0.45	2.0	4.8	0.8
व्यापार	0.53	2.3	6.0	0.5
अन्य कारक	3.60	15.5	31.6	9.8

स्रोत : भारत की जनगणना 1991, *प्रवास की सारणियां,* जिल्द V : खंड 1
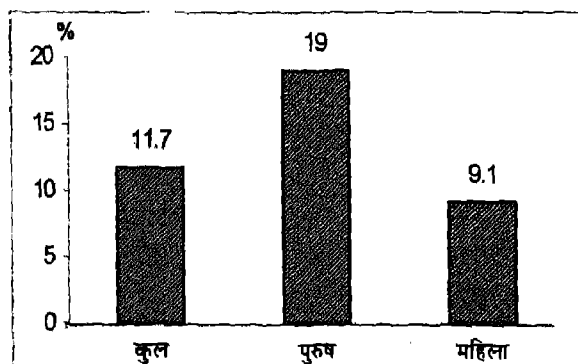
शहरी-शहरी
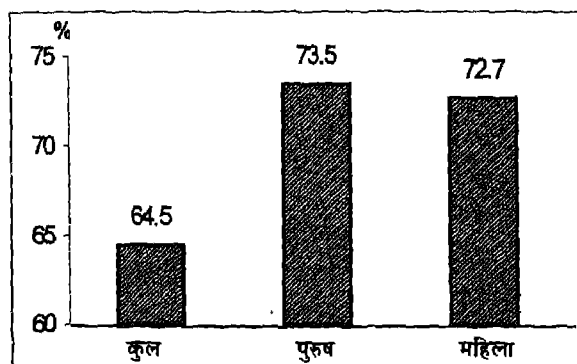
ग्रामीण-ग्रामीण
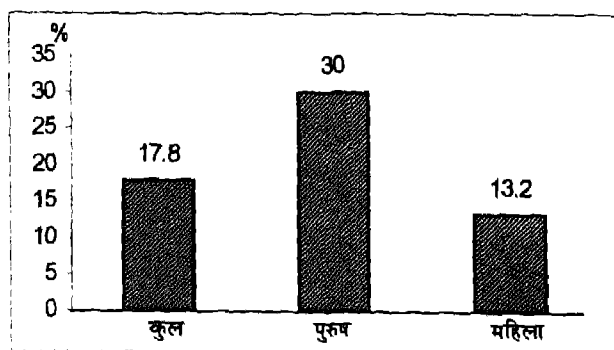
ग्रामीण-शहरी
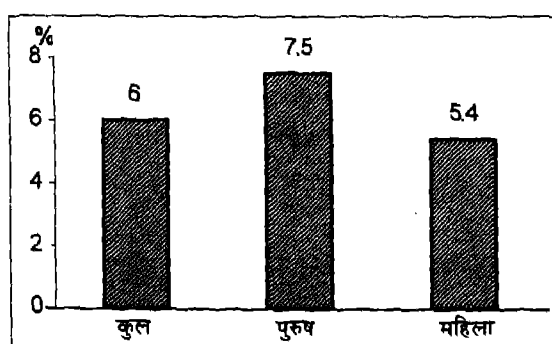
शहरी-ग्रामीण

चित्र 1.5 *भारत : आप्रवासियों का अनुपात, 1991*

प्रवास के अंतिम प्रकार का यहां विवरण नहीं दिया गया है। कुल प्रवासियों में से 82.3 प्रतिशत लोगों का जन्म स्थान गांव होता है। केवल 17.7 प्रतिशत प्रवासी ही कस्बों और नगरों में जन्मे थे। कुल आप्रवासियों में से लगभग एक-तिहाई (29.5 प्रतिशत) नगरों में आए जबकि गावों में 70.5 प्रतिशत आप्रवासी पहुंचे।

इस संबंध में हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि महिलाएं अपने जन्म स्थान से पति के घर चली जाती हैं। इसीलिए कुल आप्रवासियों में लगभग तीन-चौथाई एक गांव से दूसरे गांव में चले गए, केवल पांचवा भाग नगरों से गांवों में गया, लगभग 11.7 प्रतिशत एक नगर से दूसरे नगर में गए, और बहुत कम लोग नगरों से गांवों में गए (चित्र 1.5)। दूरी और लिंग के अनुसार यह औसत स्थिति बदल जाती है। जब स्थानांतरण की दूरी और प्रवास के जोखिम बढ़ जाते हैं, तो आप्रवासन पुरुष प्रधान और नगरोन्मुख हो जाता है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   (i) संसार में जनसंख्या के आकार और घनत्व के संदर्भ मे भारत के स्थान की विवेचना कीजिए।
   (ii) भारत के सबसे अधिक जनसंख्या वाले चार राज्यों के नाम बताइए।
   (iii) चार बड़े राज्यों की जनसंख्या के आकार और क्षेत्रीय आकार की तुलना कीजिए।
   (iv) प्रत्येक उत्तरोत्तर जनगणना में जनसंख्या का घनत्व क्यों बढ़ रहा है?
   (v) सतलुज-गंगा के मैदान में सघन जनसंख्या के संकेंद्रण के कारणों का वर्णन कीजिए।
   (vi) जनसंख्या के वितरण की व्याख्या करने के लिए सामाजिक-आर्थिक कारकों की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
   (vii) मानव के आवास के लिए कौन-से क्षेत्र अनाकर्षक होते हैं?
   (viii) भारत के उत्तर-पूर्वी और उत्तरी राज्यों में कृषि पर ग्रामीण जनसंख्या का दबाव अपेक्षाकृत अधिक क्यों है?
   (ix) जनसंख्या की वृद्धि से क्या तात्पर्य है?
   (x) भारत के जनांकिकीय इतिहास को चार अवस्थाओं में विभाजन कीजिए।
   (xi) जन्म दर और मृत्यु दर की प्रवृत्तियों ने भारत की जनसंख्या वृद्धि को किस प्रकार निर्धारित किया है?
   (xii) भारत में जनसंख्या के प्रवास के मुख्य कारक कौन-से हैं?
2. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) राज्यांतरीय और अंतर्राज्यीय प्रवास
   (ii) मानव प्रवास को प्रभावित करने वाले अपकर्ष और प्रतिकर्ष कारक।
3. भारत में जनसंख्या के असमान वितरण के कारणों की विवेचना कीजिए।
4. जनसंख्या के घनत्व में प्रादेशिक प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।
5. विगत 100 वर्षों में भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।
6. भारत में जनसंख्या के प्रवास को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।

परियोजना कार्य

7. (i) 1951 के पश्चात् अपने राज्य/केंद्रशासित प्रदेश की जनसंख्या वृद्धि के विषय में जानकारी एकत्र कीजिए।
   (ii) आंकड़ों को दंड आरेख द्वारा प्रदर्शित कीजिए।
   (iii) जनसंख्या वृद्धि के कारणों पर एक प्रतिवेदन तैयार कीजिए।
8. (i) अपने राज्य/केंद्रशासित प्रदेश के प्रत्येक जिले को दिखाने वाला मानचित्र प्राप्त कीजिए।
   (ii) जनसंख्या के जिलास्तर के आंकड़े एकत्र कीजिए।
   (iii) वर्णमात्री मानचित्रण विधि से आंकड़ों को प्रदर्शित कीजिए।
   (iv) जनसंख्या के वितरण पर एक टिप्पणी लिखिए।

2 अध्याय

जनसंख्या का संघटन

जनसंख्या की भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विशेषताओं को जनसंख्या का संघटन कहा जाता है। आयु, लिंग, निवास स्थान, भाषा, धर्म, वैवाहिक स्थिति, मानव प्रजातीयता, साक्षरता, शिक्षा और व्यावसायिक संरचना प्रमुख सामाजिक आर्थिक विशेषताएं हैं। प्रस्तुत अध्याय में निवास स्थान, आयु, लिंग, और जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना की विवेचना की गई है। जनसंख्या की शेष विशेषताओं का विवरण अगले अध्याय में दिया गया है।

ग्रामीण-नगरीय संघटन

निवास स्थान के द्वारा अधिकतर जनांकिकी और सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं का निर्धारण होता है। भारत की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या गांवों में रहती है। देश की कुल जनसंख्या में लगभग एक चौथाई जनसंख्या नगरीय है।

> *ग्रामीण-नगरीय संघटन*
>
> *व्यवसायों, रहन-सहन के ढंग, आदतों और सांसारिक दृष्टिकोण के संदर्भ में ग्रामीण और नगरीय लोगों के बीच अनेक विभिन्नताएं पाई जाती हैं। ग्रामीण जनसंख्या मुख्यत: प्राथमिक व्यवसायों, जैसे–कृषि, वानिकी, पशुपालन आदि में लगी होती है और लोगों के बीच बहुत सुगठित सामाजिक संबंध होते हैं। इसके विपरीत नगरीय जनसंख्या गैर-कृषि कार्यों में लगी होती है और नगरीय जीवन पद्धति तेज तथा सामाजिक संबंध औपचारिक होते हैं।*

ग्रामीण जनसंख्या

देश के कुल 102.7 करोड़ लोगों (2001) में से 74.166 करोड़ लोग गांवों में रहते हैं। यह कुल जनसंख्या के तीन चौथाई भाग से थोड़ा-सा ही (72.8 प्रतिशत) कम है। यद्यपि ग्रामीण जनसंख्या में राज्य की कुल जनसंख्या के अनुसार अंतर पाया जाता है, लेकिन कुल जनसंख्या के अनुपात में भी घट-बढ़ पाई जाती है। गोवा में ग्रामीण जनसंख्या 50.23 प्रतिशत है, जबकि अरुणाचल प्रदेश में यह 94.50 प्रतिशत है। पंजाब और हरियाणा को छोड़कर उत्तर भारत के सभी राज्यों, पश्चिम बंगाल को छोड़कर सभी पूर्वी, उत्तर-पूर्वी राज्यों और मध्य भारत के राज्यों में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। केंद्रशासित प्रदेशों में दादरा और नगर हवेली में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात सबसे अधिक (77.1 प्रतिशत) है। इसके बाद अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (67.33 प्रतिशत) का स्थान है।

ग्रामीण जनसंख्या लगभग 581 हजार गांवों (1991) में फैली हैं। जनसंख्या की दृष्टि से गांव की औसत आकार अरुणाचल प्रदेश में प्रति गांव 207 व्यक्ति और केरल में 15476 व्यक्ति के मध्य फैला है। प्रत्येक गांव में अनेक पुरवा होते हैं। इसलिए ग्रामीण जनसंख्या काफी फैली है। गांवों में सामान्य जनसंख्या की वृद्धि कई दशकों से धीरे-धीरे कम हो रही है। यह मुख्यत: अधिक मृत्यु दर और गांवों से नगरों की ओर बढ़ते प्रवसन के कारण है।

नगरीय जनसंख्या

लगभग 28.54 करोड़ (2001) लोग नगरों में रहते हैं। यह देश की कुल जनसंख्या का 27.78 प्रतिशत भाग है। ग्रामीण जनसंख्या के विपरीत नगरीय जनसंख्या का अनुपात सन् 1901 से निरंतर बढ़ रहा है। लेकिन 1941 तक वृद्धि दर धीमी थी। इस अवधि में नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 10.85 (1901) से बढ़कर केवल 13.38 प्रतिशत (1941) ही हुआ। लेकिन 1951 में यह तेजी से बढ़ कर 17.29 प्रतिशत और 2001 में 27.78 प्रतिशत हो गया। इस पर भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत आज भी संसार के अन्य देशों की तुलना में बहुत कम नगरीकृत है। संसार की लगभग 45 प्रतिशत जनसंख्या नगरीय है।

1901 में भारत की कुल नगरीय जनसंख्या 2.59 करोड़ थी। सन् 2001 में यह बढ़कर 28.54 करोड़ हो गई। विगत 100 वर्षों में यह ग्यारह गुनी वृद्धि दर थी। इस प्रकार नगरीय जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 10.04 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। लेकिन इसी अवधि में ग्रामीण जनसंख्या की औसत वृद्धि केवल 2.49 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। गांवों से नगरों में प्रवास के कारण ही यह तीव्र वृद्धि हुई है। 1980 के बाद नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर घटनी शुरू हो गई है। 1991-2001 की अवधि में यह केवल 31.13 प्रतिशत ही थी। उत्तर में चंडीगढ़, दिल्ली और हरियाणा, उत्तरपूर्व में अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम और नागालैंड और दक्षिण में तमिलनाडु में नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर अपेक्षाकृत अधिक थी। नगरीय जनसंख्या में उच्च वृद्धि दर अपेक्षाकृत छोटे राज्यों में देखी गई है, जिनमें नगरीय जनसंख्या का अनुपात पिछली जनगणना वर्ष में कम था।

नगरीकरण

ग्रामीण जनसंख्या से नगरीय जनसंख्या में समाज के बदलने की प्रक्रिया को नगरीकरण कहते हैं। नगरीकरण में दो बातें प्रमुख हैं– पहला नगरीय बस्तियों में रहने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि और दूसरा गैर-कृषि व्यवसायों में लगे ऐसी बस्तियों में रहने वाले लोगों की प्रतिशत संख्या में वृद्धि।

देश के राज्यों में नगरीकरण में व्यापक अंतर पाया जाता है। गोवा देश का सर्वाधिक नगरीकृत राज्य है। इसकी 49.77 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में रहती है। दस बड़े राज्यों में नगरीय जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से तमिलनाडु (43.86 प्रतिशत) प्रथम स्थान पर है। 42.40 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या वाला महाराष्ट्र दूसरे स्थान पर है। दक्षिणी, पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी राज्यों में नगरीकरण अधिक है (चित्र 2.1)। दादरा और नगर हवेली तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को छोड़ कर सभी केंद्रशासित प्रदेश अत्यधिक नगरीकृत हैं। दूसरी ओर उत्तरी तथा मध्य भारत और उत्तर पूर्वी राज्यों में नगरीकरण कम या बहुत कम है। जनसंख्या की दृष्टि से देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में इसकी कुल जनसंख्या का केवल पांचवां भाग (20.78 प्रतिशत) ही नगरों में रहता है। नए विचार तथा ग्रामीण पृष्ठ प्रदेश में प्रौद्योगिकी को लाने में नगरों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत की कुल नगरीय जनसंख्या का आधे से अधिक (51.1 प्रतिशत) भाग पांच राज्यों महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश में रहता है। यहां बताना प्रासंगिक होगा कि उत्तर प्रदेश उपरोक्त सूची में तो है, लेकिन, यह देश के सबसे कम नगरीकृत राज्यों में से एक है। परंतु इसकी कुल नगरीय जनसंख्या बहुत अधिक (3.45 करोड़) है। अन्य पांच राज्यों गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, राजस्थान और बिहार तथा केंद्रशासित प्रदेश दिल्ली में कुल मिलाकर देश की 33.7 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या का निवास है। शेष 18 राज्यों और छः केंद्रशासित प्रदेशों में देश की कुल नगरीय जनसंख्या का केवल 18.2 प्रतिशत भाग ही रहता है।

आयु संघटन

आयु के आधार पर जनसंख्या को प्रायः तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है। ये वर्ग हैं : (i) किशोर (ii) प्रौढ़ और (iii) वृद्ध। सामान्यतः 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को किशोर और 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को वृद्ध कहा जाता है। प्रौढ़ वर्ग (15 से 59 वर्ष आयु वर्ग) के व्यक्तियों को 'श्रमजीवी (कार्यरत) आयु वर्ग' कहा जाता है।

सन् 1991 की जनगणना के अनुसार देश की 36.5 प्रतिशत जनसंख्या किशोर अर्थात् 15 वर्ष से कम आयु की है। कुल जनसंख्या का 15.4 प्रतिशत भाग 6 वर्ष से कम आयु का है। विकसित देशों में किशोर जनसंख्या का अनुपात 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है। हमारे देश में किशोर जनसंख्या का अधिक अनुपात होने के मुख्य कारण हैं–अपेक्षाकृत उच्च जन्म दर और तीव्रता से घटती शिशु और बाल मृत्यु दर। आर्थिक दृष्टि से यह वर्ग अनुत्पादक है और इसी वर्ग की भोजन, वस्त्र, शिक्षा आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सबसे अधिक व्यय होता है। यह आश्रित जनसंख्या का एक अंग है। इनके अतिरिक्त 6.8 प्रतिशत जनसंख्या वृद्ध अर्थात् 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के लोगों की है। कुल जनसंख्या के केवल 56.7 प्रतिशत भाग 15 से 59 वर्ष के आयु वर्ग में है। इसे **प्रौढ़ वर्ग** कहा जाता है। जैव दृष्टि से यह प्रौढ़ आयु सबसे अधिक प्रजनक, आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक सक्रिय तथा जनांकिकीय दृष्टि से सबसे अधिक गतिशील है। यह वर्ग अन्य दो वर्गों की जनसंख्या का पोषण करता है। प्रौढ़ तथा किशोर और वृद्धों के बीच अनुपात को आश्रित अनुपात कहते हैं। आश्रित अनुपात 1991 में 79.4 प्रतिशत था।

भारत की 1991 की जनसंख्या के आधार पर बने आयु और लिंग को प्रदर्शित करने वाले पिरामिड का

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम, 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 2.1 भारत : नगरीकरण 2001
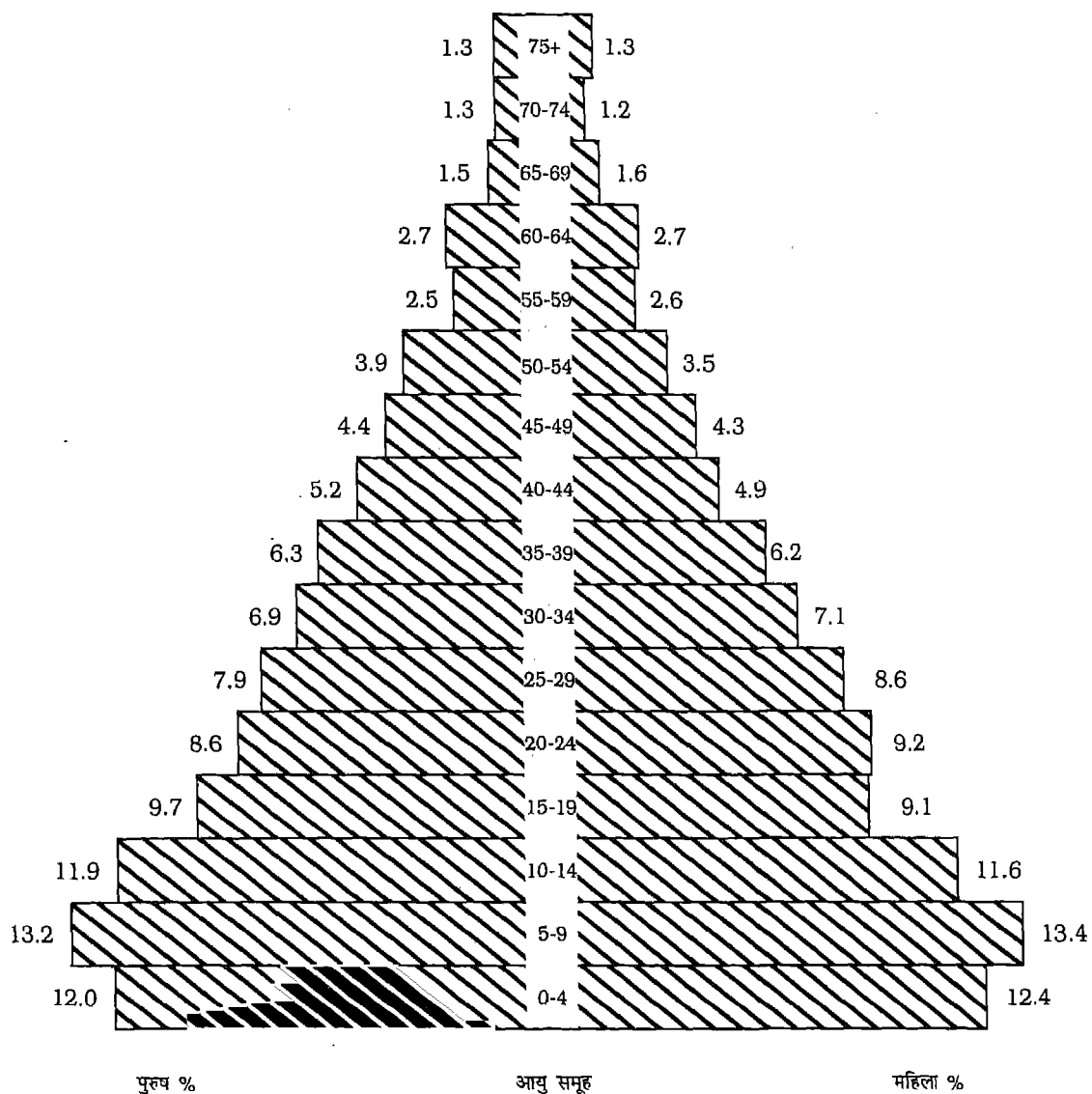
***चित्र 2.2** आयु और लिंग पिरामिड, 1991*

आधार बहुत चौड़ा है। यह चौड़ा आधार प्रारंभिक आयु वर्गों तक बना रहता है। लेकिन इसके बाद क्रमश: ऊपर की ओर संकरा होता जाता है (चित्र 2.2)।

घटती जन्म और मृत्यु दर के कारण देश की जनसंख्या का आयु संघटन धीरे-धीरे बदल रहा है। 1971 की तुलना में 1991 में देश की किशोर जनसंख्या का अनुपात घटा है। 1971 में किशोर जनसंख्या का प्रतिशत 42.0 था जो 1991 में घटकर 36.5 प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत 1971-1991 की अवधि में प्रौढ़ों का अनुपात 36.6 प्रतिशत से बढ़कर 40.9 प्रतिशत और बूढ़ों का 6.0 प्रतिशत से बढ़कर 6.8 प्रतिशत हो गया। नगरों की अपेक्षा गांवों में किशोर और बूढ़ों का अनुपात अधिक है। परिणामस्वरूप नगरों की तुलना में गांवों में आश्रित अनुपात भी अधिक है। इस स्थिति के लिए कम से कम तीन कारक जिम्मेदार हैं : नगरों की तुलना में गांवों में उच्च जन्म दर, प्रौढ़ों का गांवों से नगरों को प्रवास और वृद्धों की अपने ग्रामीण घरों में पुन: वापसी।

लिंग संघटन

जनसंख्या के लिंग संघटन को प्राय: लिंग-अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है। भारत में लिंग अनुपात की गणना

प्रति हजार पुरुषों पर स्त्रियों की संख्या के रूप में की जाती है। लिंग संघटन को समाज में पुरुषों और स्त्रियों के मध्य विद्यमान असमानता की माप के महत्वपूर्ण सामाजिक संकेतक के रूप में माना जाता है। भारत की कुल जनसंख्या 102.7 करोड़ (2001) में से 53.13 करोड़ पुरुष तथा 49.57 करोड़ स्त्रियां हैं। इस प्रकार देश में लिंग अनुपात
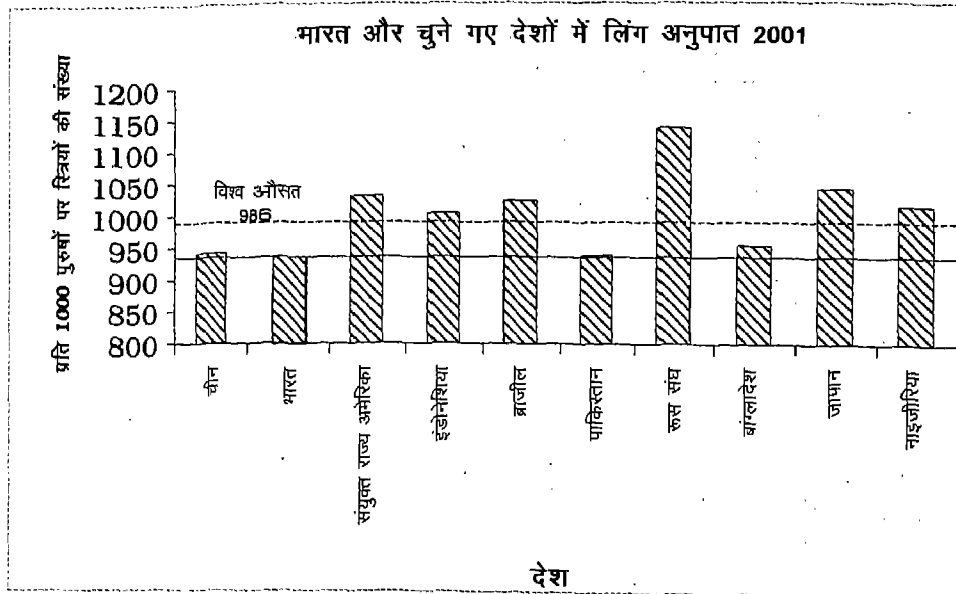
चित्र 2.3 भारत तथा चुने गए देशों में लिंग अनुपात, 2001
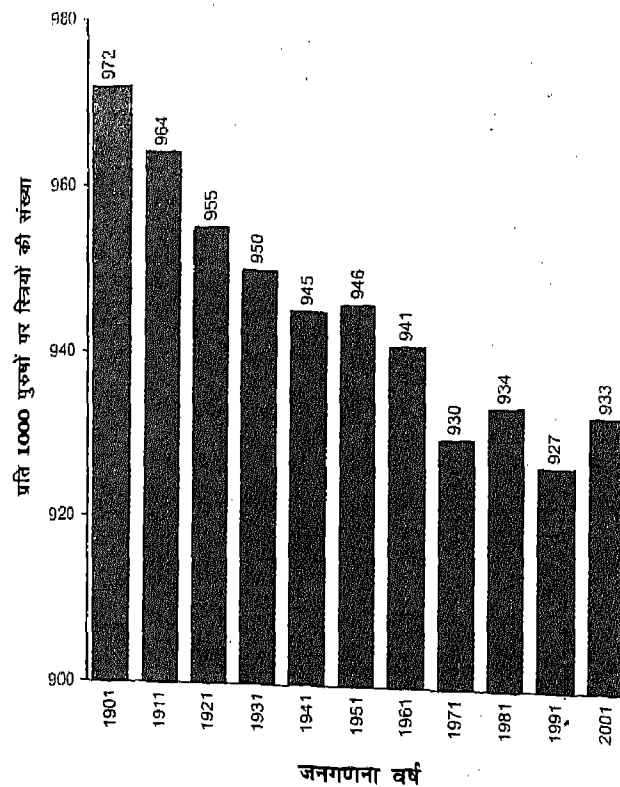
चित्र 2.4 भारत : लिंग अनुपात, 1901-2001

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

*चित्र **2.5** भारत : लिंग अनुपात, 2001*

933 है। इसे 1991 के 927 के लिंग अनुपात की तुलना में थोड़ा सुधार माना जाता है। लिंग अनुपात 1991 तक निरंतर घटता रहा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में देश का लिंग अनुपात 972 था, जो सन् 1941 तक निरंतर घटता रहा। सन् 1951 में इसमें थोड़ी सी वृद्धि हुई, लेकिन इसके बाद यह पुन: घटने लगा। लिंग अनुपात 930 की संख्या के आस-पास घटता-बढ़ता रहा है (चित्र 2.3)।

भारत में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पुरुष जन्म लेते हैं। जन्म के समय स्त्री और पुरुष के बीच की यह विषमता, स्त्रियों की अधिक मृत्यु दर का स्थायी कारण हो जाती है। शैशव काल तथा प्रजनक आयु वर्ग 15-49 वर्ष में भी अधिक स्त्रियां मर जाती हैं। अतीत काल में स्त्रियों की निरंतर कमी का कारण स्त्री-शिशुओं की हत्या की प्रथा तथा महामारियों में स्त्रियों की अधिक संख्या में मृत्यु को बताया जाता है। इस परंपरा का प्रभाव भारत की जनसंख्या के लिंग संघटन पर आज भी देखा जा सकता है।

जनसंख्या के विभिन्न वर्गों के मध्य विभिन्न आयु समूहों और विभिन्न प्रदेशों के लिंग अनुपात में व्यापक अंतर पाए जाते हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में लिंग अनुपात 946 है जबकि नगरीय क्षेत्रों में 901 है (2001)। अधिकतर राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में नगरीय लिंग अनुपात ग्रामीण लिंग अनुपात की तुलना में कम है। नगरीय क्षेत्रों के लिंग अनुपात में यह अंतर गांवों से नगरों की ओर पुरुष प्रधान प्रवास का ही परिणाम है। कुछ राज्य और केंद्रशासित प्रदेश इसके अपवाद हैं। इनके नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा लिंग अनुपात अधिक है। ऐसे राज्य और केंद्रशासित प्रदेश हैं : मणिपुर, मेघालय, त्रिपुरा, मिजोरम, पांडिचेरी, दमण और दीव, दिल्ली तथा चंडीगढ़।

राज्यों के अनुसार भी लिंग अनुपात में बहुत भिन्नता पाई जाती है। केरल में लिंग अनुपात सबसे अधिक 1058 है, हरियाणा का लिंग अनुपात 861 है, जो राज्यों में सबसे कम है। यदि राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों पर एक साथ विचार किया जाए तो सबसे कम (709) लिंग अनुपात दमण और दीव में है। दो केंद्रशासित प्रदेशों सहित, 17 राज्यों का लिंग अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है (चित्र 2.5)। उत्तर-पूर्व और दक्षिण के अधिकतर राज्यों में लिंग अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है केवल केरल और पांडिचेरी में लिंग अनुपात बहुत ऊंचा है। उत्तर भारत में केवल हिमाचल प्रदेश (970) और उत्तरांचल (964) राज्यों में लिंग अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। इसके विपरीत उत्तरी, पश्चिमी और मध्य भारत के सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में लिंग अनुपात राष्ट्रीय औसत से कम है। उत्तर-पूर्व के सिक्किम, असम और अरुणाचल प्रदेश राज्यों में भी लिंग अनुपात कम है। इन तथ्यों का सामान्यीकरण भी किया जा सकता है कि भारत में लिंग अनुपात दक्षिण से उत्तर की ओर तथा पूर्व से पश्चिम की ओर घटता जाता है।

> ***लिंग अनुपात का घटना***
>
> *भारत में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की तुलना में कम है। इसके लिए उत्तरदायी कई कारक हैं :*
>
> - *लड़कियों की तुलना में अधिक लड़कों का जन्म लेना;*
> - *शैशवावस्था में कन्या शिशुओं की मृत्यु और बच्चे के जन्म के समय अधिक स्त्रियों की मृत्यु;*
> - *स्त्रियों की सामान्य उपेक्षा के कारण बचपन में उनकी अधिक मृत्यु दर;*
> - *गर्भावस्था में स्त्री-शिशु होने पर भ्रूणहत्या;*
>
> *लिंग अनुपात का घटना भारतीय समाज को किस प्रकार प्रभावित करता है?*

कामगार और गैर-कामगार

काम की अवधि के आधार पर भारत की जनसंख्या को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है। मुख्य कामगार, सीमांत कामगार और गैर-कामगार। *मुख्य कामगार* वह है, जो वर्ष में छ: महीने (183 दिन) तक आर्थिक रूप से उत्पादक कार्य में शारीरिक या मानसिक रूप से भाग लेता है। *सीमांत कामगार* वह है, जो वर्ष में 183 से कम दिनों में आर्थिक रूप से उत्पादक कार्य में मानसिक या शारीरिक रूप से भाग लेता है। *गैर-कामगार* वह है, जिसने वर्ष भर अपनी आजीविका के लिए कोई काम नहीं किया है। कुल जनसंख्या में कामगारों के अनुपात को *सहभागिता* दर कहते हैं। देश में कुल जनसंख्या में 30.5 प्रतिशत मुख्य कामगार, 8.7 प्रतिशत सीमांत कामगार तथा 60.8 प्रतिशत गैर-कामगार हैं। इस प्रकार आजकल देश में एक ओर आश्रितों की प्रचंड समस्या और दूसरी ओर अपूर्ण रोजगारी और बेरोजगारी की विकट समस्या है।

सहभागिता दर (कामगार और सीमांत-कामगार) 1981 में 36.77 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 1991 में 39.26 प्रतिशत हो गई। यह वृद्धि अर्थव्यवस्था में सुधार, कार्य के अवसरों में वृद्धि तथा शारीरिक श्रम (कार्य) के साथ जुड़े सामाजिक कलंक की ढीली पड़ती पकड़ की परिचायक है।

राज्यों में मुख्य कामगारों का अनुपात, केरल में कुल जनसंख्या के 25.87 प्रतिशत और अरुणाचल प्रदेश के

37.7 प्रतिशत के मध्य घटता-बढ़ता है। तेरह राज्यों और दो केंद्रशासित प्रदेशों में मुख्य कामगारों का अनुपात 34.1 प्रतिशत था। केरल को छोड़कर लगभग संपूर्ण दक्षिणी प्रायद्वीप, सिक्किम, असम और त्रिपुरा को छोड़कर सभी उत्तर-पूर्वी राज्यों में, उत्तरांचल और हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी जिलों में कामगारों का अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। इसके विपरीत, उत्तरी राजस्थान से लेकर पूर्वी बिहार तक फैली पट्टी में कामगारों का अनुपात 30 प्रतिशत से कम था। केरल की तटीय पट्टी भी इसी वर्ग में आती है। ये सभी खेतिहर पट्टियां हैं। यहां रोजगार के अन्य साधन सीमित हैं।

भारतीय श्रमशक्ति का विशिष्ट लक्षण है : स्त्रियों और पुरुषों की सहभागिता दरों में व्यापक विषमता। यही विषमता देश को विकसित देशों से अलग करती है। भारत में आर्थिक रूप से लाभकारी क्रियाकलापों में स्त्रियों की भागीदारी नाममात्र की है। 45.39 प्रतिशत पुरुष मुख्य कामगारों के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं, जबकि केवल 14.68 प्रतिशत स्त्रियां ही इस वर्ग में शामिल हैं। भारत में स्त्रियों की निम्न सहभागिता के कुछ कारक ये हैं : सम्मिलित परिवार व्यवस्था, स्त्रियों में शिक्षा का निम्न स्तर, बारंबार शिशु जन्म, रोजगार के सीमित अवसर और स्त्रियों पर परिवार की अधिक जिम्मेदारी।

मुख्य कामगारों का अनुपात मणिपुर में पुरुषों की जनसंख्या के 39.83 प्रतिशत और तमिलनाडु के 52.28 प्रतिशत के मध्य घटता-बढ़ता है। स्त्री कामगारों के संदर्भ में यह पंजाब में स्त्रियों की कुल जनसंख्या का केवल 11.92 प्रतिशत और नागालैंड के 33.62 प्रतिशत के मध्य घटता-बढ़ता है। ऊपर के विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राज्यों में पुरुष कामगारों के अनुपात में भिन्नता उतनी अधिक नहीं है, जितनी की यह स्त्री कामगारों में है। सहभागिता दर में स्थानिक भिन्नता भी स्त्रियों की सहभागिता दर में भिन्नता के कारण ही पाई जाती है।

व्यावसायिक संरचना

किसी व्यक्ति के व्यवसाय का अर्थ है इसका वह कार्य, पेशा या व्यापार जिससे वह अपनी रोजी-रोटी कमाता है। व्यवसाय को सामान्यत: तीन वर्गों : प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक में बांटते हैं।

सन् 2001 में देश के दो तिहाई से अधिक (67.4 प्रतिशत) मुख्य कामगार कृषि कार्यों में लगे हुए थे। इसके

भारत की जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण

1. *खेती करना*
2. *खेतिहर मजदूर*
3. *पशुपालन, वानिकी, मछली पकड़ना, शिकार करना, रोपण कृषि, उद्यान कृषि और संबंधित क्रियाएं*
4. *खनन और उत्खनन*
5. *विनिर्माण, प्रसंस्करण*
   (क) घरेलू उद्योग
   (ख) घरेलू उद्योग के अतिरिक्त उद्योग
6. *भवन-निर्माण*
7. *व्यापार और वाणिज्य*
8. *व्यापार और भंडारण*
9. *अन्य सेवाएं।*

भारतीय जनगणना के अनुसार 1981 और 2001 में जो आंकड़े प्रकाशित किए हैं उनमें कामगारों को निम्न चार श्रेणियों में बांटा गया है :

(i) *कृषक*
(ii) *खेतिहर मजदूर*
(iii) *घरेलू औद्योगिक कामगार*
(iv) *अन्य कामगार*

विपरीत गैर कृषि कार्यों में कामगारों का अनुपात मात्र 12.1 प्रतिशत ही था। श्रम शक्ति में 38.72 प्रतिशत किसान तथा 26.09 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे। इससे देश की श्रम शक्ति में कृषि की प्रधानता सत्यापित होती है और कृषि-क्षेत्र में रोजगार न पा सकने वाले श्रमिकों को द्वितीय क्षेत्र में भी रोजगार न मिल सकने का तथ्य उजागर होता है। अपितु द्वितीय क्षेत्र की, कृषि में न खप सकने वाली श्रमशक्ति का रोजगार न दे पाने की अत्यधिक सामर्थ्यहीनता भी उजागर होती है।

लिंग के अनुसार स्त्री कामगारों का रुझान प्राथमिक क्षेत्र में है। 71.9 प्रतिशत से भी अधिक स्त्री कामगार कृषि कार्यों में रत है, जबकि पुरुष कामगारों का प्रतिशत 51.8 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त, गैर कृषि कार्यों में 28.1 प्रतिशत स्त्री कामगार लगे हैं, इसके विपरीत इन क्षेत्रों में पुरुष कामगारों का प्रतिशत 47.8 प्रतिशत है।

यह बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि कृषि-कामगारों का अनुपात घट रहा है। 1971 में यह 69.49 प्रतिशत था जो घटकर 2001 में 58.4 प्रतिशत रह गया। कृषीय क्षेत्र से गैर कृषीय क्षेत्र में यह अंतरण एक शुभ संकेत है। लेकिन यहीं यह बात भी उल्लेखनीय है कि घरेलू उद्योगों का महत्व बढ़ रहा है। इस वर्ग के कामगारों की संख्या

1971 के 3.52 प्रतिशत से बढ़कर 2001 में 4.07 प्रतिशत हो गई है। गैर कृषि क्षेत्रों में यह परिवर्तन अच्छा संकेत है। विगत दो दशकों की अवधि में गैर-कृषीय क्षेत्र में उल्लेखनीय लाभ हुआ है। विनिर्माण, व्यापार, परिवहन, भंडारण और संचार तथा अन्य सेवाओं में कार्यरत लोगों को गैर-कृषीय कामगारों के वर्ग में शामिल किया जाता है। कुल कामगारों में इन कामगारों का प्रतिशत 37.53 है। देश में तृतीयक कामगारों का अधिक अनुपात मुख्य रूप से नगरीकृत जिलों तक ही सीमित है।

सारणी 2.1 — भारत : कामगारों की व्यावसायिक संरचना (प्रतिशत), 2001

व्यवसाय	*व्यक्ति*	*पुरुष*	*स्त्री*
कृषक	31.71	31.34	32.50
कृषीय श्रमिक	26.69	20.82	39.43
घरेलू-उद्योग	4.07	3.02	6.37
अन्य कामगार	37.58	44.72	21.70
योग	100.00	100.00	100.00

विभिन्न व्यवसायों में कामगारों के अनुपात में भारी अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए चंडीगढ़ में मुख्य कामगारों में से किसान केवल 0.47 प्रतिशत ही हैं, जबकि नागालैंड में 68.23 प्रतिशत हैं। कृषीय श्रमिकों के अनुपात में भी बहुत अंतर है। आंध्र प्रदेश में कृषीय श्रमिकों का प्रतिशत सबसे अधिक 39.63 है, जबकि न्यूनतम प्रतिशत 0.11 चंडीगढ़ में हैं। कृषीय श्रमिकों और किसानों में विपरीत संबंध है। फिर भी, कृषीय श्रमिक मुख्य रूप से समाज के कमजोर वर्ग से आते हैं तथा इन्हें वर्ष के अधिकतर दिनों में अपूर्ण रोजगार ही मिल पाता है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   (i) जनसंख्या की प्रमुख जनांकिकीय विशेषताएं कौन-सी हैं?
   (ii) देश के किस भाग में ग्रामीण जनसंख्या का अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है?
   (iii) आश्रित अनुपात किसे कहते हैं तथा इसकी गणना कैसे की जाती है?
   (iv) भारत के आयु पिरामिड की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
   (v) विगत कुछ वर्षों में भारत की जनसंख्या के आयु संघटन में हुए परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।
   (vi) देश में लिंग अनुपात के वितरण प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।
   (vii) भारत में किसानों के अनुपात के वितरण प्रतिरूप का विवरण दीजिए।
   (viii) किशोरों, प्रौढ़ों और वृद्धों के वर्गों की आयु सीमाएं बताइए।
2. भारत की जनसंख्या के आयु संघटन का वर्णन कीजिए तथा इससे उत्पन्न समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
3. विगत शताब्दी में भारत में लिंग अनुपात की प्रवृत्ति की विवेचना कीजिए।
4. भारत की जनसंख्या के लिंग संघटन के प्रादेशिक प्रतिरूपों की विवेचना कीजिए तथा उच्च लिंग अनुपात के गुच्छों के नाम बताइए।
5. भारत की जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना के मुख्य लक्षणों की विवेचना कीजिए।
6. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) मुख्य तथा सीमांत कामगार
   (ii) कार्यशील आयुवर्ग तथा प्रजनक आयुवर्ग
   (iii) प्राथमिक और तृतीयक आर्थिक क्रियाकलाप।

परियोजना कार्य

7. (i) अपने राज्य/केंद्र शासित प्रदेश की व्यावसायिक संरचना के बारे में आंकड़े एकत्र कीजिए।
   (ii) आंकड़ों को वृत्त आरेख के द्वारा प्रदर्शित कीजिए।
   (iii) व्यावसायिक संरचना का संक्षिप्त विवरण लिखिए।

3
अध्याय

जनसंख्या के सामाजिक और सांस्कृतिक लक्षण

भारत की जनसंख्या विभिन्न नृजातीय, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक समूहों से बनी है। प्राचीन काल में जनसंख्या चार वर्णों में विभाजित थी। लेकिन अब वह स्वरूप विकृत होकर विभिन्न जातियों में बदल गया है। उनके उचित अधिकारों की रक्षा के लिए समाज के निम्नतम वर्ग के लोगों को अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजाति के रूप में सूचीबद्ध कर दिया गया है। अनुसूचित जातियां हिंदू समाज के अभिन्न अंग हैं। अनुसूचित जनजातियां अन्य लोगों का प्रजातीय, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से एक मिश्रित समूह है। यह आवश्यक नहीं है कि ये लोग गैर हिंदू हैं।

भारत में अनेक युगों में विविध प्रजातियों और नृजातीय समूहों ने विविध भाषाओं का विकास किया है। राजभाषा हिंदी के अलावा 18 भाषाओं को प्रादेशिक भाषाओं की मान्यता दी गई है। ये सभी संविधान की आठवीं अनुसूची में सूचीबद्ध हैं। भाषाई विविधता अंतर्प्रादेशिक मधुर संबंधों के मार्ग में आड़े तो आई हैं, लेकिन इससे भारत कभी कमजोर नहीं पड़ा है। सभी सांस्कृतिक एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं।

धार्मिक विश्वासों की विविधता भारतीय जनसंख्या की अन्य विशेषता है। हिंदू धर्म देश का प्रमुख धर्म है। तीन अन्य प्रमुख धर्मों का उत्पत्ति स्थान भी भारत ही है। ये धर्म हैं : बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिक्ख धर्म। इस्लाम और ईसाई धर्मों के अनुयायी भी भारत में काफी बड़ी संख्या में रहते हैं। भारत में पारसी, यहूदी, और बहाई धर्मावलंबी भी रहते हैं। भारत में एक अनोखी मिश्र संस्कृति के निर्माण में धर्मों और भाषाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन कुछ वर्षों में उन्होंने लोगों को विभाजित भी किया है। भारत का विभाजन धार्मिक आधार पर हुआ। पाकिस्तान भाषाओं के आधार पर पाकिस्तान और बांग्लादेश में बंट गया।

सामाजिक संघटन

अनुसूचित जातियां

भारत में 'अनुसूचित जाति' शब्द का पहली बार प्रयोग भारत सरकार के अधिनियम 1935 में हुआ था। यह अधिनियम की अनुसूची 341 में शामिल जातियों का उल्लेख करता है। भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति समुदायों को सुरक्षित रखा है। भारत में स्वतंत्रता के समय अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 5.17 करोड़ थी। यह बढ़कर 1981 में 10.47 करोड़ तथा 1991 में 13.82 करोड़ हो गई थी। 1981-91 की अवधि में यह 32.0 प्रतिशत बढ़ गई थी। 1991 में अनुसूचित जाति की जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या की 16.48 प्रतिशत थी।

अनुसूचित जाति एक विषमजातीय समूह है। इसमें 542 जातियां शामिल हैं। सामाजिक और आर्थिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से ये लगभग एक जैसी हैं। इनमें से अधिकतर गरीब हैं और गांवों में (81.28 प्रतिशत) रहती हैं तथा खेती में लगी हैं।

वितरण प्रतिरूप (1991) : अनुसूचित जातियां किसी एक या दो राज्यों तक ही सीमित नहीं हैं, वे पूरे देश में वितरित हैं। उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति के 2.93 करोड़ लोग रहते हैं। पश्चिम बंगाल दूसरे स्थान पर है, जहां अनुसूचित जाति के लोगों की संख्या 1.6 करोड़ है। इन दो राज्यों में देश की अनुसूचित जाति की लगभग एक तिहाई (32.8 प्रतिशत) जनसंख्या का निवास है। अनुसूचित जाति की विशाल जनसंख्या वाले अन्य राज्य बिहार, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, पंजाब और उड़ीसा (चित्र 3.1) हैं।

सामान्य जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या के प्रतिशत की दृष्टि से पंजाब प्रथम स्थान पर है। इसकी कुल संख्या में से 28.31 प्रतिशत लोग अनुसूचित जाति के हैं। 20 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति की जनसंख्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और पश्चिम बंगाल हैं। वास्तव में उत्तरी जलोढ़ मैदानों में अनुसूचित जाति का उच्च संकेंद्रण है। केरल, गुजरात, राजस्थान, सिक्किम और असम में इनकी जनसंख्या कम (5 से 10 प्रतिशत) है। उत्तर-पूर्व के अधिकतर राज्यों और दमण व दीव तथा दादरा नगर हवेली के केंद्रशासित प्रदेशों में इनकी जनसंख्या बहुत ही कम (5 प्रतिशत से कम) है। नागालैंड, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में अनुसूचित जाति की जनसंख्या बिल्कुल नहीं है।

साक्षरता : अनुसूचित जातियों में साक्षरता कम है। लेकिन यह जनजातीय जनसंख्या की साक्षरता दर (29.60 प्रतिशत) से अधिक है। अनुसूचित जाति के लगभग आधे (49.91 प्रतिशत) पुरुष तथा एक चौथाई (23.76 प्रतिशत) स्त्रियां साक्षर हैं (सारणी 3.1)। अनुसूचित जनजातियों की तुलना में अनुसूचित जातियों में साक्षरता की स्थिति बेहतर है। सामान्यत: उच्च साक्षरता दर वाले राज्यों में रहने वाली अनुसूचित जातियों में भी साक्षरता दरें ऊंची ही हैं। उत्तर प्रदेश, राजस्थान और बिहार की अनुसूचित जातियों में साक्षरता बहुत कम है। हरियाणा, कर्नाटक, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, और आंध्र प्रदेश तथा अन्य राज्यों में साक्षरता मध्यम है।

व्यावसायिक संरचना : कुल अनुसूचित जाति की 39.25 प्रतिशत जनसंख्या कामगार है। यह अनुपात कुल जनसंख्या के अनुपात से थोड़ा अधिक (37.5 प्रतिशत) है, लेकिन अनुसूचित जनजाति के कामगारों के अनुपात (49.3 प्रतिशत) से काफी कम है। इन जातियों में पुरुषों और स्त्रियों में सहभागिता दर क्रमश: 51.48 तथा 25.98 प्रतिशत हैं।

अनुसूचित जाति के तीन-चौथाई से ज्यादा मुख्य कामगार प्राथमिक आर्थिक क्रियाकलापों, 9.83 प्रतिशत द्वितीयक क्रियाकलापों, तथा 13.06 प्रतिशत तृतीयक क्रियाकलापों में लगे हैं। कृषि इनका प्रमुख प्राथमिक क्रियाकलाप है। मुख्य कामगारों में से लगभग (49.06 प्रतिशत) खेतिहर मजदूर हैं। 26.69 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत की तुलना में यह अनुपात असाधारण रूप से उच्च है। यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि कुल खेतिहर मजदूरों में से एक-तिहाई से अधिक (38.7 प्रतिशत) मजदूर अनुसूचित जाति के हैं।

द्वितीयक क्रियाकलापों में अनुसूचित जाति के लोगों का अनुपात न केवल कम है, अपितु विगत दशक में घट भी गया है। इसके विपरीत तृतीयक क्रियाकलापों में इनके प्रतिशत में वृद्धि हो रही है। 1981 में तृतीयक क्रियाकलापों में अनुसूचित जाति के मुख्य कामगारों का प्रतिशत 10.78 था जो बढ़कर 1991 में 13.06 हो गया। इसका कारण, मिट्टी के बर्तन, चमड़े की वस्तुएं बनाने जैसे पारंपरिक निर्माण कार्यों में कमी का आना है।

जनजातीय जनसंख्या

भारत की जनजातियों में नृजातीय विविधता दिखाई पड़ती है। इनमें विविध नृजातीय, भाषाई और धार्मिक समूह हैं। इनके धार्मिक अनुष्ठानों, विश्वासों, आस्थाओं और आर्थिक क्रियाकलापों में भी विविधता पाई जाती है। जनजातियों के अधिकतर लोग दुर्गम क्षेत्रों में रहते हैं। इनका जीवन और क्रिया कलाप इनके पर्यावरण से सीधे जुड़े हैं। इनमें से कुछ चलवासी हैं। शायद संसार में जनजाति के सबसे अधिक लोग भारत में ही बसते हैं। सन् 1950 के संविधान के आदेश से (14 राज्यों की) 212 जनजातियों को अनुसूचित जनजातियां घोषित किया गया था। 1976 के संविधान संशोधन के द्वारा

सारणी 3.1 — भारत : कुल जनसंख्या, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता दर (प्रतिशत) की तुलना, 1991

चर	*कुल जनसंख्या*	*अनुसूचित जाति*	*अनुसूचित जनजाति*
कुल साक्षरता	52.21	37.41	29.60
पुरुष साक्षरता	64.2	49.91	40.65
स्त्री साक्षरता	39.19	23.76	18.19
ग्रामीण जनसंख्या में साक्षरता	44.54	33.25	27.38
नगरीय जनसंख्या में साक्षरता	73.01	55.09	56.60

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 3.1 भारत : अनुसूचित जातीय जनसंख्या का वितरण, 1991

अधिकतर जनजातियों पर से क्षेत्रीय प्रतिबंध उठा लिए गए हैं। अनुसूचित जनजातियों की सूची में अब संपूर्ण भारत में रहने वाली 550 जनजातियां शामिल हैं।

स्वतंत्र भारत में सन् 1951 में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 2.25 करोड़ थी, जो कुल जनसंख्या का 5.6 प्रतिशत भाग था। 1991 में इनकी जनसंख्या बढ़कर 6.77 करोड़ हो गई, जो कुल जनसंख्या का 8.08 प्रतिशत भाग था। अनुसूचित जनजाति जनसंख्या की वृद्धि दर ऊंची है। 1951-1991 की अवधि में देश की जनसंख्या में कुल 2.3 गुनी वृद्धि हुई थी (सारणी 3.2), जबकि इसी अवधि में जनजातियों में कुल 2.6 गुनी वृद्धि हुई थी।

1951-61 और 1971-81 की अवधियों में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या में अति उच्च वृद्धि का मुख्य कारण अनुसूचित जनजाति की सूची में और अधिक जातियों को शामिल करना था।

वितरण प्रतिरूप : जनजातीय समुदायों का पहाड़ी, ऊबड़-खाबड़ और वनाच्छादित क्षेत्रों में संकेंद्रण है। अतः इनका वितरण बहुत असमान है। जनजातीय जनसंख्या के संकेंद्रण की दो पट्टियां हैं : पहली पट्टी पश्चिम में राजस्थान से पूर्व में उड़ीसा तक विस्तृत है तथा दूसरी पट्टी उत्तर पूर्वी राज्यों में है। 1991 की जनगणना के अनुसार गोवा में जनजाति के लोगों की संख्या मात्र 376 थी तथा मध्य प्रदेश में जनजाति की जनसंख्या 1.54 करोड़ थी। संख्या की दृष्टि से गोवा सभी राज्यों से निम्नस्तर पर तथा मध्य प्रदेश में उच्चतम स्तर पर था। उस समय पंजाब और हरियाणा में अनुसूचित जनजाति का एक भी व्यक्ति नहीं था। केंद्रशासित प्रदेशों चंडीगढ़, दिल्ली, और पांडिचेरी में भी अनुसूचित जनजाति के लोग नहीं थे। कुल जनसंख्या में जनजातीय जनसंख्या का सबसे अधिक प्रतिशत (94.75) मिजोरम में है। इस दृष्टि से यह राज्य प्रथम स्थान पर है। उत्तर-पूर्वी राज्यों, दादरा और नगर हवेली तथा लक्षद्वीप में जनजातियों की जनसंख्या 50 प्रतिशत से अधिक है (चित्र 3.2)। चार प्रमुख राज्यों मध्य प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात और राजस्थान में देश की आधे से अधिक जनजातीय जनसंख्या रहती है। सिक्किम, असम और दमण व दीव में भी जनजातियों की जनसंख्या 10 से 25 प्रतिशत तक है। उत्तरी मैदानों और दक्षिणी राज्यों में जनजातीय जनसंख्या 10 प्रतिशत में कम है।

साक्षरता : जनसंख्या के अन्य खंडों की तुलना में जनजातियों में साक्षरता अब भी बहुत कम है। 1991 में 6 वर्ष से अधिक आयु की एक तिहाई (29.6 प्रतिशत) से भी कम जनजातीय जनसंख्या साक्षर थी। इसके विपरीत कुल जनसंख्या में 52.2 प्रतिशत लोग साक्षर तथा अनुसूचित जातियों की 37.4 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर थी (सारणी 3.1)। स्त्री और पुरुषों की साक्षरता में भी बहुत अंतर है। केवल 18.2 प्रतिशत जनजातीय स्त्रियां साक्षर थीं। इनके विपरीत 44.7 प्रतिशत पुरुष साक्षर थे। जनजातियों मे निरक्षरता के प्रमुख कारक हैं : गरीबी, दुर्गमता तथा सामाजिक आर्थिक पिछड़ापन।

एक राज्य से दूसरे राज्य में भी साक्षरता में बहुत अंतर है। केरल, उत्तर पूर्वी राज्यों, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर और मिजोरम में साक्षरता प्रायः अधिक है। इन राज्यों में 40 प्रतिशत साक्षरता है। इसके विपरीत मध्यवर्ती और पश्चिमी भारत की प्रमुख जनजातीय पट्टियों में साक्षरता कम ही नहीं, बहुत कम भी है। इस प्रकार लोगों के विकास के मार्ग में साक्षरता का निम्न स्तर प्रमुख बाधा है।

व्यावसायिक संरचना : कुल जनजातीय जनसंख्या में मुख्य कामगारों का प्रतिशत 42 है, जबकि देश की कुल जनसंख्या में मुख्य कामगार 34.1 प्रतिशत हैं। जनजातीय जनसंख्या में लगभग 7.3 प्रतिशत सीमांत कामगार हैं। इस प्रकार लगभग आधी जनजातीय जनसंख्या (49.7 प्रतिशत) जीविकोपार्जन के लिए कार्य करती है। जनजातीय समुदाय

सारणी 3.2 — **भारत : अनुसूचित जनजाति जनसंख्या की वृद्धि 1951-1991**

विशेषताएं	*1951*	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*
जनसंख्या (करोड़ में)	2.25	2.99	3.80	5.36	6.77
देश की जनसंख्या में भाग (प्रतिशत में)	5.6	6.8	7.2	7.76	8.08
दशक में वृद्धि (प्रतिशत में)	अनुपलब्ध	32.9	27.1	41.05	26.31
राष्ट्रीय जनसंख्या में वृद्धि (प्रतिशत में)	अनुपलब्ध	21.64	24.80	24.66	23.86

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 3.2 भारत : अनुसूचित जनजातीय जनसंख्या का वितरण, 1991

की स्त्रियों के काम करने के संबंध में किसी भी प्रकार का सामाजिक बंधन नहीं है। जनजातीय स्त्रियों में सहभागिता दर बहुत ऊंची (43.7 प्रतिशत) है। जनजातीय समुदाय एक खुला समाज है, जिसमें पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की प्रतिष्ठा समान होती है और वे सभी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार कार्यों में सहयोग करते हैं।

जनजातीय लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। लगभग 54.5 प्रतिशत मुख्य कामगार कृषक हैं तथा 32.7 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। स्त्रियां मुख्य रूप से खेतिहर मजदूर हैं। मुख्य कामगारों का केवल एक प्रतिशत भाग घरेलू उद्योगों और निर्माण के कार्यों में लगा है। इनमें से अधिकतर तृतीयक क्रियाकलापों में अर्ध कुशल या अकुशल श्रमिकों के रूप में कार्य करते हैं। विगत वर्षों में सरकारी और गैर-सरकारी सेवाओं में इनकी भागीदारी में वृद्धि हुई है।

भाषाई संघटन

भाषा, नृजातीय पहचान का प्रमुख संकेतक है। साथ ही यह समाज को एकता के सूत्र में बांधने वाली बहुत बड़ी शक्ति है। भारत की भाषाओं और बोलियों में भारी विविधता पाई जाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपनी एकता कारी शक्ति के कारण भाषा को राज्य के पुनर्गठन का आधार स्वीकार किया गया था। 1961 की जनगणना में 1652 भाषाओं को मातृभाषा के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। इनमें से 23 भाषाओं के बोलने वाले भारत की कुल जनसंख्या के 97 प्रतिशत लोग हैं। इनमें से भी अंग्रेजी के अलावा 18 भाषाएं देश के संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल की गई हैं। अनुसूचित भाषाएं और मातृभाषा के रूप में इनके बोलने वालों की संख्या (1991) को सारणी 3.3 में प्रदर्शित किया गया है।

भाषाओं को प्रोत्साहन

भाषा संचार और शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति और कार्यक्रम क्रियान्वयन में इसके विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। स्वैच्छिक संगठनों और व्यक्तियों को आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के लिए विश्वकोश, ज्ञान की पुस्तकें, भाषा विज्ञान पर मौलिक लेखन, साक्षरता, भारतीय विद्या से संबंधित सामाजिक मानव शास्त्र और सांस्कृतिक विषयों पर पुस्तकों के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

1991 की जनगणना के अनुसार, अपने परिवर्तित रूपों के साथ हिंदी 33.73 करोड़ लोगों की मातृभाषा है। देश की 40.42 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी भाषा भाषी है। हिंदी के बाद बांग्ला भाषा का स्थान है। यह देश की कुल जनसंख्या के 8.30 प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती है। देश में बोली जाने वाली अन्य प्रमुख भाषाएं हैं – तेलुगु, मराठी, तमिल, उर्दू, गुजराती, कन्नड, मलयालम, उड़िया, पंजाबी और असमिया। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को संविधान में राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है तथा

सारणी 3.3 — भारत : 1991 में अनुसूचित भाषाओं की तुलनात्मक क्षमता

आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाएं	*मातृभाषा के रूप में बोलने वालों की संख्या (करोड़ों में)*	*कुल जनसंख्या का प्रतिशत*
हिंदी	33.73	40.42
बांग्ला	6.96	8.30
तेलुगु	6.60	7.87
मराठी	6.25	7.45
तमिल	5.30	6.32
उर्दू	4.34	5.18
गुजराती	4.07	4.85
कन्नड़	3.28	3.91
मलयालम	3.04	3.62
उड़िया	2.81	3.35
पंजाबी	2.34	2.79
असमिया	1.31	1.56
सिंधी	0.21	0.25
नेपाली	0.21	0.25
कोंकणी	0.18	0.21
मणिपुरी	0.127	0.15
कश्मीरी	0.006 (60 हजार)	0.01
संस्कृत	0.005 (50 हजार)	0.01

हिंदी और अंग्रेजी को भारतीय संघ की राजभाषाओं के रूप में मान्यता दी गई है। त्रिभाषा सूत्र--एक मातृभाषा, हिंदी और अंग्रेजी का हिंदी को मान्यता दिलाने के लिए समझौते के रूप में पालन किया जा रहा है।

भाषाओं का वर्गीकरण और वितरण

भारतीय संघ की भाषाएं मुख्यतः दो परिवारों की हैं। ये हैं : भारतीय आर्य और द्रविड़ परिवार। भारतीय आर्य परिवार की भाषाएं उत्तर और मध्य भारत में बोली और लिखी जाती हैं। द्रविड़ परिवार की भाषाएं दक्षिण में बोली और लिखी जाती हैं। देश की कुल जनसंख्या के लगभग 73 प्रतिशत लोग भारतीय आर्य परिवार की भाषाएं तथा 20 प्रतिशत लोग द्रविड़ परिवार की भाषाएं बोलते हैं। इनके अतिरिक्त देश में बोली जाने वाली अन्य भाषाएं चीनी-तिब्बती परिवार (0.85 प्रतिशत) तथा आग्नेय (आस्ट्रिक, 1.38 प्रतिशत) परिवार की हैं। इस प्रकार भारतीय भाषाएं निम्नलिखित चार परिवारों की हैं :

1. भारोपीय (भारतीय-यूरोपीय-आर्य)
2. द्रविड़
3. आग्नेय (आस्ट्रिक)
4. चीनी-तिब्बती भाषाएं।

आर्य भाषाएं : कुल जनसंख्या का लगभग तीन-चौथाई भाग कोई न कोई आर्य भाषा बोलता है। इस परिवार की भाषाओं का संकेंद्रण भारत के उत्तरी मैदानों में है। गुजरात और महाराष्ट्र में भी इसी परिवार की भाषाओं का प्रसार है (सारणी 3.3)। बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से हिंदी का संसार में चौथा स्थान है। इसकी कई बोलियां हैं खड़ी बोली भी उनमें से एक है। उर्दू भी हिंदी से मिलती-जुलती भाषा है। यह भी इस पट्टी में व्यापक रूप से बोली जाती है। इस समूह की अन्य भाषाएं : पंजाबी और गुजराती हैं, जो क्रमशः पंजाब और गुजरात राज्यों में बोली जाती हैं।

कच्छी और सिंधी भी इसी परिवार की भाषाएं हैं। ये गुजरात और राजस्थान में बोली जाती हैं। मराठी का संकेंद्रण महाराष्ट्र में है। उड़िया, बांग्ला और असमिया पूर्वी समूह की भाषाएं हैं तथा ये पूर्वी भारत क्रमशः मुख्यतः उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम में बोली जाती हैं।

कश्मीरी, कोहिस्तानी, शीना और दादरी जम्मू और कश्मीर राज्य के विभिन्न भागों में बोली जाती हैं।

द्रविड़ भाषाएं : प्रायद्वीपीय भारत में रहने वाली देश की बीस प्रतिशत जनसंख्या द्रविड़ भाषाएं बोलती हैं। तमिल, कन्नड़ और मलयालम का संकेंद्रण क्रमशः तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल राज्यों में है। तेलुगु आंध्र प्रदेश में बोली जाती है। द्रविड़ भाषाओं में अन्य भाषा परिवारों की तुलना में विविधता कम है। बोलने वाले लोगों में 96 प्रतिशत लोग ये चार भाषाएं बोलते हैं। शेष लोग अल्प भाषा-भाषी हैं।

आग्नेय (आस्ट्रिक) भाषाएं : ये भाषाएं मेघालय, झारखंड और पश्चिमी सतपुड़ा के जनजातीय समूहों द्वारा बोली जाती हैं। इस भाषा परिवार की दो शाखाएं हैं : मुंडा और मान-ख्मेर। इन दो में से मान-ख्मेर (खासी) खासी और जयंतिया पहाड़ियों तक ही सीमित है। निकोबारी, निकोबार द्वीप समूह में बोली जाती है। इसके विपरीत मुंडा भाषा झारखंड और पश्चिमी सतपुड़ा प्रदेश की जनजातियों द्वारा बोली जाती है।

चीनी-तिब्बती भाषाएं : इस परिवार की भाषाओं की अनेक शाखाएं, समूह और उपसमूह हैं। ये कुछ छोटे क्षेत्रों में ही सीमित हैं। इन भाषाओं का संकेंद्रण उत्तर-पूर्वी राज्यों, तथा उत्तर और उत्तर पश्चिम के हिमालयी और उपहिमालयी प्रदेशों में है।

भारत में चीनी-तिब्बती भाषा परिवार की भाषा बोलने वालों की तीन प्रमुख शाखाएं हैं : तिब्बत हिमालयी, अरुणाचल प्रदेश और नागा-म्यांमारी। पहली शाखा के प्रमुख वर्ग भूटिया और किन्नौरी हैं। अका, दफला, मिरी और अबोर दूसरी शाखा के वर्ग हैं तथा बोड़ो, नागा और कूकी समूह तीसरी शाखा से संबंधित हैं।

भारत के राज्य भाषा-आधारित हैं, अतः प्रत्येक राज्य में 23 अनुसूचित भाषाओं में से एक ही भाषा अधिकतर लोगों द्वारा बोली जाती है। उदाहरण के लिए केरल राज्य में 96 प्रतिशत जनसंख्या मलयालम बोलती है। आंध्र प्रदेश में 85 प्रतिशत से अधिक लोग तेलुगु भाषी हैं। इस प्रकार प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट प्रदेश है और इनकी क्रोड विशिष्ट राज्य में ही स्थित होती है। लेकिन भाषाई प्रदेश की कोई सीमा रेखा नहीं, अपितु एक परिवर्ती भाषाई क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में एक भाषा का प्रभुत्व क्रमशः घटता जाता है और दूसरी का बढ़ता जाता है। विभिन्न भाषाई समूहों में भाषाओं का अंतर्मिश्रण हुआ है। अनेक क्षेत्रों में लोग दो या तीन भाषाएं बोलते हैं। यही नहीं, अनेक राज्यों में, किसी एक पड़ोसी राज्य की प्रमुख भाषा द्वितीय महत्वपूर्ण भाषा होती है। यह द्वितीय भाषा राज्य के लोगों के दूसरे बड़े समूह द्वारा बोली जाती है। उदाहरण के लिए केरल में तमिल

दूसरी सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाषा है। तमिलनाडु में दूसरी भाषा तेलुगु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में उर्दू है।

धार्मिक संघटन

लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन में धर्म का बहुत बड़ा महत्व होता है। धार्मिक दर्शन मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करता है। जैसा पहले कहा जा चुका है कि भारत चार प्रमुख धर्मों का जन्म स्थान है। ये धर्म हैं : हिंदू, बौद्ध, जैन और सिक्ख। हिंदू धर्म संसार का प्राचीनतम धर्म है। इसका विकास मनुष्य की प्रकृति के साथ निरंतर अंतर्क्रिया और उसकी जीवन के अर्थ की व्यक्तिगत खोज का परिणाम है। हिंदुओं की भूमि हिंदुस्तान, भारत का एक नाम है, जिसके द्वारा यह देश मध्यकाल में जाना जाता था। भारत में जन्मे अन्य धर्म, दर्शन और जीवन के प्रति दृष्टिकोण के कारण हिंदू धर्म के बहुत निकट हैं।

अन्य धार्मिक विश्वासों वाले लोग भारत में निरंतर आते रहे हैं। उनमें से अनेक ने अपनी पहचान खो दी है। लेकिन उन्होंने अपने मूल आधार को अक्षुण्ण रखा है । सीरियाई ईसाई प्रथम शताब्दी में भारत के पश्चिमी तट पर आए थे। उनके वंशज आज भी केरल में रह रहे हैं। मध्य काल में भारत के पश्चिमी तट पर अरब व्यापारी इस्लाम धर्म को लेकर आए। इस्लाम के बड़े पैमाने पर प्रसार में मुस्लिम आक्रमणकारियों का भारी योगदान है। अनुयायियों की संख्या की दृष्टि से भारत के चार प्रमुख धर्म हैं–हिंदू, इस्लाम, ईसाई और बौद्ध धर्म। संख्या की दृष्टि से जैन, सिक्ख और पारसी धर्मावलंबी कम हैं। लेकिन ये सभी महान धर्म हैं। इनके विषय में हमें यथासंभव अधिक से अधिक जानना चाहिए। धर्म के अनुसार 1961 तथा 1991 में भारत की जनसंख्या सारणी 3.4 में दी गई है।

सारणी 3.4 **— भारत : 1961 और 1991 में धर्मानुसार जनसंख्या**

धार्मिक समूह	*1961*		*1991*	
	करोड़ व्यक्ति	*प्रतिशत*	*करोड़ व्यक्ति*	*प्रतिशत*
हिंदू	36.65	83.5	68.76	82.00
मुस्लिम	4.69	10.7	10.16	12.12
ईसाई	1.07	2.4	1.96	2.34
सिक्ख	0.78	1.8	1.63	1.94
बौद्ध	0.32	0.7	0.64	0.76
जैन	0.20	0.5	0.34	0.40
अन्य	0.16	0.4	0.33	0.39
योग	43.92	100.0	83.86*	100*

* जम्मू और कश्मीर के अतिरिक्त

धार्मिक समूहों का वितरण

भारत में 82 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या हिंदू धर्म के अनुयाई हैं। ये पूरे देश में पाए जाते हैं, लेकिन कुछ क्षेत्रों में अन्य मतावलंबियों की संख्या इससे अधिक है और वहां हिंदू अल्पसंख्यक हैं। संख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान मुसलमानों का है। जम्मू और कश्मीर को छोड़कर कुल जनसंख्या में ये 12.12 प्रतिशत हैं। कुल जनसंख्या में ईसाई 2.34 प्रतिशत और सिक्ख 1.94 प्रतिशत हैं। कुल जनसंख्या में बौद्ध और जैन क्रमश: 0.76 प्रतिशत तथा 0.40 प्रतिशत हैं। हिंदू और मुसलमान संपूर्ण भारत में फैले हैं। लेकिन अन्य धार्मिक समूह कुछ ही क्षेत्रों में संकेंद्रित हैं।

हिंदू : देश के राज्यों में हिमाचल प्रदेश की कुल जनसंख्या में हिंदुओं का अनुपात सर्वाधिक अर्थात् 95.9 प्रतिशत और मिजोरम में न्यूनतम 5.0 प्रतिशत है। हिमाचल प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, तमिलनाडु, त्रिपुरा, कर्नाटक तथा बिहार में हिंदुओं का अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है, जबकि उत्तर-पूर्वी राज्यों, जम्मू और कश्मीर तथा पंजाब में यह राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है।

मुस्लिम : सबसे अधिक मुसलमान उत्तर प्रदेश में रहते हैं। दूसरा स्थान पश्चिम बंगाल और तीसरा बिहार का है। देश की कुल जनसंख्या में मुसलमानों की जनसंख्या का सबसे कम अनुपात (0.6 प्रतिशत) मिजोरम में तथा सबसे अधिक (68.3 प्रतिशत) जम्मू और कश्मीर (1981) में पाया जाता है। केंद्र शासित प्रदेशों में लक्षद्वीप में मुसलमानों का अनुपात सर्वाधिक (94.3 प्रतिशत) है। असम, बिहार (झारखंड सहित) जम्मू और कश्मीर, केरल, उत्तर प्रदेश (उत्तरांचल सहित) और पश्चिम बंगाल में मुसलमानों का अनुपात राष्ट्रीय औसत से अधिक है। ये राज्य उत्तरी विशाल मैदानों में विस्तृत हैं। जम्मू और कश्मीर तथा केरल इस पट्टी के बाहर हैं।

ईसाई : केरल में ईसाइयों का सबसे अधिक संकेंद्रण है। यहां इनकी कुल जनसंख्या 56 लाख है, जो राज्य की

जनसंख्या में 28.6 प्रतिशत है। दस लाख से अधिक ईसाई जनसंख्या वाले राज्य केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मेघालय और नागालैंड हैं।

सिक्ख : देश में सिक्खों की कुल जनसंख्या 1 करोड़ 63 लाख है। इनमें से 1 करोड़ (78.5 प्रतिशत) अकेले पंजाब में रहते हैं। पंजाब के अलावा, हरियाणा और राजस्थान के निकटवर्ती जिलों में सिक्खों की जनसंख्या संकेंद्रित है। उत्तरांचल के तराई प्रदेश और दिल्ली में भी ये अधिक संख्या में रहते हैं।

बौद्ध तथा जैन : देश की कुल बौद्ध जनसंख्या का 79 प्रतिशत भाग अकेले महाराष्ट्र में है। बौद्धों के पारंपरिक क्षेत्र जम्मू और कश्मीर का लद्दाख क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश और त्रिपुरा हैं।

महाराष्ट्र में जैनियों का सबसे अधिक संकेंद्रण है। यहां इनकी संख्या 9.7 लाख है, जो इनकी कुल जनसंख्या का 28.8 प्रतिशत है। जैनियों की 75 प्रतिशत जनसंख्या, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश में रहती है।

भारत की एकता में धर्मों की भूमिका

हिंदू पूजा स्थल और तीर्थस्थान, मुसलमानों की मस्जिदें और दरगाहें, जैनियों की तीर्थशालाएं, गिरजाघर अपने-अपने मतावलंबियों को भारत के अनेक भागों से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। कुछ पूजा स्थलों, जैसे–वाराणसी, रामेश्वरम्, अजमेर, गया और पुराना गोवा, राष्ट्रीय स्तर के हैं और देश के सभी भागों से भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यहां तक कि अन्य मतावलंबी भी इन स्थलों के दर्शनार्थ आते हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   - (i) देश की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कितना प्रतिशत है?
   - (ii) अनुसूचित जनजातियां अन्य समुदायों से किस प्रकार भिन्न हैं?
   - (iii) अनुसूचित जातियों के सर्वाधिक अनुपात वाले दो राज्यों के नाम बताइए।
   - (iv) अनुसूचित जातियों का संकेंद्रण उपजाऊ कृषि क्षेत्रों में ही क्यों है?
   - (v) राज्य की जनसंख्या में तीन-चौथाई जनजातीय जनसंख्या वाले तीन राज्यों के नाम बताइए।
   - (vi) जनजातियों में सहभागिता दर सबसे अधिक क्यों है?
   - (vii) भारतीय भाषाओं से संबंधित चार भाषा परिवारों के नाम बताइए।
   - (viii) चार प्रमुख द्रविड़ भाषाएं और उनके क्षेत्र कौन-से हैं?
   - (ix) उत्तर-पूर्वी राज्यों की भाषाएं किस भाषा परिवार से संबंधित हैं?
   - (x) भारत किन चार प्रमुख धर्मों का जन्म स्थान है?
2. भारत में अनुसूचित जातियों के वितरण की विवेचना कीजिए ।
3. अनुसूचित जातियों की जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना की तुलना अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या से कीजिए।
4. जनजातीय साक्षरता में पुरुष-स्त्री अंतर तथा प्रादेशिक भिन्नताओं की विवेचना कीजिए।
5. भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों के वितरण प्रतिरूप का वर्णन कीजिए।

परियोजना कार्य

6. (i) भारत के राजनैतिक मानचित्र में 20 प्रतिशत से अधिक की अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 50 प्रतिशत से अधिक की अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या वाले राज्यों को छायांकित
   (ii) उनके वितरण पर संक्षिप्त टिप्पणी तैयार कीजिए।

4 अध्याय

मानव विकास

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि विकास का लक्ष्य लोगों का कल्याण होना चाहिए। लेकिन यदि समग्र दृष्टि से विचार करें तो केवल धन के द्वारा जन कल्याण संभव नहीं है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास जन कल्याण के प्रमुख पक्ष हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर ही संयुक्त राष्ट्र ने सभी सदस्य देशों के सामने मानव विकास की संकल्पना का लक्ष्य प्रस्तुत किया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने 1990 में प्रकाशित अपने पहले मानव विकास प्रतिवेदन में, लोगों के विकल्पों को परिवर्द्धित करने की प्रक्रिया को मानव विकास के रूप में पारिभाषित किया है। दीर्घ और स्वस्थ जीवन, शिक्षा और उच्च जीवन स्तर मानव विकास के प्रमुख तत्व हैं। मानव विकास के अन्य विकल्प हैं : राजनीतिक स्वतंत्रता, मानव अधिकारों की गारंटी, आत्मनिर्भरता तथा स्वाभिमान के विविध घटक। ये सभी अनिवार्य विकल्प हैं। इनकी कमी विकास के अन्य अवसरों में बाधक बन सकती है। इस प्रकार *लोगों के विकल्पों के परिवर्द्धन की प्रक्रिया और जनकल्याण के स्तर को ऊंचा उठाना ही मानव विकास है।* इस प्रकार स्त्री, पुरुष और बच्चे, विकास की प्रक्रिया के केंद्र बिंदु होने चाहिए। विकास लोगों के लिए हो, न कि लोग विकास के लिए हों। यही नहीं, विकास सहभागीय होना चाहिए तथा लोगों को स्वास्थ्य, शिक्षा और प्रशिक्षण की क्षमताओं को सुधारने के लिए विनिवेश के अवसर मिलने चाहिए। लोगों को अपनी क्षमताओं का पूरा-पूरा उपयोग करने के अवसर उपलब्ध होने चाहिए। इसे लोगों को सामुदायिक निर्णयों में शामिल करके तथा मानवीय, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान करके पूरा किया जा सकता है।

आर्थिक विकास और मानव विकास की संकल्पनाओं में आधारभूत अंतर है। पहले में मानव की आय बढ़ाने पर ही मुख्य रूप से बल दिया जाता है, जबकि दूसरे में मानवीय विकल्पों के परिवर्द्धन पर बल दिया जाता है। मानवीय विकल्प हैं : आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास। ऐसे विकास के लिए आर्थिक विकास अनिवार्य हैं, लेकिन इसका परिप्रेक्ष्य भिन्न होता है। इसमें निहित मूल सिद्धांत आय का उपयोग है न कि स्वयं आय। इसी से मानवीय विकल्पों में वृद्धि होती है। इस प्रकार राष्ट्रों की वास्तविक संपदा उनके लोग हैं। अत: विकास का मुख्य लक्ष्य मानव जीवन की समृद्धि ही होना चाहिए।

विगत कुछ वर्षों में जन कल्याण और वंचन की धारणाओं में वैचारिक विस्तार हुआ है। जन कल्याण की धारणा भौतिक उपलब्धियों या विकास के साधनों से थोड़ा-सा हट गई है। यह अब उन परिणामों पर केंद्रित हो गई है, जो या तो स्वयं में वांछनीय है या इसलिए वांछनीय है कि वे लोगों को बेहतर अवसर प्रदान करते हैं। गरीबी केवल पर्याप्त आमदनी की कमी ही नहीं अपितु यह लोगों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सुविधाओं का न मिलना भी है, जिनके अभाव में लोग विकास की प्रक्रिया में समानता के आधार पर प्रभावशाली भागीदार नहीं हो सकते।

मानव विकास क्यों ?

पाल स्ट्रीटन के अनुसार निम्नलिखित कारणों से मानव विकास आवश्यक है :

1. विकास की सभी क्रियाओं का अंतिम उद्देश्य मानवीय दशाओं को सुधारना तथा लोगों के लिए विकल्पों का बढ़ाना है।
2. मानव विकास उच्चतर उत्पादकता का साधन है। सुपुष्ट, स्वस्थ, शिक्षित, कुशल और सतर्क श्रमिक, अधिक उत्पादन करने में समर्थ होते हैं। अत: उत्पादकता के आधार पर भी मानव विकास में विनिवेश न्यायसंगत माना जाता है।
3. मानवीय प्रजनन की गति धीमी करके यह परिवार के आकार को छोटा करने में मदद करता है।
4. मानव विकास भौतिक पर्यावरण हितैषी भी है। गरीबी के घटने से निर्वनीकरण, मरुस्थलीकरण और मृदा अपरदन भी कम हो जाता है।

5. सुधरी मानवीय दशाएं और घटी गरीबी स्वस्थ और सभ्य समाज के निर्माण में योगदान देती हैं तथा लोकतंत्र तथा सामाजिक स्थिरता को बढ़ाती हैं।
6. मानव विकास सामाजिक अशांति को कम करने तथा राजनीतिक स्थिरता को बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

अत: मानव विकास की संकल्पना केवल अर्थव्यवस्था के विकास से संबंधित न होकर, मानव के संपूर्ण विकास से संबंधित है। आर्थिक कारकों के समान, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक कारकों को भी उतना ही महत्त्व दिया जाता है। इसके अलावा विकास के लक्ष्य और साधनों, दोनों पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। मानव विकल्पों के विस्तार को तो विकास का लक्ष्य माना जाता है। लेकिन आय के विस्तार को इसका आवश्यक साधन माना जाता है। इस प्रकार संपूर्ण प्रक्रिया को मानव केंद्रित बना दिया गया है।

मानव विकास के संकेतक

जीवन की गुणवत्ता और जनकल्याण के स्तर का मात्रात्मक मापन कठिन है। फिर भी मानव विकास के विविध आयामों के मापन के लिए एक व्यापक मापक की खोज करते-करते संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने एक मिश्र संकेतक का निर्माण किया है, जिसे अब मानव विकास सूचकांक के रूप में जाना जाता है। इसमें (i) दीर्घजीविता (ii) ज्ञान आधार, और (iii) उच्च जीवन स्तर शामिल हैं। संकेतक को सरल बनाए रखने के लिए केवल सीमित चरों को ही शामिल किया गया है। प्रारंभ में जीवन प्रत्याशा को दीर्घजीविता के संकेतक के रूप में, प्रौढ़ साक्षरता को ज्ञान के संकेतक के रूप में, क्रय शक्ति समता के लिए, समायोजित प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अच्छे जीवन के संकेतक के रूप में चुना गया था। इन चरों को विभिन्न इकाइयों में अभिव्यक्त किया जाता है। इसीलिए अनेक संकेतकों के स्थान पर एक मिश्र संकेतक के निर्माण के लिए एक विधितंत्र का विकास किया गया था।

भारत में सन् 2001 का मानव विकास प्रतिवेदन तैयार करने के लिए संकेतकों के तीन समूहों का चयन किया गया। इनमें से मानव विकास सूचकांक मिश्र सूचकांकों का केंद्रीय समूह है। यह संपूर्ण समाज के मानव विकास की दशा को प्रदर्शित करता है। इसके अलावा स्त्रियों की तुलनात्मक उपलब्धियों को प्रदर्शित करने के लिए लिंग समानता सूचकांक का अनुमान लगाया गया है। यही नहीं समाज के सुविधा वंचित वर्ग की दशा के मूल्यांकन के लिए मानव निर्धनता सूचकांक बनाया गया है।

अनेक अन्य चरों को भी क्रमश: उपर्युक्त मानव विकास के संकेतकों के समूह में जोड़ दिया गया है। इनमें दीर्घजीविता से संबंधित जन्म दर, शिशु मृत्यु दर के विशेष संदर्भ में मृत्यु दर, पोषण तथा जन्म के समय जीवन प्रत्याशा से जुड़े *स्वास्थ्य संकेतक* शामिल हैं। *सामाजिक संकेतकों* में साक्षरता, विशेष रूप से स्त्री साक्षरता, स्कूल जाने वाले बच्चों का नामांकन, विरत छात्र अनुपात तथा छात्र-अध्यापक अनुपात, शामिल हैं। *आर्थिक संकेतक* वेतन, आय और रोजगार से संबंधित है। प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद, गरीबी का विस्तार, तथा रोजगार के अवसर इस समूह के वांछित संकेतक हैं। मानव विकास का समग्र चित्र प्रस्तुत करने के लिए इन्हें मिश्र सूचकांक में परिवर्तित कर लिया गया है।

भारत का मानव विकास सूचकांक

स्वतंत्रता के बाद भारत ने बहुत विकास किया है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 162 देशों के लिए विकसित मानव विकास सूचकांक में भारत का 115वां स्थान है और उसे भारत को मध्यम मानव विकास के देशों में स्थान मिला है। सन् 2001 में भारत मानव विकास सूचकांक 0.571 था। भारत की मानव और लिंग विकास से संबंधित तुलनात्मक स्थिति सारणी 4.1 में दर्शाई गई है।

मानव विकास की दृष्टि से न केवल विकसित देश भारत से आगे हैं, अपितु श्रीलंका और इंडोनेशिया जैसे विकासशील देश भी भारत से बहुत आगे हैं। इसी प्रकार लिंग विकास में भी यद्यपि 1992 की तुलना में सन 2001 में सुधार हुआ है, लेकिन यह अभी काफी नाचे है:

मानव विकास का निम्न स्तर उन प्रमुख संकेतकों के मानों से स्पष्ट है जो मानव विकास सूचकांक का गणना करने के लिए उपयोग किए जाते हैं। इनमें स कुछ का विवरण नीचे दिया गया है।

स्वास्थ्य संकेतक

स्वास्थ्य, मानव विकास का प्रमुख अंग है। इसका मापन, जन्म दर, मृत्यु दर, (विशेष रूप से शिशु मृत्यु दर के संदर्भ में) पोषण और जन्म के समय जीवन प्रत्याशा के रूप में किया जाता है :

सारणी 4.1 — **भारत : मानव और लिंग विकास में वैश्विक स्थिति**

देश	मानव विकास सूचकांक		लिंग विकास सूचकांक	
	1992	2001	1992	2001
नार्वे	0.933	0.939	0.911	0.937
आस्ट्रेलिया	0.927	0.936	0.901	0.935
चीन	0.594	0.718	0.578	0.715
भारत	**0.439**	**0.571**	**0.401**	**0.533**
पाकिस्तान	0.483	0.498	0.360	0.466
बांग्लादेश	0.364	0.470	0.334	0.459
नाइजर	0.207	0.274	0.196	0.260

मृत्यु दर (किसी विशेष वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या पर मरने वालों की संख्या) भारत में तेजी से घटी है। 1951 में मृत्युदर 25.1 थी लेकिन वह घटकर 1999 में 8.7 रह गई है। लेकिन जन्म दर में कोई विशेष कमी नहीं आई है। 1999 में शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार जीवित जन्मे बच्चों में से वर्ष में एक वर्ष से कम उम्र वाले मृत बच्चों की संख्या) सन् 1951 की तुलना में आधी रह गई है। चार वर्ष तक के बच्चों की मृत्यु दर भी काफी घट गई है। 1971 में यह 51.9 प्रति हजार थी जो 1999 में 22.5 रह गई है। इसका अर्थ यह है कि मृत्यु का खतरा जीवन की प्रत्येक अवस्था में घट गया है। इससे स्पष्ट है कि स्वास्थ्य में पर्याप्त सुधार हुआ है। 1951 से लेकर 1999 तक जनांकिकीय संकेतकों को प्रदर्शित करने वाला तुलनात्मक विवरण सारणी 4.2 में दिया गया है।

प्रजनन दर भी घटी है, लेकिन धीमी गति से। 1951 में यह 40.8 प्रति हजार थी जो 1999 में घटकर 26.1 रह गई (14.7 अंकों की कमी)। मृत्युदर में 16.4 अंकों की कमी आई है। इसी अवधि में कुल प्रजनन दर भी घटी है। यह 1951 में छः बच्चे प्रति स्त्री (बच्चा पैदा करने की उम्र) थी, जो घटकर 1999 मे 2.9 रह गई है।

जीवन प्रत्याशा : स्वास्थ्य संबंधी अन्य महत्वपूर्ण दरों (जन्म दर, प्रजनन दर व मृत्यु दर) में तो कमी आई है, लेकिन जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई है। 1951 में पुरुष जीवन प्रत्याशा केवल 37.1 वर्ष तथा स्त्रियों की 36.2 वर्ष थी, जो 1996-2000 की अवधि में बढ़कर पुरुषों के लिए 62.30 वर्ष तथा स्त्रियों के लिए 65.27 वर्ष हो गई है। स्त्रियों की जीवन प्रत्याशा में वृद्धि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1951

सारणी 4.2 — **भारत : मानव विकास के चुने हुए स्वास्थ्य संकेतक**

संकेतक	1951	1971	1981	1991	1999
जन्म दर (प्रति हजार)	40.8	36.9	33.9	29.5	26.1
मृत्यु दर (प्रति हजार)	25.1	14.9	12.5	9.8	8.7
शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार जन्मे बच्चे)	148	129	110	80	70
बाल (0-4) मृत्यु दर	अप्राप्य	51.9	41.2	26.5	22.5[1]
कुल प्रजनन दर	6.0	5.2	4.5	3.6	2.9
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा					
पुरुष	37.1	46.4	54.1	60.6	62.30
स्त्री	36.2[2]	44.72	54.7	61.7[3]	65.27

[1] 1998 वर्ष के आंकड़े

[2] 1961-71 के वर्षों के आंकड़े

[3] 1991-96 के वर्षों के आंकड़े

में यह पुरुषों से कम थी, लेकिन अब यह अधिक हो गई है। इस प्रगति का कारण एक ओर तो निरंतर बढ़ती खाद्य सुरक्षा तथा दूसरी ओर चिकित्सा और स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार है। उदाहरण के लिए 1951 में अनाज और दालों की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धि 394.9 ग्राम थी, जो 2001 में बढ़कर 417 ग्राम हो गई। इसके साथ-साथ एलोपैथिक अस्पतालों और डिस्पेन्सरियों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। 1999 में प्रति एक लाख जनसंख्या पर चार अस्पताल और औषधालय तथा प्रत्येक अस्पताल में औसतन 94 बिस्तर थे। स्वास्थ्य संस्थाओं में हुई वृद्धि को सारणी 4.3 मे प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 4.3 — भारत : स्वास्थ्य संस्थाओं में वृद्धि 1961-1992
(संख्या हजारों में)

संस्था का प्रकार	1961	1971	1981	1991	1992
प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र	2.6	5.1	5.7	20.4	20.7
सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र	—	—	0.2	2.1	2.2
अस्पताल	3.1	3.9	6.8	11.2	13.7
औषधालय	9.4	12.2	16.8	27.4	27.4
अस्पताल के बिस्तर	230	349	569	810	835
डॉक्टर	84	151	269	394	411
दंत चिकित्सक	3.6	5.5	8.6	10.8	11.3
नर्सें	36	81	154	340	385

सामाजिक संकेतक

शिक्षा को सर्वत्र मानव संसाधन का प्रमुख घटक माना गया है। लोगों के लिए साक्षरता का न्यूनतम निश्चित स्तर अनिवार्य है। यह लोगों को गरीबी के दुश्चक्र के बाहर निकाल सकता है। इसीलिए मानव विकास का मूल्यांकन साक्षरता और संबंधित संकेतकों के संदर्भ में किया जाता है।

साक्षरता

भारत में साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। यह 1951 में 18.53 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 2001 में 63.38 प्रतिशत हो गई है। सन् 2001 की राज्यानुसार साक्षरता का वितरण चित्र 4.1 में दिखाया गया है, केवल 59.4 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या साक्षर है, जबकि 80.30 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या साक्षर है। स्त्रियों और पुरुषों की साक्षरता दर में भी काफी अंतर है। कुल स्त्री जनसंख्या में से केवल 54.16 प्रतिशत स्त्रियां साक्षर हैं। इसके विपरीत 75.85 प्रतिशत पुरुष साक्षर हैं। स्त्री साक्षरता का राज्यानुसार वितरण चित्र 4.2 में दिया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री साक्षरता दर केवल 46.70 प्रतिशत है, जबकि नगरीय क्षेत्रों में यह 73.20 प्रतिशत है। 1951 के बाद साक्षरता दर की प्रगति को सारणी 4.4 मे प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 4.4 — भारत : 1951 तथा 2001 की अवधि में साक्षरता दरों में प्रगति

जनगणना वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
1951	18.33	27.17	8.86
1961	28.30	40.40	15.35
1971	34.45	45.96	21.97
1981	43.57	56.38	29.76
1991	52.21	64.13	39.29
2001	65.38	75.85	54.16

स्रोत : *अंतरिम जनसंख्या योग, पेपर 1- 2001, भारत की जनगणना, 2001*

साक्षरता में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। स्वतंत्रता के बाद पहली बार पिछले दशक में 3.19 करोड़ निरक्षरों की संख्या कम हुई है। 1991-2001 की अवधि में सात वर्ष से अधिक की आयु की जनसंख्या में 17.16 करोड़ की वृद्धि हुई है। लेकिन इसी दशक में 20.36 करोड़ अतिरिक्त व्यक्ति साक्षर हो गए हैं। इस समय 56.201 करोड़ लोग साक्षर हैं। 1951-2001 की अवधि में कुल जनसंख्या की साक्षरता दर में तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई है। लेकिन स्त्री साक्षरता दर छः गुनी से अधिक बढ़ी है। स्त्री साक्षरता दर 1951 में केवल 8.86 प्रतिशत थी, जो बढ़कर 2001 में 54.16 प्रतिशत हो गई है। यह उपलब्धि सरकार द्वारा किए गए प्रयत्नों के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई। सरकार का उद्देश्य स्त्रियों सहित सभी को शिक्षित करना है।

साक्षरता दर में प्रादेशिक विभिन्नताएं

साक्षरता दर में अत्यधिक प्रादेशिक विभिन्नताएं पाई जाती हैं। बिहार में साक्षरता दर 47.53 प्रतिशत है, जबकि केरल में यह 90.92 प्रतिशत (2001) है। साक्षरता दर में केरल
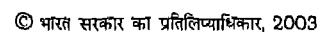
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.1 भारत ; राज्यानुसार साक्षरता का वितरण, 2001

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.2 भारत : राज्यानुसार स्त्री साक्षरता का वितरण, 2001

का पहला स्थान है। लक्षद्वीप (87.52 प्रतिशत) और मिजोरम (85.99) का साक्षरता दर में क्रमशः दूसरा और तीसरा स्थान है। बिहार में साक्षरता दर भारत के सभी राज्यों और केंद्रीय प्रशासित प्रदेशों की तुलना में सबसे कम है। कुल 22 राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से अधिक है, जबकि 13 राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में कम है। 9 राज्यों और केंद्रीय शासित प्रदेशों में जैसे--केरल, मिजोरम, लक्षद्वीप, गोवा, दिल्ली, चंडीगढ़, पांडिचेरी, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, तथा दमण व दीव में साक्षरता दर बहुत ऊंची (72 प्रतिशत से अधिक) है। इन राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में नगरीकरण सबसे अधिक हुआ है। इनमें कुछ ईसाई मिशनरियों द्वारा बहुत प्रभावित हैं। अनेक सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं ने शिक्षा के प्रसार में बहुत योगदान दिया है। केरल में साक्षरता दर सबसे ऊंची है। इसका प्रमुख कारण सजग प्रशासन, गैर कृषि कामगारों का ऊंचा अनुपात तथा पारंपरिक रूप से शिक्षा पर अधिक बल देना रहा है।

प्रारंभिक शिक्षा

प्रारंभिक शिक्षा को मौलिक मानव अधिकार की मान्यता प्रदान की गई है। प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया है। केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा किए गए प्रयत्नों के परिणामस्वरूप, देश की 94 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को एक कि.मी. की दूरी पर प्राथमिक विद्यालय (1-V श्रेणी) उपलब्ध कराये गये हैं। यही नहीं 85 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को तीन कि.मी. की दूरी पर उच्च प्राथमिक विद्यालय (VI-VIII श्रेणी) की सुविधा प्रदान की गई है। 1950-51 और 1999-2000 की अवधि में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में तीन गुनी वृद्धि हुई है। ये 2.1 लाख से बढ़कर 6.42 लाख हो गए हैं। इसी अवधि में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 15 गुनी बढ़ गई है। ये 13596 से बढ़कर 1.98 लाख हो गए हैं। इन विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या भी बढ़ी है। 1950-51 में इनकी संख्या 6.24 लाख थी जो बढ़कर 1999-2000 में 32.17 लाख हो गई है। कुल मिलाकर शिक्षा पर होने वाले व्यय में भी वृद्धि हुई है। 1951-52 में यह सकल घरेलू उत्पाद का 0.7 प्रतिशत था, जो बढ़कर 1999-2000 में 3.94 प्रतिशत हो गया था।

प्राथमिक स्तर (1-V) पर कुल नामांकन में भी 5.91 गुनी वृद्धि हुई है। 1950-51 में नामांकन 1.92 करोड़ था, जो बढ़कर 1999-2000 में 11.361 करोड़ हो गया है। इसमें बालिकाओं के नामांकन के सापेक्षिक भाग में वृद्धि हुई है। 1950-51 में यह 28.1 प्रतिशत था जो बढ़कर 1999-2000 में 43.6 प्रतिशत हो गया है। उच्च प्राथमिक स्तरों (VI-VIII) पर कुल नामांकन बढ़ा है, जो इसी अवधि में 31 लाख से बढ़कर 4.206 करोड़ हो गया है।

नामांकन के संदर्भ में राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में बहुत असमानता है। प्राथमिक स्तर पर दादरा नगर हवेली में लड़कों का नामांकन प्रतिशत (153.43) तथा सिक्किम में लड़कियों का नामांकन प्रतिशत (138.48) 1999 में सबसे ऊंचा रहा है। कुल नामांकन 100 प्रतिशत से अधिक इसलिए है कि प्राथमिक विद्यालय स्तर की आयु सीमा (6 से 11 वर्ष) से कुछ छात्र कम या अधिक आयु के हैं। चण्डीगढ़ में लड़कों का नामांकन अनुपात (50.18 प्रतिशत) सबसे नीचा रहा है। कुल मिलाकर उत्तर प्रदेश में प्राथमिक विद्यालयों में वांछनीय उम्र के नामांकित बच्चों का अनुपात (64.97 प्रतिशत) सबसे कम है तथा सिक्किम में (138.91 प्रतिशत) सबसे अधिक है। इसका राष्ट्रीय औसत 94.9 प्रतिशत है।

सारणी 4.5 — भारत : साक्षरता तथा प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन अनुपात

साक्षरता अनुपात				नामांकन अनुपात प्राथमिक			नामांकन अनुपात उच्च प्राथमिक			विरत छात्र अनुपात		छात्र-शिक्षक अनुपात	
वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	महिला	बालक	बालिका	कुल	बालक	बालिका	कुल	प्राथमिक	उ. प्रा.	प्राथमिक	उ. प्रा.
1950-51	18.3	27.2	8.86	60.6	24.8	42.6	20.6	4.6	12.7	64.9*	78.3*	1:24	1:20
1999-2000	65.4	75.9	54.2	104.1	85.2	94.9	67.2	49.7	58.8	40.2	54.2	1:43	1:38

स्रोत : भारत सरकार : आर्थिक सर्वेक्षण - 2001-2002

उच्च प्राथमिक विद्यालयों में 1999-2000 में नामांकन का अनुपात बिहार में 32.36 प्रतिशत तथा केरल में 95.61 प्रतिशत है, जबकि राष्ट्रीय औसत 58.79 प्रतिशत है। राजस्थान में लड़कों का नामांकन अनुपात सबसे अधिक (105.89 प्रतिशत) तथा बिहार में सबसे कम (41.38 प्रतिशत) है। लड़कियों के संदर्भ में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में यह अनुपात सबसे अधिक (95.69 प्रतिशत) तथा बिहार में सबसे कम (22.04 प्रतिशत) है। जबकि लड़कों के नामांकन औसत 67.15 प्रतिशत तथा लड़कियों का राष्ट्रीय औसत 49.66 प्रतिशत है। कुल मिलाकर 6 से 14 वर्ष की उम्र के लगभग 79 प्रतिशत बच्चे स्कूल जा रहे हैं।

आर्थिक संकेतक

आर्थिक उत्पादकता मानव विकास का अनिवार्य अंग है। विकास का अंतिम लक्ष्य मानव प्रगति है। आर्थिक विकास इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है। अर्थव्यवस्था और उत्पादकता में विकास का मूल्यांकन सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति आय के द्वारा किया जा सकता है। 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद स्थिर कीमत (1993-94) पर 1404.66 अरब रुपए था जो बढ़कर 1999-2000 में 11485.0 अरब रुपए हो गया था। इसी के अनुसार प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (प्रति व्यक्ति आय) स्थिर कीमत पर 1950-51 में 3687 रुपए था, जो बढ़कर 1999-2000 में 10,067 रुपए हो गया था। यह लगभग 3.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि थी (सारणी 4.6)। यह वृद्धि निर्धारित दरों से बहुत कम है।

गरीबी का स्तर, जीवन की निम्नगुणवत्ता, (सुविधा) वंचन, कुपोषण, निरक्षरता का पयार्यवाची है तथा यह निम्न मानव विकास का प्रतीक है। गरीबी उन्मूलन भारत के आर्थिक विकास की कार्यनीति का अनिवार्य अंग रहा है। नवीनतम (1999-2000) के अनुमानों के अनुसार निर्धनता का अनुपात गांवों में 27.09 प्रतिशत, नगरों में 23.62 प्रतिशत तथा संपूर्ण भारत में 26.10 प्रतिशत है। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के प्रतिशत में निरंतर कमी आ रही है। 1973-74 में 55 प्रतिशत, 1993-94 में 36 प्रतिशत और 1999-2000 में 26 प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे थे। आज भी 26 करोड़ लोग गरीब हैं। यही नहीं, इसमें ग्रामीण–नगरीय तथा अतंर्राज्यीय व्यापक असमानताएं हैं।

मानव विकास के आयामों में से एक आयाम कार्य के अवसर का विकल्प है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा प्रदत्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि कुल रोजगार (संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों में) की औसत वार्षिक वृद्धि दर, 1972-73 व 1977-78 की अवधि में 2.73 प्रतिशत थी, जो 1983-84 व 1987-88 की अवधि में घटकर 1.54 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई 1993-94 व 1999-2000 की अवधि में यह घटकर केवल एक प्रतिशत रह गई 1999-2000 में कुल 39.7 करोड़ लोगों को रोजगार मिला हुआ था। इसमें से लगभग 5 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत में थे। इस क्षेत्र में रोजगार के अवसर घट रहे हैं। लगभग 93 प्रतिशत रोजगार के अवसर असंगठित क्षेत्र में थे। इसमें आर्थिक स्थिति के अनुसार घट बढ़ होती रहती हैं।

***सारणी 4.6* — भारत : सकल घरेलू उत्पाद और शुद्ध प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद 1950-51 से 1999-2000 तक**

आर्थिक संकेतक	*1950-51*	*1970-71*	*1990-91*	*1999-2000*
चालू कीमतों पर स.घ.उ. (अरब रुपयों में)	95.47	422.22	5109.54	17556.38
1993-94 की कीमतों पर स.घ.उ. (अरब रुपयों में)	1404.66	2962.78	6828.71	11485.00
1993-94 की कीमतों पर प्रति व्यक्ति शु.रा.उ. (रुपयों में)	3687	5002	7321	10067

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण - 2001-2002

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय मे दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 4.3 भारत : गरीबी का वितरण 1999 - 2000

मानव विकास में अंतर्राज्यीय भिन्नता सारणी 4.7 से स्पष्ट है। केरल में मानव विकास सूचकांक (मा. वि. सू.) का उच्चतम स्तर है। केरल के अलावा, पंजाब, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और हरियाणा की स्थिति भी अच्छी है और इन राज्यों में मानव विकास सूचकांक 0.509 से अधिक है। सामान्यत: छोटे राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में मानव विकास सूचकांक बेहतर है। इसके विपरीत बिहार (झारखंड सहित) उड़ीसा, उत्तर प्रदेश (उत्तरांचल सहित) और मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ सहित) में मानव विकास सूचकांक 0.509 से कम है। यह देखा गया है कि आर्थिक दृष्टि से कम विकसित राज्यों में मानव विकास सूचकांक निम्न पाया जाता है। इसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से संपन्न राज्यों में अपेक्षाकृत बेहतर मानव विकास सूचकांक पाया जाता है। लेकिन मध्यम आय वाले राज्यों में, मा. वि. सू. और विकास के स्तर में कोई सहसंबंध नहीं दिखाई पड़ता है। मा. वि. सू. की उपलब्धियां केरल और हिमाचल प्रदेश में ऊंची हैं, लेकिन कर्नाटक और पश्चिम बंगाल में मा. वि. सू. मान ऊंचे नहीं हैं।

***सारणी 4.7* — भारत : 2001 के अंतर्राज्यीय मानव विकास सूचकांक में अंतर**

राज्य	*मा.वि.सू.*	*राज्य*	*मा.वि.सू.*
भारत	0.472	मध्य प्रदेश	0.394
आंध्र प्रदेश	0.54	महाराष्ट्र	0.523
असम	0.386	उड़ीसा	0.404
बिहार	0.367	पंजाब	0.537
गुजरात	0.479	राजस्थान	0.424
हरियाणा	0.509	तमिलनाडु	0.531
हिमाचल प्रदेश	0.63	उत्तर प्रदेश	0.388
कर्नाटक	0.478	पश्चिम बंगाल	0.472
केरल	0.638		

***स्रोत** : मानव विकास रिपोर्ट — 2001*

जनसंख्या पर्यावरण विकास संबंध

जनसंख्या, पर्यावरण और विकास में संबंध गत्यात्मक हैं। विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में मानव प्रकृति के निकट थे। इनकी आवश्यकताएं कम थीं तथा सीधे तौर पर प्रकृति से पूरी की जाती थीं। धीरे-धीरे उन्होंने प्राकृतिक बाधाओं को दूर करने की विधियां और तकनीक खोज लीं। मानव ने जलवायु की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए कपड़ों और आवास का उपयोग प्रारंभ कर दिया तथा जीव जंतुओं का पालन तथा पेड़-पौधों को उगाना शुरू कर दिया। यही नहीं उन्होंने साधारण औजारों और कलाकृतियों को बनाना प्रारंभ किया। सामाजिक और आर्थिक संगठनों की प्रगति और प्रौद्योगिकी के विकास से प्राकृतिक संसाधनों के दोहन द्वारा वस्तुओं के उत्पादन तथा सेवाओं के विकास की क्षमता में बहुत उन्नति हुई परिवहन के साधनों के विकास ने संसाधनों के दोहन की प्रक्रिया को तेज कर दिया। इससे लोगों में वस्तुओं और विचारों की विश्वव्यापी गतिशीलता बढ़ी। औद्योगिक क्रांति के साथ मानव ने अत्यधिक ज्ञान, कार्य-कुशलता, शक्ति और प्रौद्योगिकी विकसित कर ली। इनके द्वारा अब उसने प्रकृति पर नियंत्रण शुरू कर दिया तथा पदार्थों और ऊर्जा के साधनों का बड़े पैमाने पर दोहन प्रारंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरुप प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति, अभाव, अधिक शोषण और पर्यावरण ह्रास होने लगा। इस प्रकार मानव प्रकृति का विनाशक बन गया।

पर्यावरण ह्रास के कारकों का साधारणीकरण करना कठिन है। पर्यावरण पर मानव का प्रभाव, प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के द्वारा पड़ता है। यही नहीं, वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और उपभोग की प्रक्रिया से उत्पन्न प्रदूषकों के पर्यावरण में उत्सर्जन से भी वह प्रदूषित होता है। साथ ही साथ जनसंख्या का आकार और उसमें निरंतर वृद्धि का भी पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार पर्यावरण की गुणवत्ता निम्नलिखित तीन कारकों का परिणाम है :

1. उपभोग किए गए संसाधनों की मात्रा तथा उत्पादन की प्रति इकाई के अनुसार प्रदूषण की उत्पत्ति।
2. प्रति व्यक्ति उत्पादन और उपभोग।
3. जनसंख्या का आकार।

इस साधारणीकरण के प्रथम कारक में प्रौद्योगिकीय प्रभाव, द्वितीय में प्रचुरता का प्रभाव तथा तृतीय में जनांकिकीय प्रभाव शामिल हैं। इन तत्त्वों के पर्यावरण पर प्रभाव के विश्लेषण के लिए निम्नलिखित सूत्र बनाया है :

$$I = PAT$$

इसमें I = पर्यावरणीय प्रभाव

P = जनसंख्या (घनत्व और वृद्धि)

A = प्रचुरता (प्रतिव्यक्ति आय और जीवन शैली पर आश्रित प्रतिव्यक्ति उपभोग)

T = उत्पादन में प्रयुक्त हानिकारक प्रौद्योगिकी।

इसमें से जनसंख्या के घनत्व और वृद्धि पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारक माना जाता है। इससे संसाधनों पर

दबाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप वे समाप्त हो जाते हैं या उनका अभाव या अतिशोषण होता है तथा पर्यावरण का ह्रास होता है। प्रौद्योगिकी अन्य तीसरा प्रमुख कारक है, जो पर्यावरण को अत्यधिक प्रभावित करती है। जीवाश्म ईंधन आधारित आधुनिक प्रौद्योगिकी ने कृत्रिम वस्तु निर्माण को बड़े पैमाने पर संभव बनाया है। इसका प्राकृतिक पर्यावरण पर अत्यधिक दुष्प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति उत्पादन और कच्चे माल का बड़े पैमाने पर उपयोग तथा इसी अनुपात में ईंधन और ऊर्जा के उपभोग से संबंधित है। इसी से भारी मात्रा में अपशिष्ट और कूड़ा-कचरा पैदा होता है। इन दो कारकों प्रचुरता और प्रौद्योगिकी का सबसे अधिक प्रभाव विकसित देशों में है। इस प्रकार विकासशील देशों की गरीबी और औद्योगिक देशों के अत्यधिक उपभोग में पर्यावरणीय समस्याओं के बीज छिपे हुए हैं। इस प्रकार पर्यावरण ह्रास का दुश्चक्र तथा विकास के लड़खड़ाते कदम आगे बढ़ते रहते हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   (i) विकास की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।
   (ii) मानव विकास को ध्यान में रखकर संसार में भारत की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।
   (iii) मानव विकास के स्तर के मापन के लिए कौन-कौन से संकेतकों का उपयोग किया जाता है?
   (iv) 1951 के बाद भारत में प्रजनन और मृत्युदर की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।
   (v) देश में अपेक्षाकृत निम्न साक्षरता दर के कारणों की विवेचना कीजिए।
   (vi) स्वतंत्रता के बाद साक्षरता की प्रगति की समीक्षा कीजिए।
   (vii) देश में उच्च और निम्न साक्षरता वाले क्षेत्रों का पता लगाइए।
   (viii) 'जनसंख्या' कारक का पर्यावरण पर प्रभाव स्पष्ट कीजिए।
2. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) मानव संसाधन विकास और मानव विकास।
   (ii) मानव विकास और आर्थिक विकास।
3. मानव विकास की संकल्पना की विवेचना कीजिए।
4. मानव विकास क्यों आवश्यक है? व्याख्या कीजिए।
5. भारत में संपूर्ण साक्षरता में प्रादेशिक परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
6. भारत में स्त्री साक्षरता के स्थानिक प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।
7. देश में मानव विकास के आर्थिक संकेतकों की प्रगति की विवेचना कीजिए।
8. पर्यावरण पर मानव के प्रभाव को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।
9. "विकास और पर्यावरण ह्रास, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।" यह उक्ति कहां तक सही है।

परियोजना कार्य

10. (i) सारणी 4.7 में दिए गए मानव विकास सूचकांक के आधार पर भारत के प्रमुख राज्यों को तीन वर्गों में विभाजित कीजिए।
    (ii) इस पर एक संक्षिप्त टिप्पणी तैयार कीजिए।
11. (i) आप अपने मोहल्ले के 7 से 10 वर्ष की आयु के बच्चों का इन सूचनाओं के अनुसार—लड़के, लड़कियां, किस कक्षा में पढ़ रहे/रही हैं और किसी विद्यालय में नहीं पढ़ रहे हैं— सर्वेक्षण कीजिए।
    (ii) इस पर एक संक्षिप्त टिप्पणी तैयार कीजिए।

5 अध्याय

ग्रामीण बस्तियां

सामान्य शब्दों में किसी प्रकार या आकार के घरों के समूह को बस्ती कहते हैं। लेकिन भूगोल में किसी स्थान या क्षेत्र में रहने के लिए एकत्र होने की प्रक्रिया को भी बस्ती माना जाता है। इस प्रक्रिया या परिघटना को बसावट कहा जाता है। इस उद्देश्य के लिए लोग मकान या अन्य ढांचे खड़े करते हैं तथा किसी क्षेत्र या प्रदेश पर अपने आर्थिक भरण-पोषण के आधार के लिए अधिकार कर लेते हैं। इस प्रकार बसावट एक वंशानुगत प्रक्रम है जिसमें लोग समूह में रहते हैं और किसी क्षेत्र या प्रदेश को, अपने भरण-पोषण के आर्थिक आधार के रूप में अधिकार में कर लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप निर्मित परिघटना को बस्ती कहते हैं, जो वास्तव में अधिकृत इकाइयां होती हैं।

ग्रामीण तथा नगरीय बस्तियां

बस्तियां आकार और प्रकार में भिन्न होती हैं, ये छोटे से पुरवे से लेकर महानगरों जितनी बड़ी हो सकती हैं। आकार के अनुसार बस्तियों का आर्थिक स्वरूप और सामाजिक संरचना बदल जाती है और साथ ही बदल जाती है उनकी पारिस्थितिकी और प्रौद्योगिकी। बस्तियां आकार में छोटी और दूर-दूर हो सकती हैं। वे आकार में बड़ी और पास-पास भी हो सकती हैं। दूर-दूर स्थित बस्तियों को गांव कहते हैं, जिनका आर्थिक आधार मुख्यत: कृषि होता है। दूसरी ओर कुछ बड़े नगर एवं शहर हैं, जो प्रमुखत: द्वितीयक तथा तृतीयक क्रियाकलापों की ओर अग्रसर हैं। ग्रामीण तथा नगरीय बस्तियों में मुख्य अंतर निम्न प्रकार से हैं :

1. ग्रामीण बस्तियों का भरण-पोषण या आवश्यकताओं की पूर्ति भूमि-आधारित प्राथमिक क्रियाकलापों द्वारा होती है। दूसरी ओर नगरीय बस्तियों के लोग विविध प्रकार के काम धंधे करते हैं। इन काम धंधों में वस्तुओं के निर्माण के लिए पदार्थों का प्रसंस्करण और अनेक प्रकार की सेवाएं शामिल हैं।
2. नगर, वस्तुएं और सेवाएं न केवल अपने लिए पैदा करते हैं अपितु उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों को भी प्रदान करते हैं। इसके बदले में नगर गांवों से कच्चा माल और खाद्य पदार्थ प्राप्त करते हैं। नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में यह पारस्परिक विनिमय की प्रक्रिया परिवहन और संचार के जाल के द्वारा संपन्न होती है।
3. ग्रामीण बस्तियां अपनी प्राथमिक आर्थिक क्रियाओं के लिए भूमि पर निर्भर करती हैं। ग्रामीण बस्तियां सामान्यत: छोटे आकार की होती हैं, क्योंकि इनके प्रत्येक परिवार को कृषि भूमि, चरागाह या वन के रूप में विस्तृत क्षेत्र की जरूरत होती है। यह एक अकेले परिवार की बस्ती भी हो सकती है जिसे वासभूमि या होम कहते हैं। परिवारों या घरों का बड़ा समूह भी हो सकता है, जो किसी सुरक्षित स्थान पर घरों का स्पष्ट संकेंद्रण होता है। यह अपेक्षाकृत विस्तृत निर्वाह आधार से घिरा होता है। दूसरी ओर नगरीय बस्तियां आकार में बड़ी होती हैं और उनका एक संहत रूप दिखाई पड़ता है। नगरों में घर और गलियां पास-पास बनी होती हैं तथा निर्वाह आधार के रूप में यहां खुले क्षेत्र कम होते हैं।
4. ग्रामीण और नगरीय बस्तियों की जीवन शैली, व्यवहार और दृष्टिकोण में भी अंतर होता है। ग्रामीण लोग कम गतिशील होते हैं। अत: इनमें सामाजिक संबंध बहुत प्रगाढ़ होते हैं। वे अपने काम धंधे साधारण तकनीकों के द्वारा पूरा करते हैं तथा इनके जीवन की गति धीमी होती है। दूसरी ओर नगरीय क्षेत्रों में, जीवन जटिल और तेज है तथा सामाजिक संबंध औपचारिक और दिखावटी होते हैं।

गांवों का आकार और उनके बीच की दूरियां

ग्रामीण बस्तियों के आकार और उनके बीच की दूरियां अनेक कारकों पर निर्भर करती हैं। इनमें भूमि की उत्पादकता,

सारणी 5.1 — भारत : 1991 की जनसंख्या के अनुसार गांवों का वितरण

जनसंख्या आकार वर्ग	200 से कम	200-499	500-999	1000-1999	2000-4999	5000-9999	10,000+	योग
कुल गांवों का प्रतिशत	17.9	24.3	25.0	19.7	10.8	1.8	0.5	100.0
ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	1.7	7.8	16.8	25.7	29.8	11.2	7.0	100.0

क्षेत्र की गैर कृषि क्रियाएं, परिवहन तंत्र, सामाजिक-नृजातीय कारण या परम्पराएं, तकनीकी आर्थिक संगठन, ऐतिहासिक और राजनीतिक प्रक्रियाएं प्रमुख हैं। जिन क्षेत्रों में आवास योग्य भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में उपलब्ध होती है, वहां बस्तियां प्राय: छोटी और अलग-अलग होती हैं। सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कारकों के कारण कुछ अधिक विकसित क्षेत्रों में भी मुख्यत: एकाकी बस्तियां पाई जाती हैं। सारणी 5.1 में विभिन्न आकार वर्गों के गांवों की संख्या और उनकी जनसंख्या दी गयी है तथा चित्र 5.1 में गांवों के आकार के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का वितरण दिखाया गया है।

गांवों के बीच की दूरियों में स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ता है। संपूर्ण भारत में गांवों के बीच की औसत दूरी 2.52 कि.मी. है। बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल के गांवों के बीच की दूरियां राष्ट्रीय औसत से कम हैं। यहां समतल जलोढ़ मैदान और ग्रामीण जनसंख्या के उच्च घनत्व के कारण छोटे-छोटे गांव एक-दूसरे के निकट बसे हैं। परिणामस्वरूप इन राज्यों में गांवों का घनत्व अधिक है। प्रति 100 वर्ग कि.मी. में पश्चिम बंगाल में गांवों का घनत्व 44, बिहार में 40, उत्तर प्रदेश में 39, तथा उड़ीसा में 31 है। दक्षिण की ओर गांवों के बीच की दूरी बढ़ती जाती है। मध्यवर्ती उच्च भूमियों में गांवों के बीच की औसत दूरी 2 और 3 कि. मी. के मध्य है।

दक्षिण के पठार में गांवों के आकार और उनके बीच की दूरियां अधिक हैं। दक्षिणी राज्यों के गांवों के बीच की दूरियां 3 कि.मी. से अधिक हैं। केरल में यह 5.44 कि.मी. है, जो सर्वाधिक है। स्थलाकृतिक बाधाओं, मृदा की सीमित उर्वरता, और जल की समस्याओं के कारण देश के इस भाग में गांव समूहों के रूप में बसे हैं। इन राज्यों में प्रति 100 वर्ग कि.मी. में 15 से भी कम गांव हैं। सबसे कम घनत्व केरल में 4 है। इस राज्य में गांव की प्रादेशिक सीमा 30 वर्ग कि.मी. में विस्तृत है और उसी अनुपात में यहां जनसंख्या भी अधिक है।

इसी प्रकार, पर्यावरणीय समस्याओं के कारण राजस्थान के मरुस्थल, हिमालयी राज्यों और उत्तर-पूर्वी पहाड़ी राज्यों में गांव दूर-दूर स्थित हैं। राजस्थान के गांवों के मध्य दूरी 3.21 कि.मी. जम्मू और कश्मीर में 6.99 कि.मी. और मिजोरम में 5.84

सारणी **5.2** — भारत : ग्रामीण घनत्व, आकार और गांवों के बीच की दूरियां में संबंध -**1991***

अंतर्ग्राम दूरी (कि.मी.)	गांव का औसत आकार (जनसंख्या)	ग्रामीण घनत्व (व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी.)	गांवों का घनत्व (प्रति 100 वर्ग. कि.मी. क्षेत्र में)
2.00 से कम	752	350	47
2.00 - 2.99	794	151	19
3.00 - 3.99	1384	139	10
4.00 - 4.99	1638	101	06
5.00 से अधिक	2862	55	02
कुल गांव का औसत	1686	159	16.8

* जम्मू और कश्मीर को छोड़कर
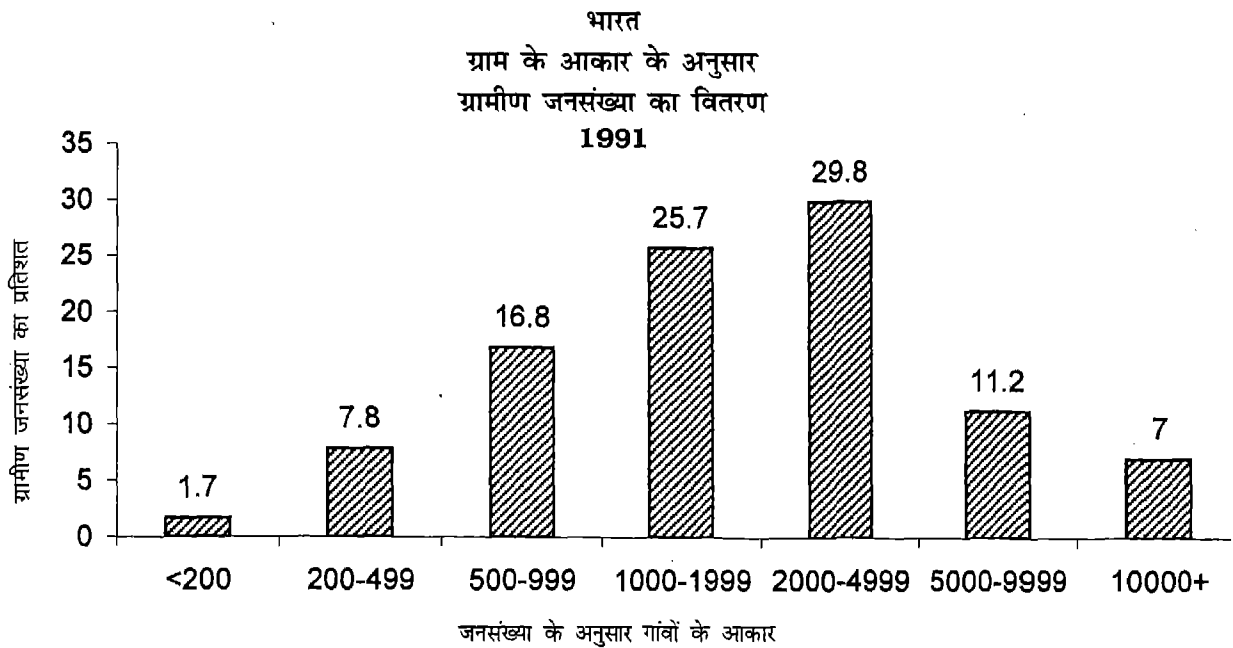
चित्र 5.1 *भारत : ग्राम के आकार के अनुसार जनसंख्या का वितरण, 1991*

कि.मी. है। दक्षिणी राज्यों के विपरीत इन क्षेत्रों में गांवों के आकार छोटे और जनसंख्या का घनत्व भी कम है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि ग्रामीण जनसंख्या का घनत्व, दूर-दूर स्थित गांवों में कम है। इसके विपरीत पास-पास स्थित बड़े गांवों वाले क्षेत्र में जनसंख्या और गांव दोनों का ही घनत्व अधिक होता है (सारणी 5.2)।

ग्रामीण बस्तियों के प्रकार

बस्तियों के प्रकार का निर्धारण निर्मित क्षेत्र के विस्तार और घरों के बीच की दूरी के द्वारा किया जाता है। भारत की बस्तियों में काफी विविधता है। सैकड़ों घरों या परिवारों वाले संहत या गुच्छित गांव भारत का विशेष रूप से उत्तरी मैदानों का व्यापक लक्षण है। लेकिन ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहां अन्य प्रकार की ग्रामीण बस्तियां पाई जाती हैं। इस प्रकार भारत की ग्रामीण बस्तियों को मोटे तौर पर चार वर्गों में बांटा जा सकता है :

1. गुच्छित, संहत, अथवा केंद्रीय
2. अर्ध गुच्छित या विखंडित
3. पुरवे
4. परिक्षिप्त या एकाकी।

गुच्छित बस्तियां : पास बने घरों वाली ग्रामीण बस्तियों को गुच्छित या संहत बस्तियां कहते हैं। इस प्रकार के गांवों में सामान्य आवासीय क्षेत्र स्पष्ट रूप से निकटवर्ती खेतों, घेरों (बाड़ों) और चरागाहों से अलग होता है। पास-पास बने घर और उनके बीच की गलियों से एक स्पष्ट प्रतिरूप या ज्यामितीय आकृति जैसे आयताकार, अरीय, रैखिक आदि बन जाती हैं (चित्र 5.2)। इस प्रकार की बस्तियां अत्यंत उपजाऊ जलोढ़ मैदानों, शिवालिक की घाटियों और उत्तरपूर्वी राज्यों में पाई जाती हैं। कभी-कभी लोग सुरक्षा के कारणों से संहत गांवों में रहते हैं। ऐसे गांव मध्य भारत के बुंदेलखंड क्षेत्र और नागालैंड में पाए जाते हैं। राजस्थान में कृषि योग्य भूमि और जल की कमी ने उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम उपयोग के लिए संहत बस्तियों को अनिवार्य बना दिया है।

अर्धगुच्छित बस्तियां : किसी सीमित क्षेत्र में समूहन प्रवृत्ति या समेकित प्रादेशिक आधार के परिणामस्वरूप ही अर्धगुच्छित या विखंडित बस्तियां बनती हैं। प्रायः किसी बड़े संहत गांव के पृथक्करण या विखंडन के परिणामस्वरूप ही ऐसे प्रतिरूप उभरते हैं। इस उदाहरण में ग्रामीण समाज का एक या एक से अधिक वर्ग स्वेच्छा या मजबूरी से मुख्य
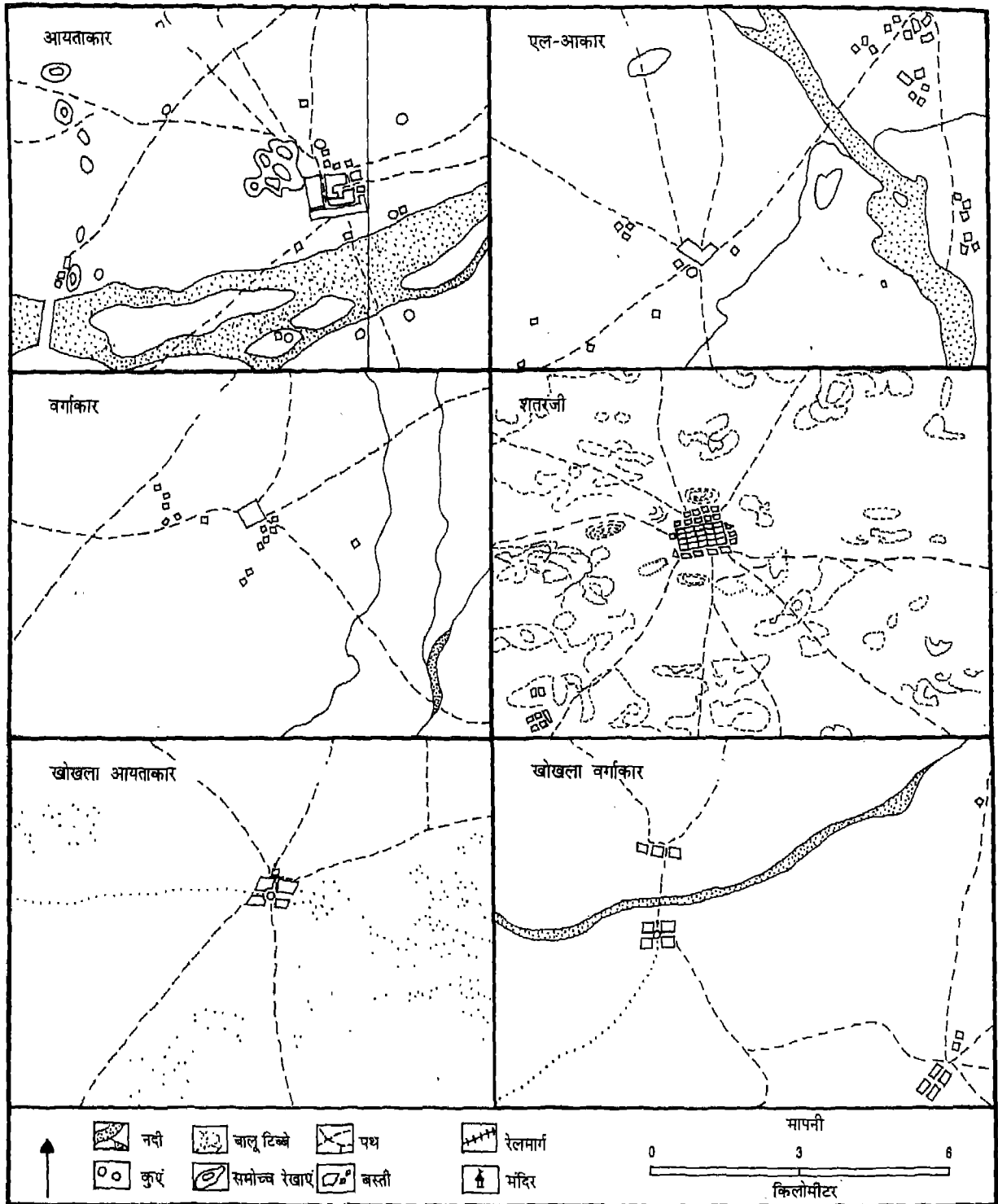
चित्र 5.2 गांवों के प्रतिरूप : आयताकार, एल-आकार, वर्गाकार, शतरंजी, खोखला आयताकार तथा खोखला वर्गाकार

गुच्छित बस्ती से कुछ दूरी पर अलग बस्ती बनाकर रहने लगता या लगते हैं। सामान्यत: भू-स्वामी और प्रभावशाली समाज के लोग गांव के केंद्रीय भाग में रहते हैं, जबकि समाज के निम्न वर्ग के लोग और छोटा काम करने वाले लोग गांव के बाहरी भाग में रहते हैं। गुजरात के मैदान में ऐसी बस्तियां व्यापक रूप से पाई जाती हैं।

पुरवे वाली बस्तियां : कभी-कभी बस्ती भौतिक रूप से एक-दूसरे से अलग इकाइयों के रूप में होती हैं। सामान्यत: इनका एक ही नाम होता है तथा ये एक-दूसरे से स्पष्ट दूरी पर होते हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसी बस्तियों को पल्ली, नंगला या ढाणी जैसे स्थानीय नामों से जाना जाता है। सामाजिक और नृजातीय कारकों के कारण बड़ा गांव कई छोटी बस्तियों में बंट जाता है। गंगा के मध्यवर्ती और निचले मैदान, छत्तीसगढ़ और हिमालय की निचली घाटियों में प्राय: ऐसे ही गांव पाए जाते हैं।

परिक्षिप्त बस्तियां : भारत में परिक्षिप्त या एकाकी बस्तियां सुदूर वनों में एकाकी झोंपड़ी या कुछ झोंपड़ियों के समूह के रूप में पाई जाती हैं। ऐसी बस्तियां छोटी पहाड़ियों पर भी होती हैं, जिसके आस-पास के ढालों पर खेत या चरागाह होते हैं। बस्तियों का चरम फैलाव, बसने योग्य क्षेत्रों में जीविका-निर्वाह के भूमि संसाधनों के अत्यधिक बिखरे होने के कारण होता है। मेघालय, उत्तरांचल और हिमाचल प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में इस प्रकार की बस्तियां पाई जाती हैं।

ग्रामीण बस्तियों को प्रभावित करने वाले कारक

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि अनेक कारक और दशाएं ग्रामीण बस्तियों के प्रकार को निर्धारित करते हैं। संक्षेप में ये कारक इस प्रकार हैं : (1) भौतिक लक्षण– धरातल का स्वरूप, ऊंचाई, जलवायु तथा जल की उपलब्धता (चित्र 5.2); (2) सांस्कृतिक और नृजातीय कारक– जातीय और जनजातीय संरचना और धर्म, (3) सुरक्षा कारक– आक्रमणों, डाकुओं और जंगली जानवरों से सुरक्षा।

ग्रामीण बस्तियों के प्रतिरूप

भारत में गांवों के विविध रूप या अभिन्यास दिखाई पड़ते हैं। गलियों की व्यवस्था के अनुसार बस्ती की आकृति निर्धारित होती है। गलियों की व्यवस्था के अतिरिक्त गांव की आकृति को मंदिर, मस्जिद, कुएं, तालाब आदि सांस्कृतिक लक्षण भी निर्धारित करते हैं। भारत में पाए जाने वाले प्रमुख बस्ती-प्रतिरूप ये हैं :

(1) रैखिक (2) अरीय (3) तारा आकृति (4) मकड़ जाल आकृति (5) आयताकार या शतरंजी (6) त्रिभुजीय या बाण की नोक के समान (7) गोलाकार या अर्ध गोलाकार (8) पंखाकृति (चित्र 5.3 और 5.4)।

किसी मार्ग, नदी या नहर के किनारे बसे गांवों की आकृति रैखिक होती है (चित्र 5.3)। केरल के तटीय क्षेत्रों और दून घाटी में (डोईवाला, लच्छीवाला, कांवड़वाला आदि गांव) ऐसी बस्तियां पाई जाती हैं।

जब किसी केंद्रीय स्थिति वाले गांव या कस्बे में अनेक सड़कें आकर मिलती हैं तो लोग अपने मकान इन सड़कों के किनारे-किनारे बनाते जाते हैं; ऐसी स्थिति में एक अरीय बस्ती का विकास होता है (चित्र 5.3)। लेकिन बाद में जब दो सड़कों के बीच भी मकान बन जाते हैं तो बस्ती का प्रतिरूप तारे की आकृति जैसा हो जाता है। अरीय सड़कों के मध्य एक-दूसरे को जोड़ने वाली सड़कों के स्पष्ट विस्तार से बस्ती का प्रतिरूप मकड़-जाल की आकृति जैसा हो जाता है।

अनेक गांवों और छोटे कस्बों में सड़कें एक-दूसरे के समांतर बनी होती हैं तथा एक-दूसरे को लगभग समकोण पर काटती हैं। सड़कों के इस प्रकार के अभिन्यास तथा उनके बीच बने मकानों के द्वारा बस्ती का प्रतिरूप शतरंजी अथवा आयताकार हो जाता है। बस्ती का ऐसा प्रतिरूप उन चौराहों पर बनता है, जहां दो महामार्ग एक-दूसरे को काटते या मिलते हैं। बस्तियों के ऐसे प्रतिरूप भारत के उत्तरी मैदानों में देखे जा सकते हैं।

संगम पर दो नदियों के बीच या दो सड़कों की शाखाओं के बीच बसे गांवों और कस्बों की आकृति त्रिभुजीय या बाण की नोंक जैसी हो जाती है। इसी प्रकार पंखों या डेल्टाओं के शीर्ष पर बसे गांवों का विकास वितरिकाओं के सहारे होता है, जिससे बस्ती का प्रतिरूप पंखे के समान (पंखाकृति) हो जाता है। मध्य प्रदेश के असलाना और गढ़कोटा गांव तथा तमिलनाडु का कन्याकुमारी कस्बा पंखे जैसी आकृति के हैं।

झील या पहाड़ी जैसे लक्षणों को घेरकर बसी बस्तियों की आकृति गोलाकार हो जाती है। यदि ऐसी बस्तियां ऐसे लक्षणों को आधा ही घेर पाती हैं, तो इनकी आकृति अर्द्ध

गांवों के अभिन्यास और रूप
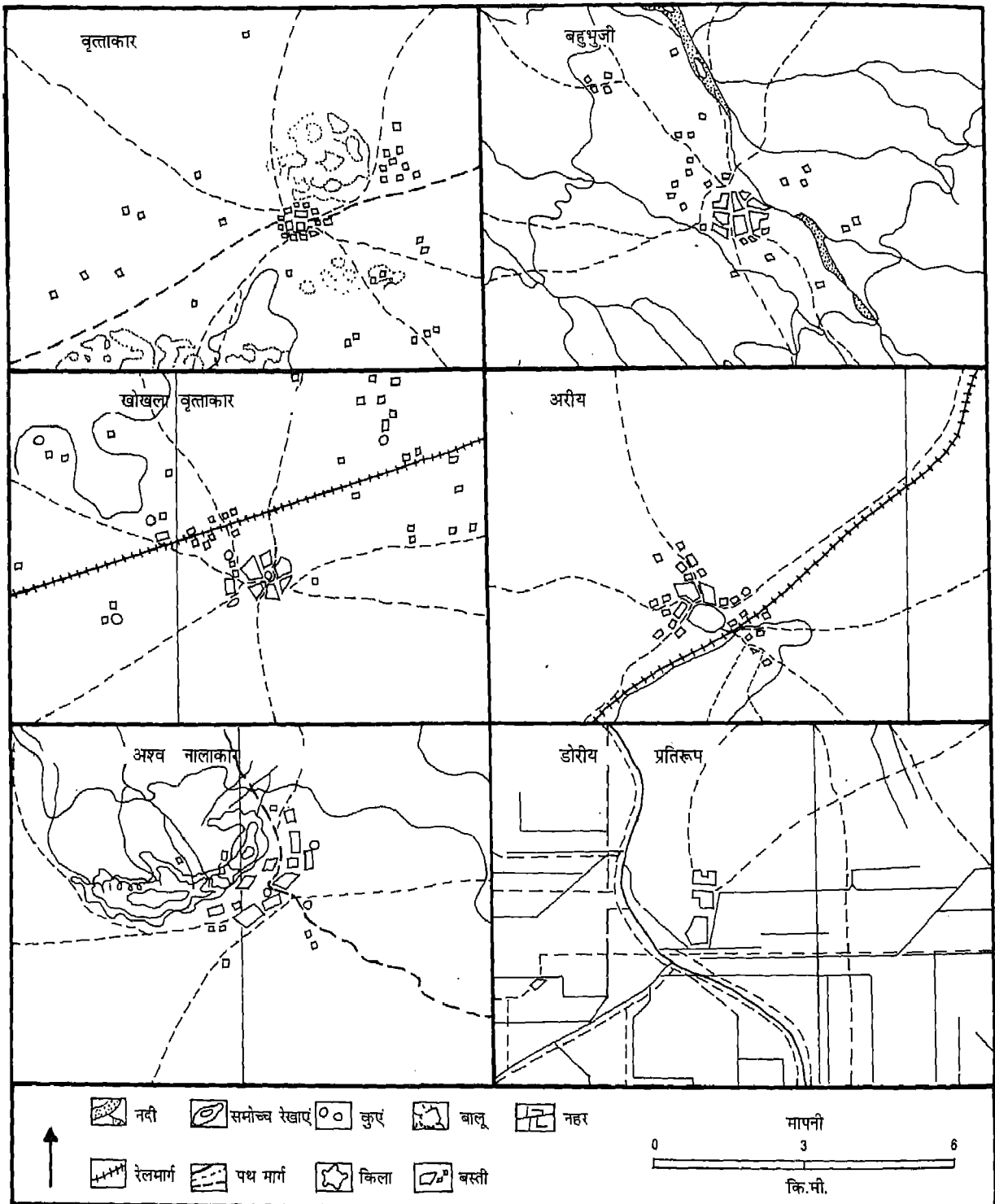
चित्र 5.3 गांवों के प्रतिरूप : वृत्ताकार, बहुभुजी, खोखला वृत्ताकार, अरीय, अश्व नालाकार तथा डोरीय प्रतिरूप
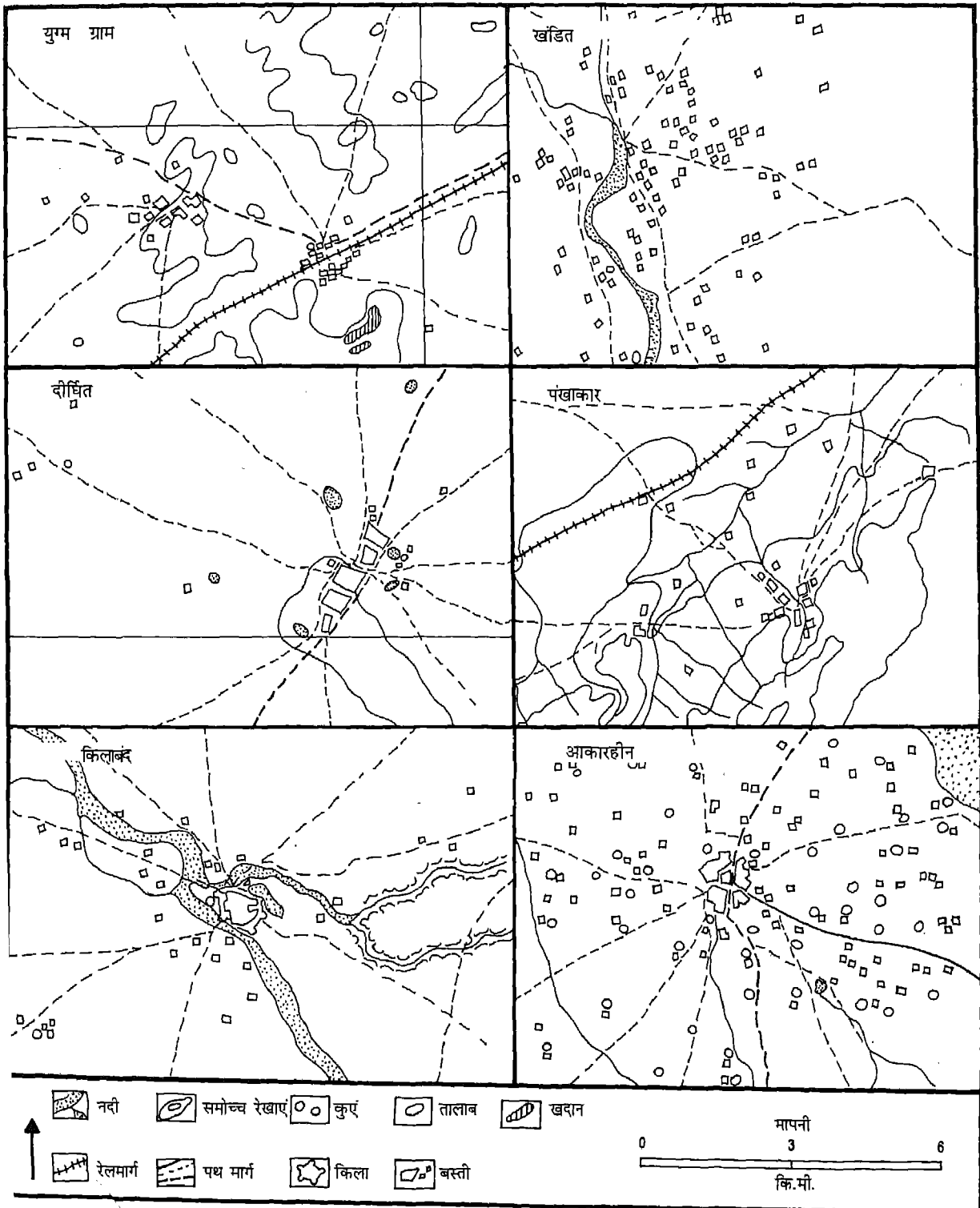
चित्र 5.4 गांवों के प्रतिरूप : युग्म ग्राम, खंडित, दीर्घित, पंखाकार, किलाबंद तथा आकारहीन

गोलाकार हो जाती है। उत्तर प्रदेश की भीमताल और राजस्थान की सीवान बस्तियां अद्‌र्ध वृत्ताकार हैं।

भारत में घरों के प्रकार

मनुष्य का अपने पर्यावरण के साथ तालमेल बैठाने का तरीका मकान के रूप में प्रदर्शित होता है। प्रायः निर्माण सामग्री, मकान का नक्शा, छत का ढाल, दीवार की मोटाई, दरवाजे की दिशा आदि पर्यावरणीय दशाओं के अनुसार निर्धारित की जाती हैं। यही नहीं, मकान की आंतरिक संरचना, साज-सज्जा, मकान मालिक की जीवन शैली और सामाजिक व आर्थिक स्तर के अनुरूप होती है। भारतीय ग्रामीण घरों के प्रकारों और निर्माण-सामग्री में प्रादेशिक विशिष्टता और स्थानीय प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। आंगन भारतीय घरों की उल्लेखनीय विशिष्टता है। आंगन चारों तरफ से मकानों या कमरों व दीवारों से घिरा होता है। लोगों के सामाजिक जीवन में आंगन का बड़ा महत्त्व होता है। आकार में घर, एक कमरे वाली झोंपड़ी से लेकर अनेक कमरों वाले भवन होते हैं। आयत जैसी आकृति के मकान भारत में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। छतों की आकृति और ढाल जलवायविक दशाओं एवं स्थानीय रूप से उपलब्ध पदार्थों के अनुसार भिन्न हो सकती हैं। लेकिन उत्तर पूर्वी भारत, पश्चिम बंगाल, बिहार, तराई प्रदेश, केरल, आदि में शंक्वाकार छतों वाली वृत्ताकार झोंपड़ियां पाई जाती हैं।

भारत में निचली आर्द्र भूमियों में अपवाह व्यवस्था प्रायः खराब होती है। ऐसे स्थानों पर मकान की कुरसी प्रायः जमीन से एक या दो मीटर ऊंची रखी जाती है। इसकी निचली मंजिल का उपयोग पशुओं के रखने के लिए किया जाता है। भारी वर्षा या हिमपात वाले पर्वतीय क्षेत्रों में मकानों में अपेक्षाकृत कम खिड़कियां रखी जाती हैं। इन मकानों की छतें ढालू होती हैं, ताकि वर्षा का जल या हिम शीघ्र बह जाए या फिसल जाए। शुष्क और गरम जलवायु वाले क्षेत्रों की ओर बढ़ने पर मकानों की छतें सपाट तथा मकान की आकृति आयताकार या आंगन के चारों ओर बनी, जैसी होती है। केरल जैसी गरम और आर्द्र जलवायु में मकानों की छतें दो मंजिली होती हैं तथा ऊपर भी छतें विशेष प्रकार के घास-फूस से बनाई जाती हैं। ऐसी छतें लंबे समय तक वर्षा को आसानी से झेलती हैं। नगरीय भू-क्षेत्रों के पक्के मकानों में भी खुली और सपाट छतों पर भी ऐसे छप्पर डाले जाते हैं। मिट्टी और सूखी हुई विशेष प्रकार की घास के द्‌वारा अच्छे छप्पर बनाए जाते हैं। दीवारें बनाने के लिए कच्ची या पक्की ईंटों, पत्थरों या अन्य सामग्री का उपयोग किया जाता है। छत बनाने के लिए छप्परों, खपरेलें, टीन की चादरें आदि काम में लाई जाती हैं। मकानों के खंभे पत्थर या लकड़ी के बनाए जाते हैं।

वितरण प्रतिरूप

ग्रामीण बस्तियां अनेक प्रकार से वितरित हैं। अनेक छोटी-छोटी बस्तियों के रैखिक प्रतिरूप दिखाई पड़ते हैं। ये बस्तियां सड़क, नदी, नहर तथा पर्वतीय क्षेत्रों में दर्रों या संकीर्ण रास्तों के किनारे निर्मित मकानों के रूप में देखी जा सकती हैं। पश्चिमी तट, विशेष रूप से केरल में रैखिक बस्तियों की एक अविच्छिन्न पट्टी है। साधारण रूप में इस तरह की बस्तियां पूर्वी तट के सहारे तथा हिमालय की पर्वतपादीय पहाड़ियों के सहारे भी दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार असम घाटी में भी रैखिक बस्तियां नदियों के प्राकृतिक तटबंधों और सड़कों के साथ-साथ बसी हैं।

भारत के उत्तरी मैदानों में जनसंख्या का घनत्व पूर्व की ओर निरंतर बढ़ता जाता है। इस क्षेत्र में बस्तियों का आकार तो पूर्व की ओर घटता जाता है, लेकिन गांवों के बीच की दूरी घटती जाती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रायः बड़े संहत गांव एक-दूसरे से कुछ दूरी पर स्थित हैं, यहां गांवों के बीच की दूरी में निरंतरता है, इसमें अधिक घट-बढ़ नहीं है। ये गांव अनेक दिशाओं से आने वाली सड़कों और मार्गों से जुड़े हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में गांव प्रायः विखंडित हैं अर्थात् मुख्य बस्ती के साथ दो या तीन गौण और पूरक बस्तियां पाई जाती हैं। ये बस्तियां मुख्य गांव से जुड़ी नहीं होतीं। राजस्थान में भिन्न प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। यहां पश्चिम के मरुस्थलीय भाग में बड़े-बड़े गांव दूर-दूर स्थित हैं। लेकिन पूर्व के अर्धशुष्क भाग में गांव छोटे लेकिन एक-दूसरे के अधिक निकट बसे हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   - (i) बस्ती से क्या तात्पर्य है?
   - (ii) बसावट किसे कहते हैं?
   - (iii) ग्रामीण बस्तियां किस प्रकार के काम करती हैं ?
   - (iv) भारत के अधिकतर लोग किस आकार के गांवों में रहते हैं?
   - (v) 500 से कम जनसंख्या वाले गांवों का क्या अनुपात है?
   - (vi) गुच्छित बस्ती किसे कहते हैं?
   - (vii) भारतीय गृहों के प्रमुख लक्षण क्या हैं?
2. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   - (i) ग्रामीण और नगरीय बस्तियां
   - (ii) गुच्छित एवं अर्धगुच्छित बस्तियां
   - (iii) पुरवा तथा परिक्षिप्त बस्तियां
   - (iv) रैखिक और वृत्ताकार ग्रामीण बस्तियां।
3. ग्रामीण बस्तियों के विविध प्रतिरूपों का वर्णन कीजिए।
4. भारत में घरों के प्रकारों को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
5. भारत में ग्रामीण बस्तियों के वितरण प्रारूप की विवेचना कीजिए।

परियोजना कार्य

6. किसी क्षेत्र के स्थलाकृतिक मानचित्र का अध्ययन कीजिए तथा इसमें पाई जाने वाली ग्रामीण बस्तियों के विविध प्रकारों का वर्णन कीजिए।

6 अध्याय

नगरीय बस्तियां

ग्रामीण बस्तियों के विपरीत नगरीय बस्तियां प्रायः संहत और बड़े आकार की होती हैं। नगरों के लोग अनेक प्रकार के गैर-कृषि आर्थिक और प्रशासनिक क्रियाकलापों में लगे हुए हैं। भोजन और कच्चे माल के लिए वे अपने पृष्ठ प्रदेश पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार नगर अपने आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों से घनिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं। नगर अनेक प्रकार की वस्तुएं और सेवाएं पैदा करते हैं जिन्हें वे ग्रामीण क्षेत्रों को भेजते हैं। इनके बदले में ग्रामीण क्षेत्रों से वे प्राथमिक उत्पाद और श्रमिक प्राप्त करते हैं। वस्तुओं और सेवाओं का यह आदान-प्रदान कभी प्रत्यक्ष और कभी कस्बों व नगरों की बाजार शृंखलाओं के माध्यम से होता है। इस प्रकार नगर अलग-अलग या सामूहिक रूप से गांवों से तथा परस्पर जुड़े हैं। इस प्रकार सारे के सारे कस्बे और नगर एक बृहत्तर भौगोलिक क्षेत्र के नगरों, कस्बों, गांवों और उनके संसाधनों के लिए एक केंद्र के रूप में कार्य करते हैं। नगर संपूर्ण देश के प्रादेशिक और प्रकार्यात्मक संगठन के लिए कार्य करते हैं।

नगरों की परिभाषा

विभिन्न देशों में नगरों को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया जाता है। भारत में 2001 की जनगणना में दो प्रकार के नगरों की पहचान की है :

संवैधानिक नगर : वे सभी स्थान, जिनमें नगरपालिका या नगर निगम या केंटूनमैंट बोर्ड या नौटीफाइड टाउन एरिया कमेटी हैं।

जनगणना नगर : वे सभी स्थान जो निम्नलिखित कसौटियों पर खरे उतरते हैं :

(i) जिनकी जनसंख्या कम से कम 5000 हो,
(ii) जिनकी 75 प्रतिशत कार्यशील पुरुष जनसंख्या गैर-कृषि कार्यों में लगी हो, और
(iii) जिनकी जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. हो।

भारत में नगरों का विकास

भारत में प्रागैतिहासिक काल से नगर फलते-फूलते रहे हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के समय भी हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे नगरों का अस्तित्व था। 600 ईसा पूर्व नगरीकरण का दूसरा दौर प्रारंभ हुआ। यह सिलसिला 18वीं शताब्दी में यूरोपवासियों के आने तक थोड़े उतार-चढ़ाव के साथ निरंतर चलता रहा। नगर इतिहासवेत्ता भारतीय नगरों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत करते हैं :

1. प्राचीन नगर, 2. मध्यकालीन नगर, और 3. आधुनिक नगर।

प्राचीन नगर : लगभग 45 नगरों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। इनका अस्तित्व 2000 वर्षों से भी अधिक समय से है। इनमें से अधिकतर का विकास धार्मिक और सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में हुआ था। वाराणसी इनमें से एक महत्वपूर्ण नगर है। अयोध्या, प्रयाग (इलाहाबाद), पाटलिपुत्र (पटना), मथुरा और मदुरै कुछ प्राचीन नगरों के अन्य उदाहरण हैं।

मध्यकालीन नगर : लगभग 101 वर्तमान नगरों का विकास मध्य काल में हुआ, इनमें से अधिकतर नगर रियासतों और राज्यों के मुख्यालयों या राजधानियों के रूप में विकसित हुए। इनमें से अधिकतर दुर्गनगर हैं जो पहले से विद्यमान नगरों के खंडहरों से उभरे हैं। इनमें कुछ प्रसिद्ध नगर हैं : दिल्ली, हैदराबाद, जयपुर, लखनऊ, आगरा और नागपुर।

आधुनिक नगर : अंग्रेजों और अन्य यूरोपवासियों ने नगरीय परिदृश्य को बदल दिया। बाहरी शक्ति के रूप में इन्होंने पहले-पहल तटीय स्थानों पर अपने पैर जमाए थे। इन्होंने सबसे पहले कुछ व्यापारिक पत्तनों जैसे–सूरत, दमण, गोवा, पांडिचेरी आदि का विकास किया। बाद में अंग्रेजों ने तीन प्रमुख केंद्रों– मुंबई (बम्बई), चेन्नई (मद्रास) और कोलकाता (कलकत्ता) से अपनी सत्ता को मजबूत किया। उन्होंने इन नगरों का निर्माण अंग्रेजी स्थापत्य कला के अनुसार किया था। अंगेजों ने प्रत्यक्ष रूप से या बाह्य रूप से नियंत्रण द्वारा देशी

रियासतों पर अपना आधिपत्य बड़ी तेजी से स्थापित किया । इसी दौरान उन्होंने प्रशासनिक केंद्रों, पर्यटन स्थलों के रूप में पर्वतीय नगरों का विकास किया तथा पहले से विद्यमान नगरों में सिविल लाइंस; प्रशासनिक और छावनी क्षेत्र जोड़ दिए। भारत में आधुनिक उद्योगों पर आधारित नगरों का विकास भी 1850 के बाद ही हुआ। इस संदर्भ में जमशेदपुर का उल्लेख उदाहरण के रूप में किया जा सकता है।

स्वतंत्रता के बाद प्रशासनिक मुख्यालयों और औद्योगिक केंद्रों के रूप में अनेक नगरों का उदय हुआ। चंडीगढ़, भुवनेश्वर, गांधीनगर, दिसपुर आदि प्रशासनिक मुख्यालय तथा दुर्गापुर, भिलाई, सिन्दरी, बरौनी, आदि औद्योगिक केंद्रों के उदाहरण हैं। कुछ प्राचीन नगरों का महानगरों के चारों ओर उपनगरों के रूप मे भी विकास हुआ है। दिल्ली के चारों और विकसित गाज़ियाबाद, नोएडा, रोहतक, गुड़गांव, आदि ऐसे ही उपनगर हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में विनिवेश के बढ़ने के साथ ही सारे देश में काफी बड़ी संख्या में मध्यम और छोटे कस्बों का विकास हुआ है।

भारत में नगरीकरण

भारत की कुल जनसंख्या की एक चौथाई से अधिक जनसंख्या नगरीय है। 1901 में भारत की नगरीय जनसंख्या 2.5 करोड़ थी जो 2001 में बढ़कर ग्यारह गुनी अर्थात् 28.54 करोड़ हो गई। इस तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण नगरीय केंद्रों की ओर जनसंख्या का प्रवास है। नगरों की वृद्धि में दो प्रक्रियाओं की विशेष भूमिका रही है : नगरीय केंद्रों का विस्तार तथा नए नगरों का उदय। इन दोनों ने नगरीय जनसंख्या की वृद्धि और नगरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है (सारणी 6.1)।

नगरीय बस्तियों के प्रकार

कस्बों और नगरों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है, लेकिन नगरों का वर्गीकरण सामान्य रूप में आकार और उनके कार्यों के आधार पर ही अधिक प्रचलित है।

जनसंख्या के आधार पर कस्बों और नगरों के वर्ग

भारत के जनगणना विभाग ने नगरीय केंद्रों को 6 वर्गों में विभाजित किया है जैसा कि सारणी 6.2 में दिया गया है। एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरीय केंद्र को **नगर** तथा एक लाख से कम जनसंख्या वाले नगर को **कस्बा** कहा जाता है। 10 से 50 लाख तक की जनसंख्या वाले नगरों को महानगर तथा 50 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों को **बृहत् नगर** कहते हैं। अधिकतर महानगर और बृहत् नगर **नगरीय ग्संकुल** हैं। नगरीय संकुल निम्नलिखित तीन में से कोई एक हो सकता है। (i) नगर तथा इसका संलग्न विस्तार (ii) विस्तार सहित अथवा बिना विस्तार के

***सारणी 6.1* — भारत : नगरीकरण की प्रवृत्तियां, 1901-2001**

वर्ष	*नगरों की जनसंख्या*	*नगरीय जनसंख्या (हजार में)*	*कुल जनसंख्या का प्रतिशत*	*दसकीय वृद्धि (%)*
1901	1827	25851.9	10.84	—
1911	1815	25941.6	10.29	0.35
1921	1949	28086.2	11.18	8.27
1931	2072	33456	11.99	19.12
1941	2250	44153.3	13.86	31.97
1951	2843	62443.7	17.29	41.42
1961	2365	78936.6	17.97	26.41
1971	2590	109113.9	19.91	38.23
1981	3378	159462.5	23.34	46.14
1991	4689	217611.0	25.71	36.47
2001	5161	285354.9	27.78	31.13

सारणी 6.2 — भारत : जनसंख्या सहित आकार के अनुसार कस्बों और नगरों की संख्या - 2001

वर्ग	जनसंख्या का आकार	संख्या	जनसंख्या (करोड़ में)	कुल नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत	प्रतिशत वृद्धि 1991-2002
सभी		5161	28.535	100.00	31.13
I	1,00,000 और अधिक	423	17.204	61.48	23.12
II	50,000 - 99,999	498	3.443	12.30	43.45
III	20,000 - 49,999	1386	4.197	15.00	46.19
IV	10,000 - 19,999	1560	2.260	8.08	32.94
V	5,000 - 9,999	1057	0.798	2.85	41.49
VI	5,000 और कम	227	0.080	0.29	21.21

दो या दो से अधिक सटे हुए नगर और (iii) एक नगर और उससे सटे हुए एक या एक से अधिक नगरों और उनके क्रमिक विस्तार–रेलवे कालोनी, विश्वविद्यालय परिसर, पत्तन क्षेत्र, सैन्य छावनी, आदि नगरीय विस्तार के उदाहरण हैं। ये सभी कस्बे या नगर के निकटस्थ गांव या गांवों की राजस्व सीमाओं में स्थित होते हैं।

कस्बों और नगरों का आकार 338 व्यक्तियों वाले वासना बोरसद औद्योगिक अधिसूचित क्षेत्र (आनंद जिला, गुजरात) से लेकर 1.19 करोड़ की जनसंख्या वाले बृहत्तर मुंबई जैसा हो सकता है। सन् 2001 की जनसंख्या के अनुसार कस्बों और नगरों की वर्ग-आधारित संख्या सारणी 6.2 में दी गई है (चित्र-6.1)।

भारत
वर्गानुसार नगरीय जनसंख्या का वितरण (प्रतिशत में); 2001
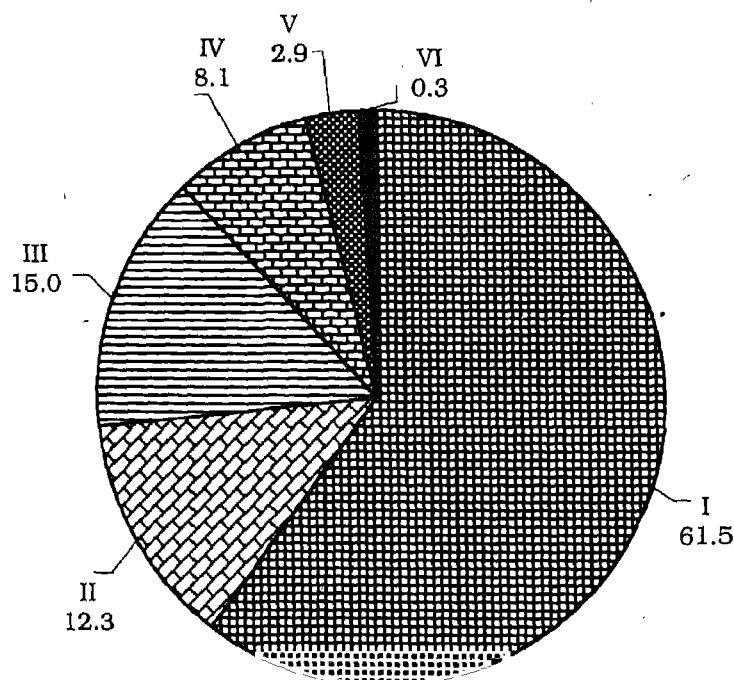
चित्र 6.1 भारत में वर्गानुसार नगरीय जनसंख्या का वितरण, 2001

सारणी 6.2 से यह स्पष्ट है कि अधिकतर नगरीय जनसंख्या केवल 423 नगरों में रहती है, जो कुल नगरों का मात्र 8.2 प्रतिशत है। इन नगरों में देश की कुल नगरीय जनसंख्या का 61.48 प्रतिशत भाग रहती है। 423 नगरों में से 35 महानगर या नगरीय संकुल हैं, जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 10 लाख से अधिक है, इसीलिए इन्हें महानगर कहते हैं (चित्र 6.2)। इनमें से छः बृहत् नगर हैं, जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 50 लाख से अधिक है। इन बृहत् नगरों में कुल नगरीय जनसंख्या के पांचवें भाग से अधिक (21.0 प्रतिशत) लोग रहते हैं।

20 हजार से कम जनसंख्या वाले नगरीय केंद्र कुल कस्बों के आधे से भी अधिक (52.2%)हैं । इनमें 11.0 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या रहती है। लगभग एक चौथाई (27.30 प्रतिशत) नगरीय जनसंख्या देश के मध्यम आकार के नगरों में रहती है। पिछले दशक में इन मध्यम आकार के नगरों की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि हुई है। ऐसे नगरों की जनसंख्या पहले कुल नगरीय जनसंख्या की 24.3 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 27.3 प्रतिशत हो गई है।

महानगर

विगत केवल एक दशक (1991-2001) में नगरीय जनसंख्या की वृद्धि के साथ ही दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की संख्या 23 से बढ़कर 35 हो गई है। इनमें 1.64 करोड़ की जनसंख्या वाला बृहत्तर मुंबई सबसे बड़ा महानगर है। कोलकाता, दिल्ली, चेन्नई, बंगलौर, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, सूरत, कानपुर, जयपुर, लखनऊ और नागपुर में से प्रत्येक की जनसंख्या 20 लाख से अधिक है (सारणी 6.3)। सन् 2001 में इन नगरों में 10.788 करोड़ लोग रहते थे। सन् 1991 में इन नगरों की जनसंख्या कुल नगरीय जनसंख्या का 32.5 प्रतिशत थी, जो 2001 में बढ़कर 37.8 प्रतिशत हो गई है। सभी वर्गों के कस्बों और नगरों के बीच इनकी जनसंख्या में 52.0 प्रतिशत की सर्वाधिक वृद्धि हुई है। इन नगरों में जनसंख्या का संकेंद्रण निरंतर बढ़ रहा है, लेकिन आर्थिक क्रियाकलाप उसी अनुपात में नहीं बढ़ रहे हैं। परिणामस्वरुप यहां मलिन बस्तियां (झुग्गी-झोपड़ियां) बस गई हैं।

मलिन बस्तियां (झुग्गी-झोपड़ियां) : मलिन बस्ती कही जाने वाली अवैध बस्तियों का फैलाव भारतीय नगरों की एक प्रमुख विशेषता है। देश के 26 राज्यों और केंद्रशासित

***सारणी 6.3* — भारत : दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर/नगरीय संकुल, 2001**

श्रेणी	*नगरीय संकुल/नगर*	*जनसंख्या (लाखों में)*
1.	बृहत्तर मुंबई	163.7
2.	कोलकाता	132.2
3.	दिल्ली	127.9
4.	चेन्नई	64.2
5.	बंगलौर	56.9
6.	हैदराबाद	55.3
7.	अहमदाबाद	45.2
8.	पुणे	37.6
9.	सूरत	28.1
10.	कानपुर	26.9
11.	जयपुर	23.2
12.	लखनऊ	22.7
13.	नागपुर	21.2
14.	पटना	17.1
15.	इंदौर	16.4
16.	वडोदरा	14.9
17.	भोपाल	14.5
18.	कोयम्बटूर	14.5
19.	लुधियाना	13.9
20.	कोच्चि	13.6
21.	विशाखापत्तनम्	13.3
22.	आगरा	13.2
23.	वाराणसी	12.1
24.	मदुरै	11.9
25.	मेरठ	11.7
26.	नासिक	11.5
27.	जबलपुर	11.2
28.	जमशेद्पुर	11.0
29.	आसनसोल	10.9
30.	धनबाद	10.6
31.	फरीदाबाद	10.5
32.	इलाहाबाद	10.5
33.	अमृतसर	10.1
34.	विजयवाड़ा	10.1
35.	राजकोट	10.0
	कुल	**1078.8**
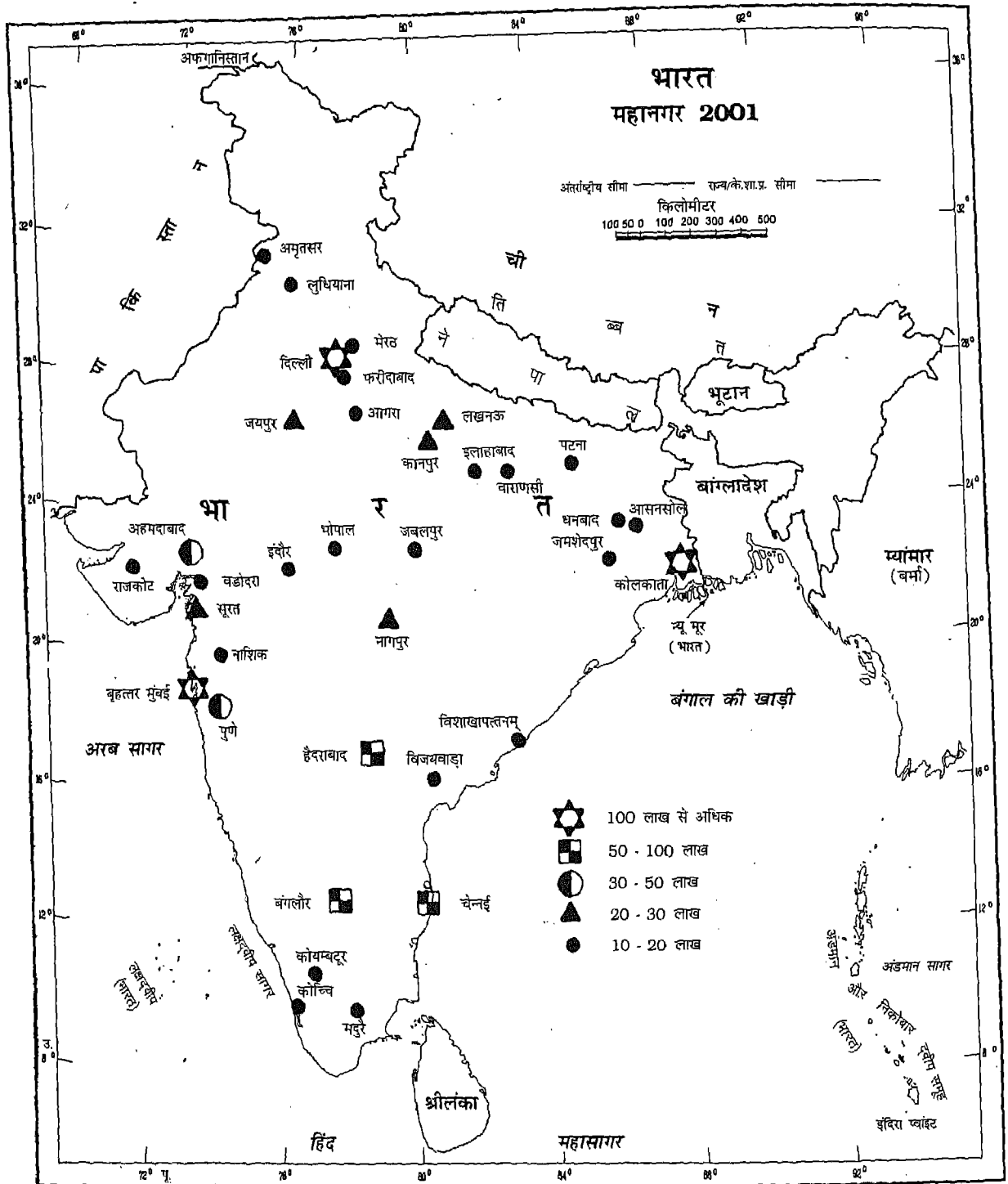
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 6.2 भारत के महानगर, 2001

प्रदेशों ने 607 कस्बों और नगरों में मलिन बस्तियां होने की जानकारी दी है। मलिन बस्तियों की कुल जनसंख्या 4 करोड़ 3 लाख है, जो मलिन बस्तियों वाले नगरों की कुल जनसंख्या का 22.58 प्रतिशत है। महाराष्ट्र में मलिन बस्तियों की जनसंख्या 1.064 करोड़ है। राज्यों की कुल नगरीय जनसंख्या और मलिन बस्तियों की जनसंख्या के अनुपात में काफी अंतर पाया जाता है। केरल में सबसे कम 1.81 प्रतिशत तथा मेघालय में सबसे अधिक 41.33 प्रतिशत है और 14.1 प्रतिशत राष्ट्रीय औसत है। दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में मलिन बस्तियों की जनसंख्या का अनुपात सबसे अधिक बृहत्तर मुंबई में 48.88 प्रतिशत और सबसे कम पटना में 0.25 प्रतिशत है। बृहत्तर मुंबई की मलिन बस्तियों में महाराष्ट्र की 6 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। अधिकतर नगरीय समस्याएं इन्हीं मलिन बस्तियों से संबंधित होती हैं।

कस्बों और नगरों का वितरण

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत के उत्तरी मैदानों में सबसे अधिक नगर थे, पश्चिमी और पूर्वी तट के प्राचीन पत्तनों के निकट भी नगर स्थित थे। भारत के मध्यवर्ती और दक्षिणी पठारों की विस्तृत भूमि पर नगर अपेक्षाकृत कम और दूर-दूर स्थित थे। ये कस्बे और नगर, विशेष रूप से देश के आंतरिक भागों में, प्रायः प्रशासनिक मुख्यालय, केंद्रीय स्थानों पर व्यापारिक केंद्र या धार्मिक महत्व के स्थान थे। मध्यकाल के मुस्लिम शासन काल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए। केवल कुछ नगरों के नाम बदले गए या इनमें कुछ इस्लाम धर्म से संबंधित इमारतें बना दी गईं। लेकिन आधुनिक काल में कस्बों और नगरों के प्रतिरूप में काफी परिवर्तन आया है। निम्नलिखित क्षेत्रों में कस्बों और नगरों की संख्या अधिक तथा आकार बड़ा है।

पंजाब-हरियाणा-गंगा का ऊपरी मैदान : उत्तर भारत के मैदानों, विशेषरूप से इसके पश्चिमी भाग में, विभिन्न आकार के कस्बों और नगरों की संख्या अधिक है। दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की एक शृंखला उत्तर-पश्चिम में अमृतसर से लेकर पूर्व में वाराणसी तक फैली है (चित्र 6.2)।

कोलकाता-रांची पट्टी : दक्षिण पश्चिम बंगाल के निकटवर्ती झारखंड और उड़ीसा के उत्तरी भाग में भारत की खनिज संपदा के भंडार हैं। इसे भारत का रुर बेसिन कहना सर्वथा उचित है। इस खनिज बहुल क्षेत्र का प्रमुख केंद्र कोलकाता तथा इसकी पत्तन सेवाएं हैं। इस पट्टी में कोलकाता के अतिरिक्त अन्य नगर हैं : आसनसोल, धनबाद और जमशेदपुर।

मुंबई-गुजरात प्रदेश : बड़े नगरों और कस्बों का दूसरा संकेंद्रण गुजरात में है। यहां चार महानगर-राजकोट, अहमदाबाद, वडोदरा और सूरत हैं। ये सभी अपने नगरीय तंत्र के केंद्र बिंदु हैं। इस क्षेत्र के अधिकतर नगरों का उदय औद्योगिक विकास, विशेष रूप से पैट्रोलियम पर आधारित उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप हुआ है। उत्तर-पश्चिम महाराष्ट्र की नगरीय पट्टी मुंबई से लेकर दक्षिण पूर्व में पुणे तक तथा मुंबई-दिल्ली रेल मार्ग के साथ-साथ विस्तृत है।

केरल तट : केरल के तट पर माहे से लेकर कन्याकुमारी तक नगरों की एक लगभग निरंतर पट्टी है। कोच्चि अब महानगर बन गया है। इस पट्टी का अन्य महत्त्वपूर्ण नगर तिरुवनंतपुरम् है।

तमिलनाडु-दक्षिण कर्नाटक पट्टी : चेन्नई और बंगलौर नगरीय-औद्योगिक विकास का एक अन्य गलियारा है। ये दोनों ही बृहत् नगर हैं। आंतरिक क्षेत्र में कोयम्बटूर, तिरुचिरापल्ली, मदुरै, सेलम और पांडिचेरी प्रमुख औद्योगिक-नगरीय क्षेत्र हैं। दक्षिणी कर्नाटक पठार और तमिलनाडु की उच्च भूमि पर विभिन्न आकार के अनेक कस्बे हैं।

ऊपरी कृष्णा द्रोणी : दक्षिण पश्चिम महाराष्ट्र में सतारा से लेकर कर्नाटक के शिमोगा तक पश्चिम घाट के समांतर कस्बों और नगरों की एक अविच्छिन्न पट्टी है। खनिज भंडारों और जल विद्युत विकास ने इस पट्टी के औद्योगीकरण और नगरीकरण में बहुत सहायता की है।

कृष्णा-गोदावरी डेल्टा : पूर्वी तट पर कृष्णा-गोदावरी डेल्टा तथा उसकी निकटवर्ती निम्न भूमियों में कस्बों और नगरों का एक उल्लेखनीय क्षेत्र है। यह तट से अंदर की ओर विजयवाड़ा, वारंगल और हैदराबाद तक विस्तृत है। इसका विस्तार उत्तरी आंध्र प्रदेश के तटीय मैदान में विशाखापत्तनम् तक है।

उत्तरी महाराष्ट्र : मुंबई-कोलकाता के मुख्य मार्ग के सहारे भी नगरों का उल्लेखनीय विकास हुआ है। यह मार्ग विदर्भ के कपास-संपन्न क्षेत्र से होकर गुजरता है तथा पूर्व में और आगे छत्तीसगढ़ के खनिज सम्पन्न क्षेत्र से होता हुआ भारत के रूर बेसिन तक चला गया है। इस क्षेत्र के अनेक नगरों

में नागपुर सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। रायपुर, भिलाई नगर-दुर्ग और बिलासपुर अन्य महत्वपूर्ण नगर हैं।

कस्बों और नगरों का प्रकार्यात्मक वर्गीकरण

अपनी केंद्रीय स्थिति की भूमिका के अलावा अनेक कस्बे और नगर अपने आकार की तुलना में अधिक विशिष्ट सेवाएं प्रदान करते हैं। कुछ कस्बों और नगरों ने कुछ निश्चित प्रकार्यों में विशिष्टता प्राप्त कर ली है। ये नगर अपने निश्चित विशिष्ट क्रियाकलापों, उत्पादों अथवा सेवाओं के लिए जाने जाते हैं। यह विशिष्टता इन कस्बों और नगरों में उपलब्ध स्थानीय संसाधनों के कारण या उनकी विशिष्ट स्थिति के कारण विकसित हुई है। ऐसे स्थानों से जुड़े सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और पारंपरिक मूल्यों ने ही इन्हें विशिष्टता प्रदान की है। उदाहरण के लिए, पत्तन नगर मुख्य रूप से वस्तुओं के विदेशी व्यापार और संबंधित क्रियाकलापों में लिप्त रहते हैं। कुछ नगर परिवहन नगरों के रूप में ही कार्य करते हैं। मध्य प्रदेश के इटारसी, बीना, कटनी तथा उत्तर प्रदेश के मुगलसराय और टुंडला रेल जंक्शनों के रूप में कार्य करते हैं। उसी प्रकार धूलिया (महाराष्ट्र) और आगरा (उत्तर प्रदेश) सड़क महामार्गों के केंद्र हैं। कुछ नगर विशिष्ट निर्माण उद्योगों के लिए तथा कुछ नगर धार्मिक महत्व के कारण प्रसिद्ध हो गए हैं।

यद्यपि प्रत्येक नगर अनेक प्रकार के कार्य करता है, लेकिन प्रमुख या विशिष्ट प्रकार्यों के आधार पर भारत के नगरों और कस्बों को निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है :

प्रशासनिक कस्बे और नगर : प्रमुख प्रशासनिक मुख्यालय के रूप में विकसित नगरों को प्रशासनिक नगर कहा जाता है। चंडीगढ़, नई दिल्ली, भोपाल, शिलांग आदि ऐसे नगरों के उदाहरण हैं।

औद्योगिक नगर : उद्योग ही ऐसे नगरों की प्रेरक शक्ति होते हैं; जैसे–मुंबई, सेलम, कोयंबटूर, मोदी नगर, जमशेदपुर, हुगली, भिलाई आदि।

परिवहन नगर : ये नगर मुख्य रूप से आयात और निर्यात की गतिविधियों में लिप्त पत्तन हो सकते हैं; जैसे–कांडला, कोच्चि, कालीकट, विशाखापत्तनम् आदि। कुछ आंतरिक परिवहन के केंद्र हो सकते हैं; जैसे–आगरा, धूलिया, मुगलसराय, इटारसी, कटनी आदि।

व्यापारिक नगर : व्यापार में विशिष्टता प्राप्त करने वाले कस्बे और नगर इसी वर्ग में शामिल किए जाते हैं; जैसे–कोलकाता, सहारनपुर, सतना आदि।

खनन-नगर : रानीगंज, झरिया, डिगबोई, अंकलेश्वर, सिंगरौली आदि।

छावनी नगर : अंबाला, जालंधर, महू, बबीना, मेरठ कैंट, आदि।

शैक्षिक नगर : रुड़की, वाराणसी, अलीगढ़, पिलानी आदि।

धार्मिक और सांस्कृतिक नगर : वाराणसी, मथुरा, अमृतसर, मदुरै, तिरुपति आदि।

पर्यटन नगर : नैनीताल, मसूरी, शिमला, पंचमढ़ी, उडगमंडलम् (ऊटी), माउंट आबू आदि।

विशिष्टीकृत नगर भी महानगरों के रूप में विकसित होने के बाद बहुप्रकार्यात्मक बन जाते हैं। तब इनमें उद्योग, व्यापार, प्रशासन और परिवहन आदि प्रकार्य प्रमुख हो जाते हैं।

प्रकार्यात्मक क्षेत्र

प्रत्येक मध्यम और बड़े आकार के नगरों में विशिष्ट क्षेत्र होते है। ये क्षेत्र व्यापार, उद्योग, प्रशासन, संस्थागत, परिवहन, आवास जैसी विविध गतिविधियों के केंद्र बन जाते हैं। व्यापारिक क्षेत्र प्रायः नगर का केंद्र बिंदु होता है। भूमि की ऊंची कीमतों के कारण यह घना बसा भीड़-भाड़ वाला और तंग गलियों वाला हो जाता है। इसे मध्यवर्ती व्यापारिक क्षेत्र (सी.बी.डी.) कहते हैं। व्यापारिक गतिविधियों के दौरान यहां बहुत भीड़ रहती है। इसीलिए इसे नगर की हृदय स्थली कहते हैं। खुले स्थान जैसे–पार्क, खेल के मैदान आदि आवासीय क्षेत्रों, औद्योगिक क्षेत्रों या विपणन केंद्रों में पाए जाते हैं। औद्योगिक क्षेत्र प्रायः कुछ दूरी पर होते हैं तथा जल की आपूर्ति का स्रोत इनकी अवस्थिति में मुख्य कारक होता है। थोक व्यापार के क्षेत्र, परिवहन क्षेत्र तथा प्रशासनिक क्षेत्र संस्थागत क्षेत्रों की स्थिति भी कुछ अलग-थलग होती है। पुराने आवासीय मध्यवर्ती क्षेत्र व्यापार क्षेत्र के निकट होते हैं। लेकिन नए आवासीय क्षेत्र नगर के विभिन्न क्षेत्रों में फैले होते हैं। इस प्रकार प्रकार्यात्मक पृथक्करण तथा परिणामस्वरूप विकसित प्रकार्यात्मक क्षेत्र नगरों की विशेषता होती है। आजकल मुख्य नगर से कुछ दूरी पर, बाहर या एकाकी क्षेत्रों में उपनगरों का विकास

हो जाता है। ये उपनगर प्रकार्यात्मक दृष्टि से मुख्य नगर से जुड़े होते हैं। ऐसे विस्तारित नगर बहुकेंद्रीय बन जाते हैं। ऐसे केंद्रीय नगरों में प्रकार्यात्मक क्षेत्रों का विकास मध्यवर्ती व्यापार क्षेत्रों के चारों ओर वृत्ताकार रूप में हो जाता है लेकिन बाद में कार्यालय क्षेत्रों के मुख्य मार्गों के साथ-साथ होने से इनका आकार ताराकृत या खंडों में विभाजित नगर का रूप ले लेता है।

भारतीय नगर : प्रमुख विशेषताएं

भारतीय नगरों की विशेषताएं निम्नलिखित हैं :

1. अधिकतर कस्बे और नगर बड़े गांव के विस्तृत रूप हैं। इनकी गलियों में गांव का स्वरूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।
2. अपनी आदतों और व्यवहार में लोग अधिक ग्रामीण हैं जो उनके सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण, मकानों की बनावट और अन्य पक्षों में स्पष्ट दिखाई देता है।
3. अधिकतर नगरों में अनेक मलिन बस्तियां हैं। ये प्रवास के प्रतिकर्ष कारकों का परिणाम है। इसमें आर्थिक अवसरों का योगदान कम है।
4. अनेक नगरों में पूर्व शासकों और प्राचीन प्रकार्यों के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।
5. प्रकार्यात्मक पृथक्करण स्पष्ट तथा प्रारंभिक है। भारतीय नगरों की पश्चिमी देशों के नगरों के साथ इस संदर्भ में कोई तुलना नहीं की जा सकती।
6. जनसंख्या का सामाजिक पृथक्करण, जाति, धर्म, आय अथवा व्यवसाय के आधार पर किया जाता है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :

   (i) कस्बा किसे कहते हैं?
   (ii) जनगणना नगर क्या हैं?
   (iii) दो प्राचीन नगरों के नाम बताइए।
   (iv) दो मध्यकालीन नगरों के नाम बताइए।
   (v) नगर किसे कहते हैं?
   (vi) जनसंख्या के आधार पर नगरों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता है?
   (vii) किस वर्ग के नगरों में भारत की जनसंख्या का सबसे अधिक प्रतिशत निवास करता है?
   (viii) भारत में कितने महानगर हैं?

2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :

   (i) महानगर (ii) मलिन बस्तियां (झुग्गी-झोपड़ियां) (iii) मध्यवर्ती व्यापार क्षेत्र (सी.बी.डी.) (iv) प्रकार्यात्मक क्षेत्र।

3. भारत में कस्बों और नगरों के वितरण का वर्णन कीजिए।
4. प्रकार्यों के आधार पर नगरों का वर्गीकरण कीजिए।
5. भारत के नगरों की प्रमुख विशेषताओं का विवरण लिखिए।

परियोजना कार्य

6. अपने क्षेत्र के कस्बे या नगर का निरीक्षण कीजिए तथा उसके मध्यवर्ती व्यापार क्षेत्र (सी.बी.डी.) पहचान कर, इसके बारे में एक संक्षिप्त विवरण तैयार कीजिए।

7 अध्याय

प्राकृतिक संसाधन : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

"संसाधन सुरक्षा और अपार संपदा दोनों के ही आधार हैं; वे शक्ति और संपदा के भी मूल हैं।" जिमरमैन की यह उक्ति मानव के लिए संसाधनों के आर्थिक महत्व को अभिव्यक्त करती है। विकास की प्रत्येक अवस्था में संसाधनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके बिना मानव जीवन असंभव हो जाएगा। भूमि, जल और वायु के बिना हम खेती नहीं कर सकते और बिना खनिजों के उद्योग नहीं चला सकते हैं। इस प्रकार विकास और संसाधन एक-दूसरे पर आश्रित हैं।

प्राकृतिक संसाधन मानव की तीन तरह से सहायता करते हैं। एक तो ये विकास के लिए पदार्थ, ऊर्जा और अनुकूल दशाएं प्रदान करते हैं। दूसरे, इनसे पर्यावरण का निर्माण होता है, जिसमें मनुष्य तथा अन्य जीव रहते हैं। वायु, जल, वन और विविध प्रकार के जीव, मनुष्य के जीवन के लिए अनिवार्य हैं। तीसरे, संसाधन विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ समाप्य तथा कुछ असमाप्य हैं तथा कुछ नवीकरणीय और अनवीकरणीय हैं।

भूमि, जल, वायु के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता। प्रारंभ में मानव संसाधनों का संग्राहक मात्र था, क्योंकि तब संसाधनों की बहुलता थी और उसकी आवश्यकताएं कम थीं। मनुष्य प्रकृति का अंग था और तब संसाधनों पर मानव का प्रभाव बहुत ही कम पड़ता था। जैसे-जैसे मानव संख्या में बढ़ोत्तरी हुई, उन्हें उन्नत किस्म के औज़ार तथा तकनीक मिल गई। संसाधनों का शोषण बढ़ने लगा। अब मानव प्रकृति का शोषक बन गया। आज हम जितनी भी समस्याओं का सामना कर रहे हैं, उनमें से अधिकतर संसाधनों के अवैज्ञानिक उपयोग का ही परिणाम है।

संसाधन की संकल्पना

संसाधनों की प्रायः पहचान मूर्तरूप में विद्यमान प्राकृतिक पदार्थों के रूप में की जाती है। संसाधन जैव-भौतिक पर्यावरण के तत्त्व हैं, लेकिन वे तब तक निष्क्रिय रहते हैं, जब तक मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उनकी उपयोगिता का ज्ञान नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए कोयला सदैव विद्यमान था, लेकिन यह संसाधन तभी बना जब मानव ने ऊर्जा के स्रोत के रूप में इसका उपयोग करना प्रारंभ किया। पर्यावरण के समग्र पदार्थों के घटक प्राकृतिक संसाधन हैं। इनमें जैव और अजैव दोनों ही प्रकार के पदार्थ सम्मिलित हैं।

प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद पृथ्वी के पदार्थों और ऊर्जा के विशाल भंडार में से बहुत कम भाग ही मनुष्य के लिए उपयोगी हो सका है, क्योंकि ये या तो पूरी तरह से अगम्य हैं या ऐसे रूप में हैं कि उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। प्रकृति के भंडार का केवल वही भाग संसाधन बनता है, जो मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार संसाधनों की यह परिभाषा दी जा सकती है कि प्राकृतिक भंडार का वह अंश संसाधन है, जिसका विशिष्ट तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक दशाओं में उपयोग किया जा सकता है। वास्तव में संसाधन हमारे समाज के अपने अथक प्रयासों की देन हैं। ये कच्चे माल तथा नए उपयोगों की खोज के द्वारा प्राप्त किए गए हैं। इन प्रयासों की अधिक गहनता के कारण ही संसाधनों की सूची निरंतर बदलती रही है। इसमें नए तत्त्व जोड़े जाते रहे हैं और कुछ निरस्त किए गए हैं। इस प्रकार संसाधन मानव संस्कृति और भौतिक पर्यावरण की अंतर्क्रियाओं के द्वारा ही बनाए जाते हैं (चित्र 7.1)।

संसाधनों का वर्गीकरण

विषयवस्तु के आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : प्राकृतिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक संसाधन।

प्राकृतिक संसाधन : मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ जैव भौतिकी पर्यावरण के तत्त्वों को
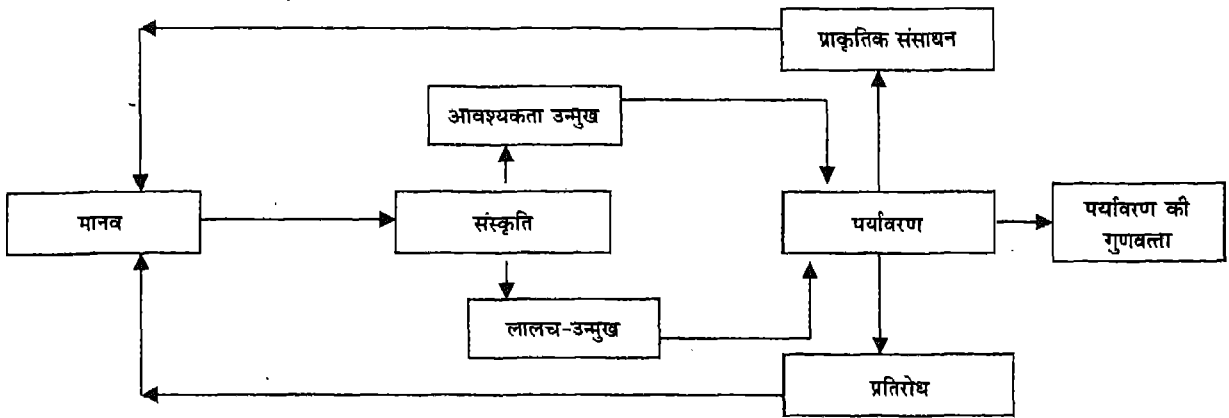
चित्र 7.1 मानव, संस्कृति और पर्यावरण में अंतर्क्रिया (जिमरमैन के अनुसार)

प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। "आर्थिक तंत्र के बाहर से प्राप्त होने वाले जैव और अजैव पदार्थ ही प्राकृतिक संसाधन हैं, जिन्हें मानव अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कच्चे माल के रूप में उपयोग करता है।" प्राकृतिक संसाधनों को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है–"वस्तुओं के उत्पादन और उपयोग के कारकों के रूप में आसानी से उपयोग के योग्य प्रकृति के लक्षण और उत्पाद प्राकृतिक संसाधन हैं।"

प्राकृतिक संसाधनों में भौतिक लक्षण जैसे–भूमि, जलवायु, जल, मृदा, खनिज तथा जैविक पदार्थ; जैसे–वनस्पति, वन्य जीव और मत्स्य क्षेत्र शामिल हैं।

मानवीय संसाधन : लोगों की संख्या और गुणवत्ता मानव संसाधनों का निर्माण करते हैं। लोगों की एक निर्धारित संख्या और गुणवत्ता के घटने पर विकास की गति धीमी भी पड़ जाती है। निरक्षर और कुपोषित जनसंख्या तथा विरल जनसंख्या से विकास के मार्ग में बाधाएं खड़ी हो जाती हैं।

सिद्धांतत: मनुष्यों को एक संसाधन नहीं मानना चाहिए। वे तो स्वयं उद्देश्य लक्ष्य हैं। जिनके चारों और विकास के कार्य चलते रहते हैं।

सांस्कृतिक संसाधन : प्राकृतिक संसाधन तब तक संसाधन नहीं बनते, जब तक मानव उन्हें संसाधनों के रूप में नहीं पहचानते। प्राकृतिक परिघटनाओं का संसाधनों के रूप में ज्ञान, सांस्कृतिक विरासत जैसे–ज्ञान, अनुभव, कौशल, संगठन, प्रौद्योगिकी आदि पर निर्भर करता है। इस प्रकार संसाधनों की एक सांस्कृतिक संकल्पना भी है, मनुष्यों की आवश्यकता और योग्यताओं के अनुसार संसाधनों का विस्तार और संकुचन होता है। ये विशेषताएं और क्षमताएं संस्कृति के द्वारा प्रभावित होती हैं। संस्कृति सभी ज्ञान और वस्तुओं का योग है, जिन्हें मनुष्य ने अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए उत्पन्न किया है। काफी सीमा तक शोषणीयता वैज्ञानिक खोजों और प्रौद्योगिकीय आविष्कारों पर निर्भर करती है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्कृति के उत्पाद हैं। संस्कृति की उपलब्धता, नवीकरणीयता और विशेषताओं का विस्तार संसाधनों के आपूर्ति-आधार को व्यापक बना रहा है (चित्र 7.2)।
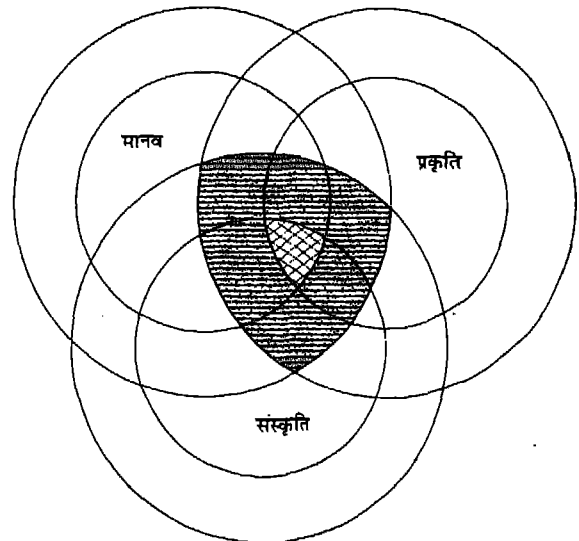
चित्र 7.2 निम्न और उच्च स्तरीय संस्कृति में अक्षय निधि संसाधन

सांस्कृतिक कारक संसाधन को एक अन्य तरीके से भी प्रभावित करते हैं। कुछ संस्कृतियों में पारितंत्रीय सीमाओं में संसाधनों के उपयोग की एक अंतर्निहित व्यवस्था होती है, जिसमें प्रकृति को अपनी हानि को फिर से पूरा करने का समय मिल जाता है। भारतीय संस्कृति इसी वर्ग में आती है। अनेक संस्कृतियां प्राकृतिक परिघटनाओं को जैविक न मानकर भौतिक मानती है और इसका शोषण इस सीमा तक करती है कि उनकी पुनः पूर्ति नहीं हो सकती। आधुनिक यूरोपीय संस्कृति इसी वर्ग की देन है। पहले प्रकार की संस्कृति पारितंत्र के संतुलन को बनाए रखती है तथा संसाधनों का संरक्षण करती है। इसके विपरीत दूसरे वर्ग की संस्कृति पारितंत्रीय संतुलन को बिगाड़ देती है और कभी-कभी संसाधनों का शोषण इस सीमा तक करती है कि स्वयं मनुष्य का जीवन और विकास ही दांव पर लग जाते हैं।

स्थायित्व (टिकाऊपन) के आधार पर वर्गीकरण

नवीकरण या पुनरुत्पादन की क्षमता के अनुसार भी प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण कर सकते हैं। **नवीकरणीय संसाधन** प्राकृतिक रूप से अपना पुनरुत्पादन कर लेते हैं, यदि उनका संपूर्ण रूप से विनाश न किया गया हो। वन और मछलियां इनके उदाहरण हैं। लेकिन **अनवीकरणीय संसाधनों** में स्वयं पुनरुत्पादन की क्षमता नहीं होती। इसके उपलब्ध भंडार निश्चित होते हैं। जीवाश्म ईंधन अन्य खनिज आदि अनवीकरणीय संसाधनों के उदाहरण हैं। इन दो बड़े वर्गों को अर्थात् नवीकरणीय और अनवीकरणीय संसाधनों को प्रवाह और संसाधन या असमाप्य और समाप्य संसाधन या आपूर्ति और अनापूर्ति संसाधन भी कहा जाता है।

कुछ नवीकरणीय संसाधन तभी तक नवीकरणीय हैं, जब तक उनका उपयोग प्रकृति द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंदर विवेकपूर्ण ढंग से किया जाता है। उदाहरण के लिए भूमि जल तभी तक नवीकरणीय है, जब तक इसका उपयोग पुनर्भरण सीमा से अधिक नहीं होता। इसी प्रकार वन भी नवीकरणीय हैं, यदि इसे उखाड़ा न गया हो और पुनः उगने दिया जाए। अतिशोषण से मछलियां नदियों और झीलों से ही नहीं, अपितु कुछ महासागरीय क्षेत्रों से भी नष्ट हो गई हैं। लेकिन कुछ नवीकरणीय संसाधन ऐसे भी हैं जो क्रियाकलापों से निरपेक्ष रहते हुए सतत उपलब्ध हैं। सौर तथा ज्वारीय ऊर्जा ऐसे ही संसाधन हैं।

यही नहीं, नवीकरणीय संसाधनों का तंत्र जटिल और गत्यात्मक होता है। इस तंत्र के घटक परस्पर क्रिया करते हैं। किसी एक संसाधन का उपयोग दूसरे को प्रभावित कर सकता है। इन संसाधनों का स्वरूप जाल जैसा होता है। अतः इनका विकास समन्वित विधि से नियोजित होना चाहिए न कि अकेले किसी एक संसाधन का।
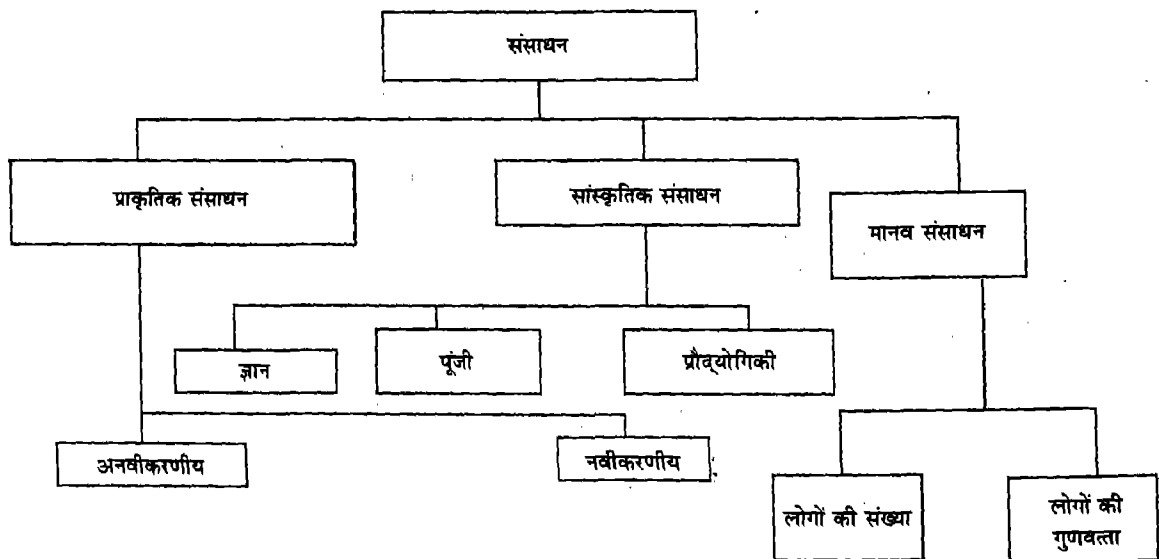
चित्र 7.3 संसाधनों का वर्गीकरण (बी. गोडाल के अनुसार 1987)

संरक्षण के आधार पर वर्गीकरण

संरक्षणीय कार्यनीति को ध्यान में रखते हुए रैनर (1951) ने निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया :

असमाप्य और अपरिवर्तनीय संसाधन : इनमें महासागरीय जल, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जलवायु, मृत्तिका, वायु आदि शामिल हैं।

असमाप्य परन्तु दुष्प्रयोजनीय संसाधन : अविवेकपूर्ण उपयोग से ऐसे संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता घट जाती है। इनमें भूमि, वन्य जीव, जल संसाधन आदि सम्मिलित हैं।

संपोषणीय और नवीकरणीय संसाधन : इन संसाधनों की नवीकरणीयता इनके उपयोग की विधि पर निर्भर करती है। इनमें इमारती लकड़ी, मानव संख्या, भूमि की उर्वरता, भौम जल आदि शामिल हैं।

संपोषणीय लेकिन अनवीकरणीय संसाधन : अत्यधिक शोषण के बाद ऐसे संसाधनों का नवीकरण नहीं हो सकता। इनमें मृदा के भौतिक पदार्थ, मानव प्रतिभा और प्रज्ञा, अनेक प्रकार की मछलियां, वृक्ष आदि शामिल हैं।

समाप्य लेकिन पुनः उपयोग के योग्य संसाधन : जिन खनिजों का उपयोग बार-बार किया जा सकता है, उन्हें इस वर्ग में रखा गया है। ये हैं : रत्न (मणि), खनिज जैसे लोहा, टिन, तांबा, सोना और चांदी।

समाप्य पर एक बार उपयोग के योग्य संसाधन : कोयला, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और अधात्विक खनिज पहली बार उपयोग के बाद ही समाप्त हो जाते हैं।

संसाधन विकास और उपयोग

लोग अपनी मांगों को संतुष्ट करने के लिए अपने जैव-भौतिक पर्यावरण का उपयोग करते आ रहे हैं। इस प्रक्रिया को "संसाधन उपयोग" कहते हैं। जैसे-जैसे संस्कृति विकसित होती जाती है नए-नए संसाधनों की खोज होती जाती है। यही नहीं उनके उपयोग के बेहतर तरीके भी ढूंढ़ लिए जाते हैं। इसे ही संसाधन विकास कहते हैं। इस प्रकार संसाधन उपयोग का अर्थ है– मानवीय आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए 'उदासीन उपादानों' का वस्तुओं और सेवाओं के रूप में परिवर्तन करके प्राकृतिक संसाधनों के रूप में उपयोग करना। संसाधन विकास पर तीन प्रकार के दबाव होते हैं :

1. पारिस्थितिकीय, 2. सांस्कृतिक, और 3. आर्थिक परिप्रेक्ष्य।

किसी निश्चित पर्यावरण में कुछ संसाधनों का उपयोग नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए अंटार्कटिक महाद्वीप के कोयला के भंडार संस्कृति के प्रतिबंधों, विशेष रूप से प्रौद्योगिकी की कमी के कारण कुछ संसाधनों का उपयोग नहीं किया जा सकता। यही नहीं
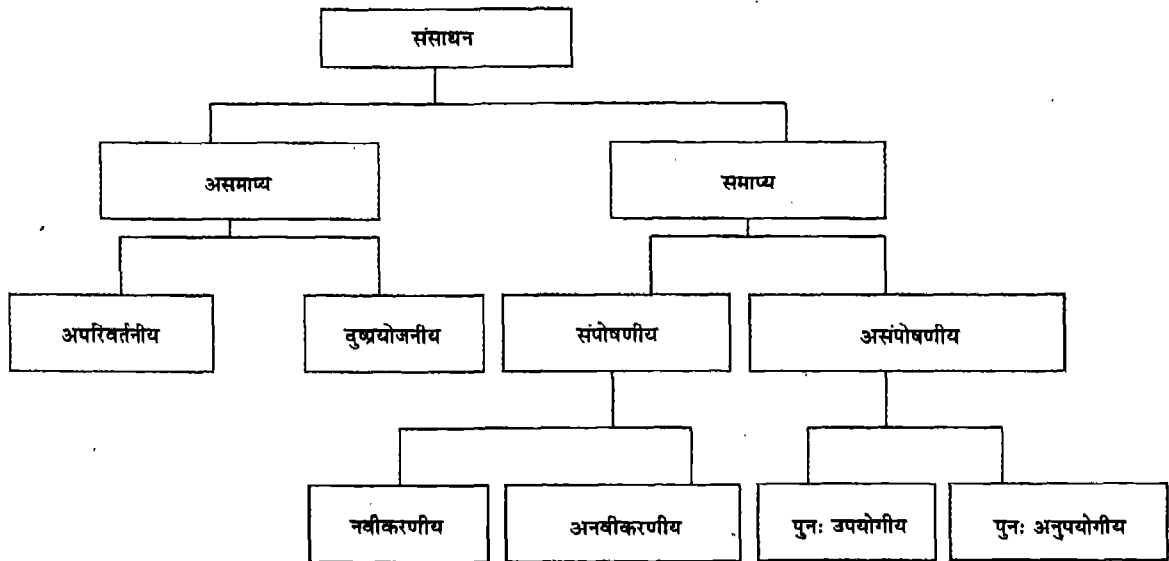
चित्र 7.4 रैनर (1951) के अनुसार संसाधनों का वर्गीकरण

उपयोग के योग्य संसाधनों में से भी केवल कुछ ही आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होते हैं।

अब हम संसाधनों के विकास की समस्या पर व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार कर सकते हैं। ये परिप्रेक्ष्य हैं : जैव-भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी, संस्थागत और प्रौद्योगिकीय। संसाधनों के मूल्य-निर्धारण विकास और उपयोग पर इन सभी परिप्रेक्ष्यों में विचार और विश्लेषण किया जाना चाहिए।

संसाधन विकास के लिए नियोजन

संसाधन विकास के लिए तीन घटक वाले सुव्यवस्थित नियोजन की आवश्यकता होती है :

संसाधनों की सूची : इसमें प्राकृतिक संसाधनों का सर्वेक्षण, मानचित्रण और उनकी विशेषताओं तथा गुणों का मापन शामिल होता है। संसाधन विकास के नियोजन के लिए उनकी सूची बनाने के कई लाभ हैं। प्राकृतिक संसाधनों के भावी आबंटन का निर्णय लेने से पूर्व उनकी मात्रा, गुणवत्ता, तथा वितरण की जानकारी के साथ-साथ उनके वर्तमान उपयोग की दशा का ज्ञान होना भी जरूरी है। इस प्रकार की एकत्रित की गई सूचनाओं का उपयोग नियोजन में किया जाता है।

मूल्यांकन : इस घटक में संसाधनों के सर्वेक्षण की सूचना को विकास की संभावनाओं को निर्धारित करने के लिए प्रौद्योगिकी, अर्थव्यवस्था, पारितंत्र और समाज की छोटी तथा लंबी अवधि की नीतियों और उलझनों की दृष्टि से जांचा-परखा जाता है।

विकास : तीसरा घटक वास्तविक नियोजन से संबंधित है। यह संभावना को यथार्थ और वास्तविक उपयोग में बदलने के लिए आवश्यक है।

संसाधनों के आबंटन और विकास का उद्देश्य संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग होना चाहिए। यही नहीं इससे समाज को अधिकतम लाभ तथा पारितंत्र को न्यूनतम हानि होती हो। परंतु जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में विकास की व्यक्तिगत प्राथमिकताएं, विकास की संपूर्ण प्रक्रिया को नियंत्रित करती हैं। संसाधनों का उत्पादन समाज की अधिकतम भलाई के स्थान पर अधिकतम वस्तुओं के उत्पादन और अधिकाधिक राजस्व प्राप्ति के लिए किया जाता है। पर्यावरण के विघटन और भावी अभाव का ध्यान दिए बिना विगत कुछ वर्षों में संसाधनों का दोहन असाधारण रूप से बढ़ गया है। संसाधन विकास परियोजना के लाभ लागत विश्लेषण के समय उत्पादन की केवल वास्तविक लागत का ही विश्लेषण किया जाता है। जबकि इसमें वास्तविक तथा पर्यावरणीय पुनर्रचना के लिए अप्रत्यक्ष रूप से देय अवास्तविक लागत को भी शामिल करना चाहिए।

संसाधन और आर्थिक विकास

आर्थिक विकास एक बड़ी ही जटिल प्रक्रिया है। यह अनेक कारकों पर निर्भर करती है, और प्राकृतिक संसाधन उनमें से एक है। जैसी कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि संभावित संसाधनों और आर्थिक विकास के मध्य संबंध इतने सरल नहीं हैं। पूरे संसार में पाई जाने वाली तीन परिस्थितियों से इस बात का बल मिलता है।

1. अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अधिकतर देशों और भारत में भी संसाधनों के विशाल भंडारों के होते हुए भी आर्थिक विकास कम है।
2. प्राकृतिक संसाधनों में संपन्न न होते हुए भी जापान, यूनाइटेड किंगडम और स्विटज़रलैंड अत्यधिक विकसित हैं।
3. संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस (रूसी संघ) और दक्षिण अफ्रीका आदि देश संसाधनों में संपन्नता तथा अत्यधिक विकसित अर्थव्यवस्था के उदाहरण हैं।

आर्थिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता का बहुत महत्व होता है। यह कहा जा सकता है कि आर्थिक क्रियाकलापों का प्रारंभ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से ही होता है। अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि संसाधनों का दोहन और निर्यात आर्थिक विकास के अनिवार्य कारक हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विकास के लिए संसाधन अनिवार्य हैं, लेकिन केवल उनकी विद्यमानता ही विकास की गारंटी नहीं है। संपन्न प्रदेश और देश बाहर से संसाधनों का आयात करने में समर्थ होते हैं। इस दृष्टि से संसाधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : हस्तांतरणीय और अहस्तांतरणीय। केवल अहस्तांतरणीय संसाधनों जैसे भूमि का उपभोग प्रदेश के विकास के लिए वहीं किया जाता है जिस प्रदेश में वे पाए

जाते हैं। इसीलिए कृषि का सफल विकास अच्छी और बहुत अच्छी भूमि वाले प्रदेशों में ही हुआ है। इसके विपरीत हस्तांतरणीय संसाधनों; जैसे–खनिज, वनोत्पाद आदि का दोहन होने के बाद औद्योगिक प्रसंस्करण और अंतिम उपयोग के लिए प्रायः निर्यात कर दिया जाता है।

प्राकृतिक संसाधन ऐसी सपत्ति हैं, जिसके दोहरे उपयोग हैं। ये विकास के लिए कच्चा माल और ऊर्जा प्रदान करते हैं। ये पर्यावरण के अंग भी हैं, जो स्वास्थ्य और जीवनशक्ति पर भी प्रभाव डालते हैं। इसीलिए मानव जीवन और विकास के संसाधनों का बुद्धिमत्ता पूर्ण उपयोग अनिवार्य है। इसके लिए सतत पोषणीय विकास की आवश्यकता है, जिसके महत्व को गांधी जी ने सन् 1908 से बताना शुरू कर दिया था।

सतत पोषणीय विकास का तात्पर्य विकास की उस प्रक्रिया से है, जिसमें पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाए रखा जाता है, कि समाप्य संसाधनों का उपयोग इस तरह से किया जाए कि सभी प्रकार की संपदा (पर्यावरणीय संपदा समेत) के कुल भंडार कभी भी खाली नहीं होने पाएं। विकास के अनेक रूप, पर्यावरण के उन्हीं संसाधनों का ह्रास कर देते हैं, जिन पर वे आश्रित होते हैं। इससे वर्तमान आर्थिक विकास धीमा हो जाता है तथा भविष्य की संभावनाएं काफी हद तक घट जाती हैं। अतः सतत पोषणीय विकास में पारितंत्र के स्थायित्व को सदैव ध्यान में रखना पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखकर प्रकृति के संरक्षण के अंतर्राष्ट्रीय संघ ने सतत पोषणीय विकास इस प्रकार परिभाषित किया है : पालन-पोषण करने वाले पारितंत्र की निर्वाह क्षमता के अनुसार जीवनयापन करते हुए मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार ही सतत पोषणीय विकास है। इस प्रकार प्रश्न केवल जीवन की सतत पोषणीयता का ही नहीं है, अपितु जीवन की अच्छी गुणवत्ता भी जरूरी है।

संसाधनों का संरक्षण और प्रबंधन

"संरक्षण का अर्थ है, मितव्ययिता और बिना बर्बादी के उपयोग।" संरक्षण एक दर्शन है, जो लोगों को संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के लिए तथा उनके अत्यधिक उपयोग, दुरुपयोग और असामयिक उपयोग को छोड़ने के लिए प्रेरित करता है। संरक्षण को संसाधनों के प्रति दायित्वपूर्ण व्यवहार के रूप में देखा जाता है। इसका लंबा इतिहास है तथा यह संकल्पना जड़ नहीं है फिर भी, संरक्षण अनेक अंतर्क्रियात्मक विषयों का सम्मिश्रेण है। इसका उद्देश्य एक ओर तो सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक तंत्रों का नियोजित और मैत्रीपूर्ण मेल है तथा दूसरी ओर प्राकृतिक तंत्रों की।

आजकल 'संसाधन संरक्षण' के स्थान पर ''संसाधन प्रबंधन'' वाक्यांश का प्रयोग किया जाता है। संसाधन प्रबंधन संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल देता है। इसका उद्देश्य वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करना है तथा यह भी ध्यान रखना है कि पारितंत्रीय संतुलन भी बना रहे तथा भावी पीढ़ियों की आवश्यकताएं भी पूरी होती रहें। इसमें विकास के लिए निश्चित दशाओं में संसाधनों के आबंटन संबंधी नीतियां और प्रथाएं शामिल हैं। संसाधन प्रबंधन निर्णय लेने की एक प्रक्रिया है इसमें मनुष्य की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और इच्छाओं को ध्यान में रखकर उसकी कानूनी और प्रशासनिक व्यवस्थाओं के दायरे में स्थान और समय के अनुसार संसाधनों का आबंटन किया जाता है। संसाधन प्रबंधन को न्याय, पसंद और वचनबद्धता को ध्यान में रखकर निर्णय लेने की सोची समझी प्रक्रिया के रूप में देखना चाहिए। इसमें कुछ निश्चित किए गए संसाधन के समूहों से संसाधनों को उत्पादन की अपेक्षा की जाती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विविध प्रकार के प्रबंधीय, तकनीकी और प्रशासनिक विकल्पों का सहारा लिया जाता है। संसाधन प्रबंधन संरक्षण का नया रूप है। यह भावुकता के स्थान पर विवेक, अर्थशास्त्र के बजाय नैतिकता और इंजीनियरी के स्थान पर पारिस्थितिकी पर बल देता है। यही नहीं यह लचीलेपन और पर्यावरणीय आपदाओं को लंबी अवधि के लिए कम करने को महत्त्व देता है तथा लंबे समय तक सामाजिक कल्याण को अधिकतम सीमा तक बढ़ाने पर विशेष ध्यान देता है। इस प्रकार संसाधन प्रबंधन में विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करने के लिए युक्तियों और विधियों के उपयोग की कार्यनीति तैयार की जाती है। यह दिनोंदिन पर्यावरण की गुणवत्ता की रक्षा और संवर्धन के प्रति जागरूक होता जा रहा है। यही नहीं साझी संपदा जैसे वायु, जल और दृश्यभूमियों के सार्वजनिक उपयोग के लिए दिशा-निर्देशों के निर्माण पर भी इसका ध्यान लगा होता है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   (i) मनुष्य कितने प्रकार से अपने पर्यावरण का उपयोग करता है?
   (ii) संसाधन की परिभाषा दीजिए?
   (iii) संसाधन के प्रकार्यात्मक सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
   (iv) जैव-भौतिक पर्यावरण के 'उदासीन उपादान' संसाधन कैसे बन जाते हैं?
   (v) यह कहना कहां तक सही है कि संसाधन केवल प्राकृतिक पदार्थ हैं?
   (vi) क्या संसाधन केवल वास्तविक वस्तुएं हैं? यदि नहीं, तो क्यों?
   (vii) संसाधनों की संकल्पना में आए नवीन परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
   (viii) संसाधन संरक्षण की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।
   (ix) संसाधन प्रबंधन को संरक्षण का नवीन रूप क्यों मानना चाहिए।
2. प्रौद्योगिकीय विकास और संसाधनों की उपलब्धता, शोषणीय और नवीकरणीयता के अंतर्संबंधों को विस्तार से समझाइए। अपने उत्तर की व्याख्या के लिए उपयुक्त उदाहरण दीजिए।
3. सतत पोषणीय विकास की विवेचना कीजिए।
4. भारत में संसाधनों के विकास की सामान्य स्थिति का वर्णन कीजिए।
5. संसाधनों और आर्थिक विकास के अंतर्संबंधों की विवेचना कीजिए।
6. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) मानवीय तथा सांस्कृतिक संसाधन।
   (ii) निधि ऊर्जा संसाधन तथा प्रवाह ऊर्जा संसाधन।
   (iii) संसाधन संरक्षण और संसाधन प्रबंधन।

परियोजना कार्य

7. (i) अपने राज्य या केंद्रशासित प्रदेश के प्राकृतिक संसाधनों की एक सूची तैयार कीजिए।
   (ii) इनके विकास के लिए उपाय सुझाइए।

8 अध्याय

जल संसाधन

मानव सहित जैव संसार के अस्तित्व के लिए जल अनिवार्य है। यह सभी मानवीय क्रियाकलापों के लिए अनिवार्य है तथा इसकी मांग में असाधारण वृद्धि हो रही है। लेकिन उपयोग के योग्य जल की आपूर्ति सीमित है। यही नहीं अत्यधिक उपयोग, प्रदूषण अथवा प्रबंधन में लापरवाही के कारण जल उपयोग के अयोग्य हो सकता है। जल सर्वत्र समान मात्रा में भी उपलब्ध नहीं है। एक स्थान पर जल की अधिकता है, तो दूसरे स्थान पर उसका अभाव। इन परिस्थितियों में जल की मांग और आपूर्ति के साथ-साथ जल संसाधनों के स्रोतों के बीच में समन्वय बनाना अनिवार्य है।

अलवण (ताजे) जल की महत्ता

अलवण जल एक आधारभूत प्राकृतिक संसाधन है। यह मानव, कृषिगत और औद्योगिक क्रियाकलापों के लिए अनिवार्य है। बांधों के पीछे बने जलाशयों में संग्रहित वर्षा जल की आपूर्ति गांवों और नगरों को की जाती है। विशाल नदियों से नहरें निकाल कर शुष्क क्षेत्रों की अत्यंत उपजाऊ मैदानों में सिंचाई की जाती है। जल के अन्य उपयोग हैं–जल विद्युत उत्पादन तथा आंतरिक नौ-परिवहन।

जल के स्रोत

जल के चार प्रमुख स्रोत हैं : पृष्ठीय जल, भौम जल, वायुमंडलीय जल और महासागरी जल। पृथ्वी के धरातल पर जल वर्षण से प्राप्त होता है। वर्षण से प्राप्त संपूर्ण जल का उपयोग नहीं किया जा सकता; क्योंकि इसका बहुत-सा भाग वाष्पीकृत हो जाता है तथा बहुत-सा जल बहकर नदियों, झीलों और तालाबों में चला जाता है। इसे पृष्ठीय जल कहते हैं। इसकी थोड़ी-सी मात्रा मृदा में प्रवेश कर जाती है। इसे भौम जल कहते हैं।

पृष्ठीय जल : यह जल ताल-तलैयों, नदियों, सरिताओं और जलाशयों में पाया जाता है। भारत में नदियां पृष्ठीय जल का प्रमुख स्रोत हैं। के. एल. राव के अनुसार भारत में कम से कम 1.6 कि.मी. की लंबाई वाली 10360 नदियां और सहायक नदियां हैं। ये सारे भारत में फैली हैं। इनका अनुमानित औसत वार्षिक प्रवाह 1869 अरब घन मीटर है लेकिन स्थलाकृतिक, जल विज्ञान संबंधी तथा अन्य बाधाओं के कारण केवल 690 अरब घन मीटर (32 प्रतिशत) पृष्ठीय जल ही उपयोग के लिए उपलब्ध है। कुल पृष्ठीय जल का लगभग 60 प्रतिशत भाग सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों में से होकर बहता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि ब्रह्मपुत्र और गंगा संसार की 10 बड़ी नदियों में से हैं। संसार की बड़ी नदियों में ब्रह्मपुत्र का आठवां तथा गंगा का दसवां स्थान है। भारत की सभी नदियों में बहने वाले जल की मात्रा संसार की सभी नदियों में बहने वाली जल की मात्रा का लगभग 6 प्रतिशत है (सारणी 8.1)।

सारणी 8.1 **— भारत : नदियों की द्रोणियों के अनुसार उपयोग के योग्य पृष्ठीय जल का वितरण**

नदी द्रोणी	वार्षिक प्रवाह (अघमी)	उपयोग योग्य क्षमता (अघमी)	भंडारण जल (अघमी)
1. सिंधु	73	46	14.52
2. गंगा	501	250	37.40
3. ब्रहमपुत्र	537	24	1.09
4. गोदावरी	119	76	17.27
5. कृष्णा	68	58	32.23
6. कावेरी	21	19	7.25
7. पेन्नार	6.8	6.8	2.37
8. महानदी	67	50	8.93
9. ब्राह्मणी	36	18.1	4.29
10. साबरमती	3.8	1.9	1.30
11. माही	11.8	3.1	4.16
12. नर्मदा	41	34.5	3.02
13. तापी	18	14.5	8.68
14. सुवर्ण रेखा	10.8	—	—
योग*	**1869**	**690**	—

अघमी = अरब घन मीटर

* इसमें अन्य नदी द्रोणियां भी सम्मिलित हैं।

भारत में निर्मित तथा निर्माणाधीन जल भंडारण की क्षमता लगभग 147 अरब घन मीटर है। स्वतंत्रता के समय यह मात्र 18 अघमी थी। नदी द्रोणियों में बहने वाले कुल जल का यह केवल 8.47 प्रतिशत है।

भौम जल : अनुमान है कि भारत में कुल आपूरणीय भौम जल क्षमता लगभग 433.9 अरब घन मीटर है। जलोढ़ मृदाओं में जल आसानी से रिस जाता है। भारत के उत्तरी विशाल मैदानों में भौम जल के विकास की संभावनाएं अधिक हैं। अकेले उत्तर प्रदेश में ही भौमगत जल की क्षमता अनुमानतः 19.0 प्रतिशत है। इसका 42 प्रतिशत भाग भारत के विशाल मैदानों के राज्यों में पाया जाता है। इसके विपरीत प्रायद्वीपीय भारत की चट्टानी भूमियों में जल के रिसाब की गति धीमी होती है। अतः यहां भौम जल की संभावित क्षमता कम है। लेकिन अपने विशाल आकार के कारण महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु में भूमिगत जल संसाधनों की संभावित क्षमता बहुत है।

कुल भौम जल के संसाधनों का एक चौथाई भाग घरेलू, औद्योगिक तथा अन्य संबंधित उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है और तीन चौथाई भाग सिंचाई के काम आता है। भारत में भूमिगत जल के कुल उपलब्ध संसाधनों का केवल 37.23 प्रतिशत भाग ही अभी तक विकसित किया जा सका है। भौम जल संसाधनों की कुल संभावित क्षमता में राज्यानुसार बहुत अंतर दिखाई पड़ता है। जम्मू और कश्मीर में यह 1.07 प्रतिशत और पंजाब में 98.34 प्रतिशत है।

भारत में जिन राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में वर्षा की मात्रा में घट-बढ़ अधिक होती है, तथा जिसके यहां पृष्ठीय जल की कमी होती है, उन क्षेत्रों में भौम जल संसाधनों का बड़े पैमाने पर विकास किया गया है। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और तमिलनाडु इसके उदाहरण हैं (चित्र 8.1)। आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक और महाराष्ट्र में भी भौम जल संसाधनों के विकास की आवश्यकता है क्योंकि यहां भी वर्षा अपेक्षाकृत अपर्याप्त और परिवर्तनशील है।

जल के उपयोग

जल के अनेक तथा प्रतिस्पर्धात्मक उपयोग हैं। जल के आर्थिक उपयोगों में सिंचाई का बहुत अधिक महत्व है। जलविद्युत बनाने, उद्योगों, परिवहन, सफाई तथा मनोरंजन के लिए भी जल का उपयोग होता है। आइए, इनमें से कुछ उपयोगों का विस्तार से अध्ययन करें।

सिंचाई

जल का प्रमुख उपयोग सिंचाई में होता है। सिंचाई के लिए जल कई प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। कावेरी नदी पर ग्रांड एनीकट बांध ईसा की दूसरी शताब्दी में बनाया गया था। आधुनिक सिंचाई का प्रारंभ सन् 1831 से माना जाता है जब उत्तर प्रदेश में 'पूर्वी यमुना नहर' बन कर तैयार हुई थी। सन् 1950 में कुल सिंचित क्षेत्र 2.26 करोड़ हेक्टेयर था। स्वतंत्रता के बाद सिंचाई की क्षमता में काफी वृद्धि हुई है। 1999-2000 में कुल सिंचित क्षेत्र 8.47 करोड़ हेक्टेयर था।

भारत का अधिकतर भाग उष्ण कटिबंध और उपोष्ण कटिबंध में स्थित है। अतः यहां वाष्पोत्सर्जन बहुत अधिक होता है। परिणामस्वरूप सिंचाई के लिए जल की बहुत मांग है। सिंचाई की मांग में वृद्धि करने वाले अन्य कारण ये हैं :

1. वर्षा का वितरण बहुत असमान है। देश के विशाल क्षेत्रों में सारे साल वर्षा का अभाव बना रहता है (चित्र 8.2)। उत्तर पश्चिमी भारत और दक्षिण का पठार ऐसे ही क्षेत्र हैं।
2. वर्षा का कालिक वितरण भी बहुत असमान है। देश के अधिकतर भागों में शीत और ग्रीष्म ऋतुएं प्रायः शुष्क रहती हैं। अतः शुष्क अवधियों में सुनिश्चित सिंचाई के बिना कृषि संभव नहीं है।
3. वर्षा बहुत अधिक परिवर्तनशील है। अतः पर्याप्त वर्षा वाले क्षेत्रों में भी सिंचाई अनिवार्य है। सिंचाई के बिना भारत में कृषि मानसून के साथ जुआ बन कर रह जाती है। देश के किसी न किसी भाग में सूखा पड़ता रहता है।
4. वर्षा बहुत अनिश्चित है। केवल वर्षा का आगमन और निवर्तन ही अनिश्चित नहीं है, अपितु इसकी निरंतरता, लय और गहनता भी अनिश्चित है। इस उतार-चढ़ाव से कृषि को सुरक्षा केवल सिंचाई से ही मिल सकती है।
5. चावल, गन्ना, जूट आदि फसलों को अपेक्षाकृत अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। पानी की यह आवश्यकता केवल सिंचाई द्वारा ही पूरी की जा सकती है।
6. अधिक उपज देने वाली फसलों में नमी की निरंतर आवश्यकता होती है। इसीलिए विकसित सिंचाई की

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 8.1 भारत : भौम जल क्षमता का उपयोग

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 8.2 भारत : जल अभावग्रस्त क्षेत्र

सुविधा वाले क्षेत्रों में हरित क्रांति का सबसे अधिक प्रभाव रहा है।

7. भारत में वर्धन काल पूरे वर्ष रहता है। अत: सिंचाई की सुविधा मिलने पर बहुफसली खेती संभव है अर्थात् वर्ष में एक से अधिक फसलें ली जा सकती हैं।
8. असिंचित क्षेत्रों की तुलना में सिंचित क्षेत्रों की उत्पादकता निश्चित रूप से अधिक होती है। अत: सिंचाई की सुविधाओं के विस्तार से फसलों का कुल उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। इससे उपज की अस्थिरता भी कम होती है।

सिंचित क्षेत्र का वितरण

भारत में राज्यों के अनुसार सिंचित क्षेत्रों का वितरण बहुत असमान है। कुल क्षेत्र के संदर्भ में मिजोरम में कुल सिंचित क्षेत्र 7000 हेक्टेयर है। जबकि उत्तर प्रदेश में लगभग 1.2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र सिंचित है (1996-97 में)। देश के कुल शुद्ध सिंचित क्षेत्र में से चौथाई से अधिक (27.8%) भाग उत्तरांचल सहित उत्तर प्रदेश में है। मध्य प्रदेश और राजस्थान प्रत्येक राज्य में सिंचित क्षेत्र 50 लाख हेक्टेयर से अधिक है, इन तीन राज्यों में देश के शुद्ध सिंचित क्षेत्र का लगभग आधा भाग (49.5 प्रतिशत) पाया जाता है। आंध्र प्रदेश, पंजाब, बिहार और गुजरात में से प्रत्येक राज्य का सिंचित क्षेत्र 30 से 50 लाख हेक्टेयर के बीच है। इस प्रकार इन सात राज्यों में सिंचित क्षेत्र का तीन-चौथाई से अधिक भाग (76.53 प्रतिशत) पाया जाता है।

प्रत्येक राज्य के शुद्ध सिंचित क्षेत्र को शुद्ध बोए गए क्षेत्र के प्रतिशत के रूप में विचार करने पर एक बिल्कुल भिन्न चित्र उभरता है। मिजोरम में यह सबसे कम 6.4 प्रतिशत, जबकि पंजाब में सबसे अधिक 92.9 प्रतिशत है (चित्र 8.2)। आठ राज्यों में सिंचित क्षेत्र का अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक है। सिंचित क्षेत्र के अनुपात की दृष्टि से पंजाब सर्वोच्च स्थान पर है। इसके बाद इसके पड़ोसी राज्य हरियाणा का स्थान है। उत्तरांचल सहित उत्तर प्रदेश में शुद्ध बोए गए क्षेत्र का दो तिहाई से अधिक (68.7 प्रतिशत) भाग सिंचित है। झारखंड सहित बिहार (49.4 प्रतिशत) तथा जम्मू और कश्मीर इसी वर्ग में आते हैं। इस प्रकार उत्तरी मैदान देश का सबसे महत्वपूर्ण सिंचित क्षेत्र है। इन मैदानों में सिंचाई की सुविधाओं के विकास के लिए अनेक प्राकृतिक सुविधाएं हैं। दक्षिण में तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश तथा उत्तर पूर्व में मिजोरम में शुद्ध बोए गए क्षेत्र का 40 प्रतिशत से अधिक भाग सिंचित है।

शुद्ध सिंचित क्षेत्र के मध्यम अनुपात (30 से 40 प्रतिशत) वाले राज्यों की एक निरंतर अविच्छिन्न पेटी है, जो पश्चिम में राजस्थान से लेकर पूर्व में पश्चिम बंगाल तक फैली है। इनमें से अधिकतर राज्यों में वर्ष भर सिंचाई की आवश्यकता होती है।

शुद्ध सिंचित क्षेत्र कम (20 से 30 प्रतिशत) तथा बहुत कम (20 प्रतिशत के कम) अनुपात वाले राज्यों में उत्तर-पूर्व के सभी राज्य शामिल हैं। यहां उच्चावच पर्वतीय है तथा वर्षा अधिक होती है। इसी वर्ग में दक्कन का पठार और मालाबार तट भी शामिल हैं। यहां जल संसाधन सीमित हैं तथा उनका पूरा-पूरा उपयोग भी नहीं हुआ है।

राज्य के अंदर भी सिंचित क्षेत्र में बहुत अंतर पाया जाता है। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश का अधिकतर सिंचित क्षेत्र, गोदावरी और कृष्णा नदियों के निचले भागों (डेल्टा प्रदेशों) और तटवर्ती जिलों में सीमित है। उड़ीसा और अन्य राज्यों में भी ऐसी ही स्थिति है।

सिंचाई के स्रोत

भारत में सिंचाई के तीन प्रमुख मुख्य साधन हैं। ये साधन हैं : (क) नहरें, (ख) कुएं और नलकूप, तथा (ग) तालाब। समय के अनुसार प्रत्येक साधन का सापेक्षिक महत्व बदलता रहा है। 1950 तक नहरें सिंचाई का मुख्य साधन थीं। देश के कुल सिंचित क्षेत्र में नहरों की 39.9 प्रतिशत की भागीदारी थी। तब से नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हुई लेकिन भागीदारी घटकर 1996-97 में केवल 31.1 प्रतिशत रह गई है। डीजल और बिजली के पंपिंग सैटों के उपयोग के प्रारंभ होने से कुओं और नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्रों में वृद्धि हुई है। 1950-51 में इनसे 59 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई होती थी, वह सिंचित क्षेत्र बढ़कर 1996-97 में 3.08 करोड़ हेक्टेयर हो गया है। यह पांच गुनी से भी अधिक वृद्धि है। परिणामस्वरूप कुओं और नलकूपों द्वारा सिंचित क्षेत्रों का अनुपात इस अवधि में 29.7 प्रतिशत से बढ़कर 55.9 प्रतिशत हो गया है (चित्र 8.4)। कुल सिंचित क्षेत्र तथा सिंचित क्षेत्र में प्रतिशत भागीदारी की दृष्टि से तालाबों की महत्ता घटी है (सारणी 8.2)।

नहरी सिंचाई : सन् 1996-97 में नहरों द्वारा लगभग 1.74 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई की गई। इसका आधे से अधिक भाग (52.5 प्रतिशत) उत्तरी विशाल मैदानों में

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 8.3 भारत : शुद्ध बोया गया सिंचित क्षेत्र 1997-98

सारणी 8.2 — भारत : विभिन्न साधनों से सिंचित क्षेत्र में वृद्धि
(क्षेत्रफल 10 लाख हेक्टेयर में)

वर्ष	नहरें	तालाब	कुएं और नलकूप	अन्य स्रोत	कुल शुद्ध सिंचित क्षेत्र	सकल सिंचित क्षेत्र	शु.बो. गए क्षे. में सिं. क्षे. का %	स.कृ.क्षे. में स.सिं.क्षे. का %
1950-51	8.3 (39.8)	3.6 (17.3)	5.9 (28.7)	3.0 (14.2)	20.8 (100)	22.6 (108.7)	17.5	17.0
1970-71	12.5 (39.9)	4.5 (14.5)	11.8 (37.7)	2.4 (7.9)	31.2 (100)	38.2 (122.4)	22.2	23.0
1990-91	17.4 (36.3)	2.9 (6.1)	24.7 (51.5)	2.9 (6.1)	48.0 (100)	63.2 (131.7)	33.8	34.0
1996-97	17.4 (31.4)	3.3 (6.1)	30.8 (55.9)	3.6 (6.6)	55.1 (100)	73.3 (133.0)	38.6	38.7

टिप्पणी : कोष्ठक में दिए आंकड़े कुल शुद्ध सिंचित क्षेत्र में प्रतिशत को प्रकट करते हैं।
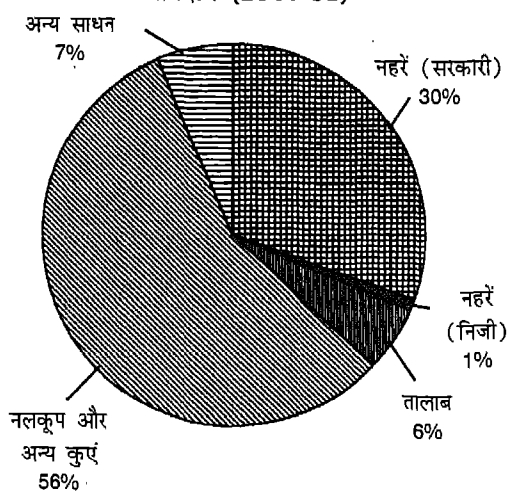
चित्र 8.4 साधनों के अनुसार शुद्ध सिंचित क्षेत्र

स्थित राज्यों तक सीमित है। प्रत्येक राज्य में कुल सिंचित क्षेत्र से भागीदारी के संदर्भ में नहरी सिंचाई का जम्मू और कश्मीर राज्य में बहुत महत्व (90.7 प्रतिशत) है। आर्थिक महत्व के क्रम में असम (63.3 प्रतिशत) और त्रिपुरा (60 प्रतिशत) का भी स्थान है। नहरी सिंचाई की दृष्टि से अन्य महत्वपूर्ण राज्य हरियाणा (49.8 प्रतिशत), उड़ीसा (45.4 प्रतिशत), कर्नाटक (39.5 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल (37.5 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (37.0 प्रतिशत), और पंजाब (35.2 प्रतिशत) हैं। नहरों से सिंचित क्षेत्रों के महत्व की दृष्टि से अन्य राज्य : बिहार, केरल, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान और उत्तर प्रदेश हैं। सबसे कम सिंचित क्षेत्र वाला राज्य मिजोरम सिंचाई के लिए पूरी तरह से नहरों पर निर्भर है।

उत्तरी विशाल मैदानों में नहरों का एक विस्तृत जाल फैला है। पंजाब-हरियाणा की महत्वपूर्ण नहरें अपरबारी दोआब, बिस्ट दोआब, सरहिंद, इंदिरा गांधी, भाकड़ा और पश्चिमी युमना नहरें हैं। पंजाब की तुलना में राजस्थान में नहरों से सिंचित कुल क्षेत्र अधिक है। इस राज्य की प्रमुख नहरें इंदिरा गांधी नहर, बीकानेर नहर और चंबल परियोजना की नहरें हैं।

उत्तर प्रदेश की प्रमुख नहरें ये हैं : पूर्वी यमुना नहर, गंगा की ऊपरी, मध्य और निचली नहरें, शारदा नहर, रामगंगा नहर, और बेतवा नहर। बिहार की प्रमुख नहरों में पूर्वी कोसी, पूर्वी गंडक तथा सोन शामिल हैं। प. बंगाल में नहरों से 7 लाख हेक्टेयर क्षेत्र की सिंचाई की जाती है। इस राज्य की प्रमुख नहरें हैं–दामोदर घाटी, मयूराक्षी तथा कांग्सबती।

दक्षिण राज्य आंध्र प्रदेश में नहरी सिंचाई बहुत महत्वपूर्ण है। गोदावरी, कृष्णा और तुंगभद्रा नदियों पर बांध बनाकर नहरें निकाली गई हैं। निजामसागर, नागार्जुन सागर तथा तुंगभद्रा परियोजनाओं की और कृष्णा तथा गोदावरी के डेल्टा प्रदेश की नहरें उल्लेखनीय हैं। उड़ीसा में हीराकुड बांध की नहरें तथा महानदी डेल्टा की नहरें उल्लेखनीय हैं। कर्नाटक में कई सिंचाई परियोजनाएं हैं। तुंगभद्रा, मालप्रभा, घाटप्रभा, भद्रा और ऊपरी कृष्णा परियोजना की नहरों से विस्तृत क्षेत्रों में सिंचाई होती है। तमिलनाडु में शुद्ध सिंचित क्षेत्र का लगभग एक तिहाई (30.5 प्रतिशत) क्षेत्र नहरों

के द्वारा सिंचित है। कावेरी डेल्टा प्रदेश में नहरों का सुविकसित जाल है। ग्रांड एनीकट, मैटूर बांध, निचली भवानी परियोजना, पालार, वेगाई, मणिमुथई और कोडाइयार परियोजनाओं से निकाली गई नहरें महत्वपूर्ण हैं।

कुएं और नलकूप : भारत के उत्तरी जलोढ़ मैदानों में भौम जल के विपुल भंडार हैं। यहां कुएं और नलकूप बनाना भी आसान है। अत: इन मैदानों में ये सिंचाई के लोकप्रिय साधन हैं। गुजरात (शुद्ध सिंचित क्षेत्र का 78.4 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (70.5 प्रतिशत), गोवा (69.6 प्रतिशत), राजस्थान (67.9 प्रतिशत), पंजाब (61.3 प्रतिशत) तथा महाराष्ट्र (61.2 प्रतिशत) में सिंचाई के इस साधन का वर्चस्व है। मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा, तमिलनाडु और उड़ीसा के शुद्ध सिंचित क्षेत्रों में कुओं और नलकूपों की 40 से लेकर 55 प्रतिशत की भागीदारी है।

तालाबी सिंचाई : सिंचाई के साधन के रूप में तालाबों का महत्व घट गया है। अब शुद्ध सिंचित फसलों के केवल 6.1 प्रतिशत क्षेत्र को ही तालाबों से पानी मिलता है। ऊबड़-खाबड़ प्रायद्वीपीय भारत में तालाब बनाना आसान है। सिंचित क्षेत्र में तालाबों की भागीदारी सबसे अधिक आठ लाख हेक्टेयर है। लेकिन शुद्ध सिंचित क्षेत्र में प्रतिशत की दृष्टि से तमिलनाडु का प्रथम स्थान है। यहां 21.6 प्रतिशत क्षेत्र तालाबों द्वारा सिंचित है। उड़ीसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल और पश्चिम बंगाल में भी तालाबी सिंचाई महत्वपूर्ण है।

जलशक्ति का उत्पादन

भारत में जल शक्ति के उत्पादन की बहुत बड़ी संभावनाएं हैं। केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण के अनुमानों के अनुसार देश में 60 प्रतिशत के उद्भार गुणक पर 84,000 मेगावाट जलशक्ति उत्पादन की क्षमता है। यह वार्षिक ऊर्जा उत्पादन की 450 अरब यूनिट के बराबर है।

घरेलू जल-आपूर्ति

राष्ट्रीय जल नीति के अनुसार पेय जल की आपूर्ति को सबसे अधिक प्राथमिकता दी गई है। इसके बाद सिंचाई जल शक्ति, नौपरिवहन और औद्योगिक तथा अन्य उपयोगों का स्थान है। इसीलिए पेय जल आपूर्ति और स्वच्छता की व्यवस्था के ग्रामीण और नगरीय दोनों प्रकार की बस्तियों में विस्तार के प्रयत्न किए गए हैं। 1991 में देश के केवल 62.72 प्रतिशत घरों से ही सुरक्षित पेय जल की व्यवस्था की जा सकती थी। इस प्रतिशत में परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। गांवों में यह 55.92 प्रतिशत था तथा नगरीय क्षेत्रों में 81.59 प्रतिशत। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1993-94) के दौरान त्वरित नगर जल आपूर्ति कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। इसका उद्देश्य 20,000 से कम जनसंख्या वाले नगरों के जल की आपूर्ति निश्चित करनी थी। भारत के अधिकतर बड़े नगरों की जल आपूर्ति की मांग कृत्रिम जलाशयों के द्वारा पूरी की जाती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू उपयोग के लिए जल भौम जल स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। 1972 में भारत के एक-चौथाई गांव जलापूर्ति की दृष्टि से समस्याग्रस्त गांव के रूप में वर्गीकृत थे। नौवीं पंचवर्षीय योजना में देश की प्रत्येक बस्ती में टिकाऊ आधार पर पेयजल उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया था। लेकिन आज भी भारत के प्रत्येक गांव को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध नहीं है।

औद्योगिक उपयोग

औद्योगिक विकास के लिए पर्याप्त जल की आपूर्ति पहली आवश्यकता है। द्वितीय सिंचाई आयोग ने अपनी 1972 की रिपोर्ट में औद्योगिक उद्देश्यों के लिए 50 अरब घन मीटर (अघमी) जल के प्रावधान की सिफारिश की थी। लेकिन एक नए आकलन के अनुसार सन् 2000 में उद्योगों को केवल 30 अघमी जल की आवश्यकता थी, जिसके सन् 2025 तक बढ़कर 120 अघमी होने का अनुमान है।

जल संसाधन की समस्या

जल संसाधनों की समस्याएं विविध प्रकार की हैं। ये उपलब्ध, उपयोग, गुणवत्ता और प्रबंध से संबंधित हैं। यदि उपयोग का वर्तमान प्रतिरूप और गति जारी रहती है, तो भारत को उपयुक्त गुणवत्ता वाले जल की अपनी भविष्य की आवश्यकताएं पूरी करने में संकटपूर्ण अभाव का सामना करना पड़ेगा।

उपलब्धता की समस्याएं : पृष्ठीय जल की कुल अनुमानित उपलब्ध मात्रा 1869 अघमी है। इसमें से केवल 690 अघमी ही उपयोग के लिए उपलब्ध है। यदि इसमें भौम जल की 450 अघमी मात्रा जोड़ दी जाए तो कुल योग 1140 अघमी हो जाता है जो उपयोग के लिए उपलब्ध है।

एक परंपरागत अनुमान के अनुसार भारत में सन् 2025 में 1050 अघमी जल की आवश्यकता होगी। इस प्रकार कुल मिलाकर देश में जल की कोई कमी नहीं होगी। लेकिन हम इस तथ्य की उपेक्षा भी नहीं कर सकते कि भारत में जल की प्रति व्यक्ति उपलब्धता घट गई है। 1951 में यह 5514 घन मीटर थी जो 2001 में 1829 घन मीटर रह गई थी। जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि उपर्युक्त राष्ट्रीय आकलन प्रादेशिक स्तरों पर बहुत कुछ बदल जाते हैं। कुछ प्रदेशों में जल संसाधनों का बाहुल्य है, तथा कुछ में कमी है। पूरे वर्ष नमी की कमी वाले प्रदेशों में राजस्थान, पंजाब और हरियाणा के मैदानों के पश्चिमी और दक्षिण पश्चिमी भाग, पश्चिमी गुजरात, तथा पश्चिमी घाट के पवन विमुख ढाल हैं।

इसी प्रकार ऋतुवत् भिन्नताएं भी जल की आपूर्ति की समस्याएं पैदा करती हैं। इसके परिणामस्वरूप वर्ष के अधिकांश भाग में जल की कमी अनुभव की जाती है। इसके साथ ही वार्षिक और ऋतुवत् वर्षा में अत्यधिक परिवर्तनशीलता है। इसी कारण से संभावित जल संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, संरक्षण और प्रबंधन आवश्यक हो गया है। इस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर, मांग और आपूर्ति में संतुलन होने के बावजूद, देश में प्रादेशिक और ऋतुवत् उपलब्धता अनुकूल नहीं है।

उपयोग की समस्याएं : पीने और सफाई के लिए जल की आपूर्ति जीवन की आधारभूत आवश्यकता है। यह "सभी के लिए स्वास्थ्य" के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। लोगों को पेयजल की सुविधाएं उपलब्ध कराने के प्रयत्नों के बावजूद, अभी भी कुछ कमियां शेष हैं। लगभग 90 प्रतिशत नगरों को पेयजल की आपूर्ति की जा रही है, लेकिन आपूर्ति जल की मात्रा और गुणवत्ता निर्धारित मानकों पर खरी नहीं उतरती है। मलिन एवं अवैध्य बस्तियां सामान्यतः आधारभूत सुविधाओं से वंचित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की दशा शोचनीय है। राष्ट्रीय प्रायोगिक आर्थिक शोध परिषद् के आकलन (1994) के अनुसार भारत के आधे से अधिक गांवों में सुरक्षित पेयजल के साधन नहीं हैं। इसी के परिणामस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में लोग जल से फैलने वाली बीमारियों से पीड़ित रहते हैं।

सिंचाई की कुल संभावित क्षमता के लगभग 68 प्रतिशत भाग को विकसित किया जा चुका है। फिर भी देश के कुल बोए गए क्षेत्र का दो तिहाई भाग वर्षा पर निर्भर है। सिंचाई की सुविधाओं में व्यापक क्षेत्रीय विभिन्नताएं पाई जाती हैं। जल के अत्यधिक अभाव वाले क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अब एक नदी द्रोणी के जल का दूसरी नदी द्रोणी के क्षेत्र में ले जाने की योजनाएं बनाई गई हैं। लेकिन इस तरह की योजनाओं में बड़े और मध्यम आकार के बांध बनाने पड़ेंगे। इसके परिणामस्वरूप उपलब्ध भूमि के विशाल क्षेत्र पानी में डूब जाएंगे और कुछ लोग अपने बसे बसाए घरों से उजड़ जाएंगे। इसलिए सिंचाई की छोटी योजनाओं का विकास अपेक्षाकृत अधिक श्रेयस्कर होगा।

विगत कुछ वर्षों में कुओं और नलकूपों के द्वारा सिंचाई में वृद्धि हुई है। इसके फलस्वरूप इन क्षेत्रों में भौमजल स्तर नीचे चला गया है और भौमजल संसाधन खत्म हो रहे हैं, 10 राज्यों के 114 जिलों को भौमजल के दोहन की दृष्टि से अतिशोषित और निराशाजनक जिले घोषित किया गया है। ये जिले पंजाब, हरियाणा, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु तथा उत्तर प्रदेश में हैं।

जल के उपयोग की निम्न क्षमता अन्य गंभीर समस्या है। नहरी सिंचाई की अनुमानित उपयोग क्षमता केवल 38-40 प्रतिशत है और भौम जल सिंचाई की 60 प्रतिशत है। यदि जल के उपयोग की क्षमता के वर्तमान स्तर में 10 प्रतिशत का सुधार कर लिया जाए तो 1.4 करोड़ हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की सिंचाई की जा सकती है।

गुणवत्ता की समस्याएं : भारत में जल-प्रदूषण एक प्रमुख समस्या है। जल-प्रदूषण के प्रमुख स्रोत घरेलू अपशिष्ट जल, औद्योगिक अपशिष्ट जल एवं बहिःस्राव तथा कृषि कार्यों में प्रयुक्त रसायन हैं। भारत के तीन चौथाई पृष्ठीय जल संसाधन प्रदूषित हैं और 80 प्रतिशत प्रदूषण का कारण मल जल है। ऐसा अनुमान है कि प्रथम श्रेणी के नगरों से प्रतिदिन 12 अरब लीटर तथा द्वितीय श्रेणी के नगरों से 1.3 अरब लीटर मल जल निकलता है। नगर पालिकाओं का मल जल खुली जगहों में डाल दिया जाता है या पर्याप्त उपचार के बिना ही नदियों में प्रवाहित कर दिया जाता है। नगर-आधारित उद्योगों से भारी मात्रा में ठोस कचरा, तरल अपशिष्ट, विषैली गैसें, रासायनिक अवशिष्ट, धूल और धुआं निकलते हैं। इस औद्योगिक कूड़े-कचरे का अधिकतर भाग नदियों में बहा दिया जाता है। परिणामस्वरूप, विषैले तत्त्व जलाशयों, नदियों और अन्य जल खंडों में पहुंच जाते हैं, जहां वे इन जलाशयों के जैव तंत्र को नष्ट कर देते हैं।

औद्योगिक अपशिष्टों के निपटान के परिणाम का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि कानपुर महानगरीय क्षेत्र में स्थित चमड़े के 150 कारखाने गंगा नदी में प्रतिदिन 58 लाख लीटर मल जल प्रवाहित करते हैं। नगर आधारित उद्योगों से प्रदूषित नदी और अनुपचारित मल जल से नदी के प्रवाह की दिशा में नीचे की ओर स्वास्थ्य के लिए गंभीर समस्याएं पैदा हो सकती हैं। उर्वरकों और विविध प्रकार के कृषि रसायनों के अविवेकपूर्ण उपयोग ने पृष्ठीय जल और भौम जल की गुणवत्ता को और भी बिगाड़ दिया है। उर्वरकों और अन्य रसायनों के अवशिष्ट जलाशयों में पहुंचकर उन्हें संदूषित कर देते हैं। कुछ क्षेत्रों में प्राकृतिक संदूषकों जैसे फ्ल्युराइड, संखिया और लवणता की मात्रा अधिक होती है, इससे स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरे पैदा हो जाते हैं।

जल संसाधनों का संरक्षण

जल की कमी, स्थानिक और ऋतुवत् असमानता, बढ़ती मांग और तेजी से फैलते प्रदूषण की दृष्टि से जल-संसाधन का संरक्षण आवश्यक हो गया है।

इस दिशा में पहला कदम वर्षा जल संग्रहण और इसके अपवाह को रोकना है। दूसरा कदम है : छोटे-बड़े सभी नदी जल संभरों के जल-संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबंधन। तीसरा कदम है, जल को अप्रदूषित रखना।

वर्षा जल संग्रहण : यह भौम जल के पुनर्भरण को बढ़ाने की तकनीक है। इस तकनीक में स्थानीय रूप से वर्षा जल को एकत्र करके भूमि जल भंडारों में संग्रहीत करना शामिल है, जिससे स्थानीय घरेलू मांग को पूरा किया जा सके। वर्षा जल संग्रहण के उद्देश्य ये हैं :

1. जल की निरंतर जल मांग को पूरा करना,
2. नालियों को रोकने वाले सतही जल प्रवाह को कम करना,
3. सड़कों पर जल फैलाव को रोकना,
4. भौम जल में वृद्धि करना तथा जलस्तर को ऊंचा उठाना,
5. भौम जल प्रदूषण को रोकना,
6. भौम जल की गुणवत्ता को सुधारना,
7. मृदा अपरदन को कम करना,
8. ग्रीष्म ऋतु और सूखे के समय जल की घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करना।

भौम जल के भंडारों के पुनर्भरण की कम लागत वाली अनेक तकनीक अब उपलब्ध हैं। इनमें से छत के वर्षा जल का संग्रहण, खुदे हुए कुओं का पुनः भरण, हैंड पंपों का पुनर्भरण, रिसाब गड्ढ़ों का निर्माण, खेतों के चारों ओर खाइयां और छोटी-छोटी सरिताओं पर बंधिकाएं और रोक बांध बनाना विशेष उल्लेखनीय हैं (चित्र 8.5)।

उपर्युक्त वर्णित तकनीकें देश के लिए नई व्यवस्था नहीं हैं। प्राचीन काल से ही भारत में वर्षा जल संग्रहण की परंपरा रही है। जल संग्रहण के उन्नत तरीकों के प्रमाण भी मिलते हैं। नहरों, तालाबों, तटबंधों और कुओं के रूप में जल संग्रहण होता था। पर्वतीय एवं पहाड़ी क्षेत्रों में छतों के वर्षा जल और झरनों के जल को बांस की नलियों द्वारा दूर-दूर तक ले जाया जाता था। शुष्क और अर्ध शुष्क क्षेत्रों में भौम जल के भंडारों के उपयोग के लिए कुएं और बावड़ियां बनाई जाती थीं। राजस्थान में छत के वर्षा जल को कृत्रिम रूप से विकसित कुओं में जमा कर दिया जाता था। जल संरक्षण के लिए सारे देश में तालाबों का निर्माण एक लोकप्रिय उपाय था। इन संरचनाओं के नवीकरण और आधुनिकीकरण से न केवल जल भंडारण की सुविधा होगी अपितु विभिन्न उद्देश्यों के लिए जल के उपयोग की क्षमता में भी वृद्धि होगी।

जल संभर विकास

जल संभर एक ऐसा क्षेत्र है जिसका जल एक बिंदु की ओर प्रवाहित होता है, जो इसे मृदा और जल संरक्षण की आदर्श नियोजन इकाई बना देता है। इसमें एक या अनेक गांव, कृषि योग्य और कृषिक अयोग्य भूमि, और विभिन्न वर्गों की जोतें और किसान शामिल हो सकते हैं। जल संभर विधि से कृषि और कृषि से संबंधित क्रियाकलापों जैसे उद्यान कृषि, वानिकी और वन वर्धन का समग्र रूप में विकास किया जा सकता है।

हरियाणा की सुखोमाजरी

सुखोमाजरी हरियाणा के अंबाला जिले में स्थित है। इस गांव के लोगों ने जिस तरह से अपने गांव के वन और जल संसाधनों का विकास किया है, उसी कारण यह गांव देश भर में प्रसिद्ध हो गया है। गांव सामुदायिक सहभागिता प्रबंधन के लिए आदर्श बन गया है। चंडीगढ़ के निकट सुखना झील के गाद से भर जाने के कारण इस गांव में पानी की कमी रहने लगी थी, झील के जलसंग्रहण क्षेत्र में चार रोक बांध बनाए गए तथा अनेक पेड़-पौधे लगाए गए। इन कार्यों से गांव का जलस्तर ऊपर उठ गया। भाबड़ घास की कटाई और मूंगरी या चारे की घास से आमदनी ने गांव की काया पलट कर दी है।

हैंड पंप द्‌वारा पुनर्भरण

(क)
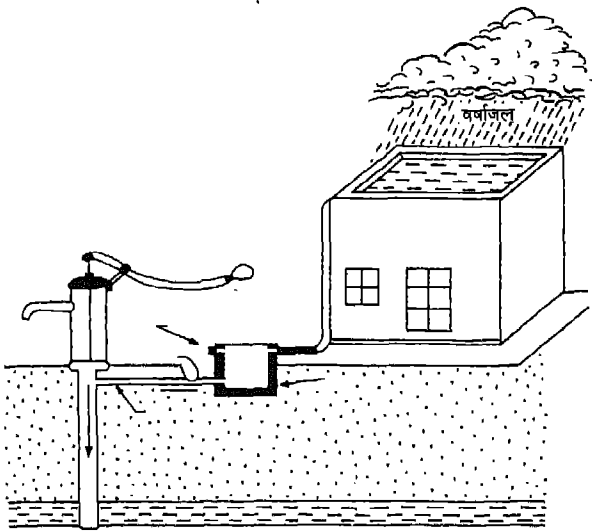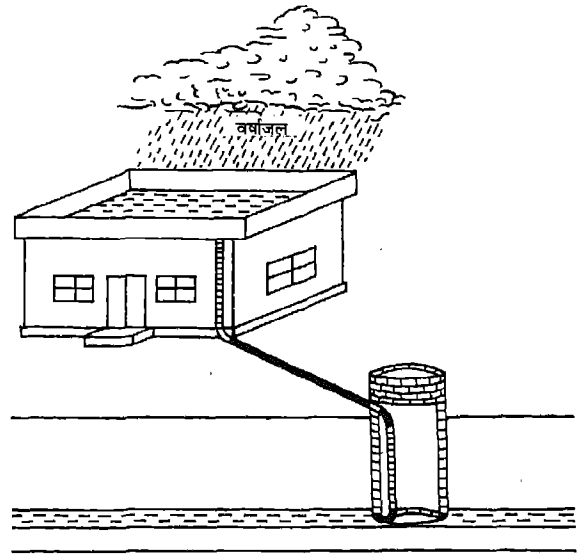
वर्षाजल

परित्यक्त कुओं द्‌वारा पुनर्भरण

(ख)
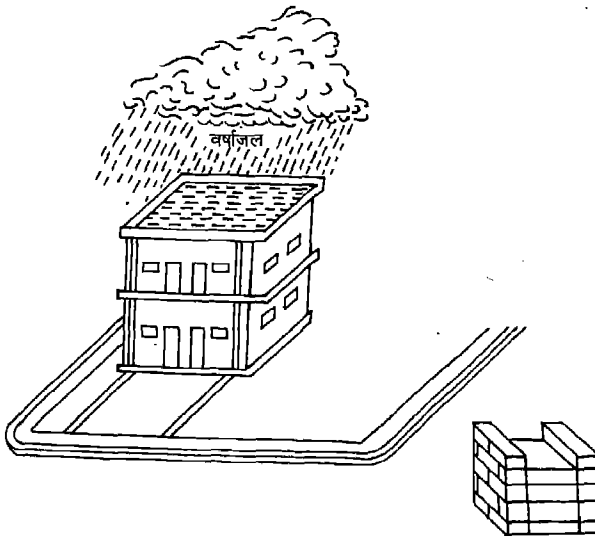
खंदक के द्‌वारा पुनर्भरण

(ग)
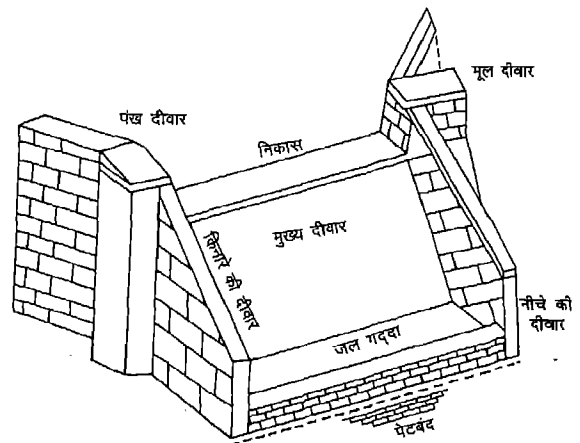
सीमेंट नाला बंद का एक हिस्सा

(घ)

चित्र 8.5 वर्षा जल संग्रहण

भारत में जल संभर विकास कार्यक्रम, कृषि ग्रामीण विकास तथा पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा किया जाता है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि जल संभर विधि जल संरक्षण का एक महत्वपूर्ण उपाय है। इससे हीन संसाधन वाले क्षेत्रों में कृषि का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, वर्षा पोषित क्षेत्रों तथा संसाधनों की कमी वाले क्षेत्रों में परितंत्रीय ह्रास को रोका जा सकता है। साथ ही साथ इससें लोगों का जीवन स्तर भी ऊंचा उठता है। जल संभर प्रबंधन का महत्व हरियाणा के सुखोमाजरी गांव के अनुभव से समझा जा सकता है।
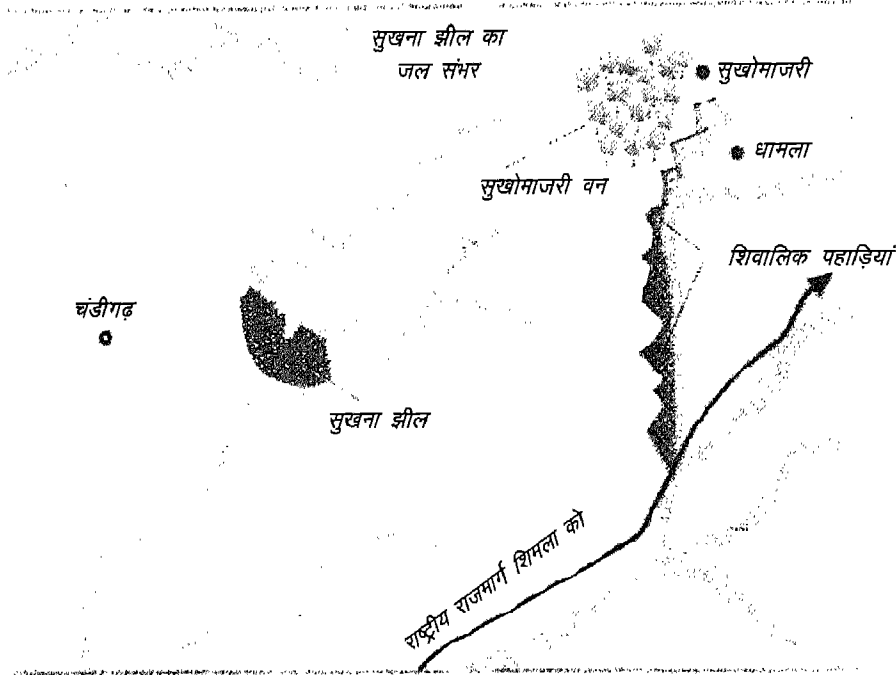
चित्र 8.6 *सुखोमाजरी (हरियाणा) का जल संभर विकास मॉडल*

मझगावां जल संभर विकास कार्यक्रम

मझगावां (12,536 हेक्टेयर) मध्य प्रदेश के सतना जिले का एक गांव है। यह गांव निम्न उत्पादकता, सिंचाई के अभाव, नीचे जाते जलस्तर, पेय जल की कमी और मृदा अपरदन के लिए जाना जाता था। 1996 से पूर्व ही ग्रीष्म ऋतु में जल की बेहद कमी हो जाती थी। कृषि को प्रायः नुकसान हो जाता था। लोग और पशु परेशानी में जीते थे। गांव में एक भी नलकूप नहीं था।

इस गांव ने जल संभर योजना को अपनाया, खेतों के चारों ओर खाइयां खोदीं। बेरोकटोक बहते पानी को रोकने के लिए बांध बनाकर नियंत्रित किया गया। इससे वर्षा जल रिस कर जमीन के अंदर चला गया तथा भौम जल के भंडार बढ़ गए और जल स्तर ऊंचा उठ गया। मिट्टी के बांधों के पीछे एकत्रित जल अब 1504 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई करता है तथा लोगों को पूरे साल पेयजल मिलता रहता है। धान की फसल की उत्पादकता में 52 से 60 प्रतिशत तक की तथा गेहूँ में 40 प्रतिशत तक की वृद्धि हो गई है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :

   (i) प्रमुख जल संसाधन कौन से हैं?

   (ii) भारत के संभावित पृष्ठीय जल संसाधनों के वितरण का वर्णन कीजिए।

   (iii) भारत के विशाल मैदान भौम जल संसाधनों में संपन्न क्यों हैं?

   (iv) जल के मुख्य उपयोग क्या हैं?

   (v) प्रायद्वीपीय भारत की तुलना में विशाल मैदानों में सिंचाई अधिक विकसित क्यों है?

   (vi) वर्षा जल संग्रहण के विभिन्न तरीके कौन-कौन से हैं?

   (vii) जल संसाधनों का संरक्षण आवश्यक क्यों है?

   (viii) देश में सिंचाई के विभिन्न साधनों के सापेक्षित महत्व में परिवर्तन का वर्णन कीजिए।

   (ix) भारत के नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में जल आपूर्ति की व्याख्या कीजिए।

2. अंतर स्पष्ट कीजिए :

   (i) पृष्ठीय जल और भौम जल।

   (ii) उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत की नदियों की जलविज्ञान से संबंधित विशेषताएं।

   (iii) निर्मित सिंचाई क्षमता तथा उपयोग में लाई गई सिंचाई क्षमता।

   (iv) प्रमुख और लघु सिंचाई परियोजनाएं।

3. भारत के संभावित जल संसाधनों की विवेचना कीजिए।

4. भारत में सिंचाई की आवश्यकता क्यों है?

5. प्रादेशिक विभिन्नताओं के लिए कारण बताते हुए, देश में सिंचाई के वितरण का वर्णन कीजिए।

6. देश में जल संसाधनों के विकास से संबंधित प्रमुख समस्याएं कौन-सी हैं?

7. भारत में जल संभर विकास कार्यक्रमों की उपयोगिता और व्यावहारिकता का मूल्यांकन कीजिए।

परियोजना कार्य

8. अपने पास-पड़ोस में जल के विभिन्न उपयोगों का पता लगाइए। जल के दुरुपयोग की पहचान तथा उनके नियंत्रण के उपाय सुझाइए।

9 अध्याय
कृषि

अंग्रेजी का 'एग्रीकल्चर' (Agriculture) शब्द लैटिन भाषा के दो शब्दों 'एगर' (ager) अर्थात् भूमि तथा 'कल्चरा' (cultura) अर्थात् जुताई से मिलकर बना है। इस प्रकार कृषि का अर्थ है जुताई करना (फसलें उगाना) और पशुओं का पालना।

हम सभी जानते हैं कि सभी भूमि कृषि के योग्य नहीं होती हैं। फसलें उगाने के लिए निम्नलिखित की आवश्यकता होती है, समतल भूमि, उपजाऊ मृदा, पर्याप्त वर्षा और अनुकूल तापमान। मनुष्य के द्वारा भूमि का उपयोग इन बातों पर भी निर्भर करता है : प्रौद्योगिकी, काश्तकारी की अवधि तथा उनका आकार, सरकारी नीतियां और अन्य अनेक अवसंरचनात्मक कारक।

कृषीय भूमि उपयोग

भारत के एक कृषि प्रधान देश होने का कारण यह है कि 70 प्रतिशत लोग अपनी जीविका के लिए कृषि पर आश्रित हैं, न कि इसलिए कि कृषि से अन्य क्रियाकलापों की तुलना में अधिक आय होती है। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की 26 प्रतिशत की भागीदारी है। यह देश को खाद्य सुरक्षा प्रदान करती है तथा उद्योगों के लिए अनेक प्रकार के कच्चे माल का उत्पादन करती है। राष्ट्रीय सुरक्षा और संपन्नता का कृषि के साथ बहुत निकटता का संबंध है।

कृषीय भूमि का अर्थ है– जोता गया क्षेत्र इसमें शुद्ध फसलगत क्षेत्र और परती भूमि शामिल हैं। वर्ष में फसलगत क्षेत्र को बोया गया शुद्ध क्षेत्र कहते हैं। जोते गए सकल क्षेत्र में, बोया गया शुद्ध क्षेत्र तथा बोये गए शुद्ध क्षेत्र का वह भाग जिसका उपयोग वर्ष में एक से अधिक बार किया गया दोनों शामिल हैं। परती भूमि वह है, जिसमें एक से लेकर पांच वर्षों तक कोई फसल न उगाई गई हो।

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र (32.873 करोड़ हेक्टेयर) में से 92.8 प्रतिशत के भूमि उपयोग के आंकड़े उपलब्ध हैं। 1950-51 में बोया गया शुद्ध क्षेत्र 11.87 करोड़ हेक्टेयर था, जो बढ़कर 1998-99 में 14.26 करोड़ हेक्टेयर हो गया था। इस प्रकार देश के कुछ भौगोलिक क्षेत्र के 46.59 प्रतिशत भाग में आजकल खेती होती है, जबकि 1950-51 में यह 36.1 प्रतिशत था (चित्र 9.1)। लगभग 2.34 करोड़ हेक्टेयर भूमि परती है, जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 7.6 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत का आधे से अधिक क्षेत्र कृषि के अंतर्गत है। यहां यह जानना प्रासंगिक होगा कि कुल भौगोलिक क्षेत्र के संदर्भ में भारत का संसार में सातवां स्थान है, लेकिन कृषि के अंतर्गत भूमि के संदर्भ में इसका दूसरा स्थान है। प्रथम स्थान पर संयुक्त राज्य अमेरिका है, जो भूमि-क्षेत्र में भारत से ढाई गुना बड़ा है।

कुल भौगोलिक क्षेत्र के अनुपात में बोया गया शुद्ध क्षेत्र सभी राज्यों में एक समान नहीं है। अरुणाचल प्रदेश में शुद्ध बोया गया क्षेत्र 3.2 प्रतिशत है, जबकि हरियाणा और पंजाब में यह 82.20 प्रतिशत है। सतलुज गंगा के जलोढ़ मैदान, गुजरात के मैदान, काठियावाड़ का पठार, महाराष्ट्र का पठार, पश्चिम बंगाल का मैदान, अत्यधिक कृष्ट क्षेत्र हैं। कृष्ट क्षेत्र के इतने अधिक अनुपात के कारण ये हैं– सामान्य ढाल वाली भूमि, उपजाऊ और आसानी से जुताई योग्य जलोढ़ और काली मृदा, अनाज की कृषि के लिए अनुकूल जलवायु, सिंचाई की उत्तम सुविधाएं तथा जनसंख्या के उच्च घनत्व का अत्यधिक दबाव। पर्वतीय और सूखे क्षेत्रों का उच्चावच, जलवायु और मृदा कृषि के लिए उपयुक्त नहीं हैं, अतः इन क्षेत्रों में कृषि की व्यापकता कम है। भारत के कुल क्षेत्रफल के पांचवें भाग (6.9 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र) पर वन पाए जाते हैं। सिद्धांततः कुल क्षेत्रफल के कम से कम एक तिहाई क्षेत्र पर वनावरण होना चाहिए, तभी पारितंत्र को बचाया जा सकता है, वन ऊबड़-खाबड़, पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्रों तक सीमित हैं। भूमि तल का लगभग 5.8 प्रतिशत भाग बंजर हैं तथा भौतिक दृष्टि से कृषि के अयोग्य है। कुल क्षेत्र के 3.63 प्रतिशत भाग पर चरागाह हैं जबकि 4.6 प्रतिशत भाग को कृषि योग्य बेकार भूमि के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।
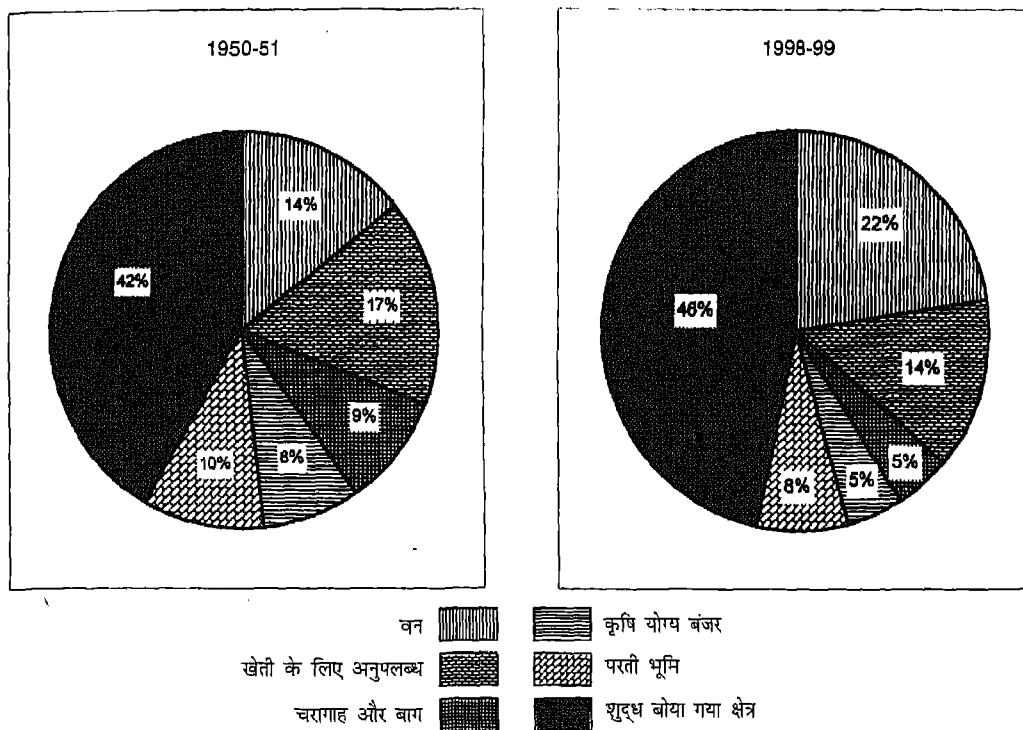
***चित्र 9.1** भारत : भूमि उपयोग 1950-51 और 1998-99*

13.84 प्रतिशत भूमि क्षेत्र, गैर कृषि कार्यों जैसे– मकान, उद्योग, सड़कों और रेलमार्गों के लिए उपयोग किया जाता है।

शस्य गहनता

कृषीय उत्पादन और उत्पादकता दो तरीकों से बढ़ाई जा सकती है, एक तो फसलगत क्षेत्र में विस्तार करके तथा दूसरा शस्य गहनता बढ़ाकर। अब तक कृषि के लिए भौतिक रूप से उपयुक्त भूमि को कृषि के अंतर्गत लाया जा चुका है, अत: बोए गए शुद्ध क्षेत्र में विस्तार की संभावनाएं बहुत कम हैं। अब शस्य गहनता बढ़ाना ही एक मात्र विकल्प है। शस्य गहनता का तात्पर्य है एक ही खेत में एक कृषीय वर्ष में उगाई गई फसलों की संख्या। बोए गए शुद्ध क्षेत्र के प्रतिशत के रूप में सकल फसलगत क्षेत्र शस्य गहनता की माप को प्रकट करता है। 1996-97 में सकल फसलगत क्षेत्र 18.95 करोड़ हेक्टेयर था। इस प्रकार शस्य गहनता 132.7 प्रतिशत बैठती है। सन् 2000-01 में शस्य गहनता बढ़कर 135 हो गई थी। शस्य गहनता ज्ञात करने का सूत्र है–

$$\frac{\text{सकल फसलगत क्षेत्र}}{\text{बोया गया शुद्ध क्षेत्र}} \times 100$$

शस्य गहनता मिजोरम की 100 प्रतिशत से लेकर पंजाब (1996-97) की 189 प्रतिशत के मध्य बदलती रहती है। पंजाब के बाद हिमाचल प्रदेश (170%), हरियाणा (168%), पश्चिम बंगाल (166%) और उत्तर प्रदेश (150%) का स्थान है। जम्मू और कश्मीर, असम, मणिपुर, सिक्किम, बिहार और उड़ीसा में यह राष्ट्रीय औसत से अधिक है। प्रायद्विपीय पठारों के राज्यों में यह कम और बहुत कम है। सघन बसे उत्तरी मैदानों, तटीय मैदानों और डेल्टा प्रदेशों में सिंचाई की सुविधा है या वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती है। अत: इन क्षेत्रों में शस्य गहनता अधिक है। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और उत्तर पूर्व के पहाड़ी राज्यों की पहाड़ी, शुष्क, अर्धशुष्क और अर्ध-आर्द्र भूमियों में कम है। इन राज्यों/क्षेत्रों की मिट्टियां हल्की या भारी हैं और सिंचाई की सुविधाएं या तो नहीं हैं या नगण्य हैं।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि सिंचाई शस्य गहनता का प्रमुख निर्धारक तत्त्व है। पंजाब का 94 प्रतिशत से अधिक फसलगत क्षेत्र सिंचित है। इसीजिए यहां शस्य गहनता बहुत अधिक है। मृदा की सुघट्यता (Workability) और उर्वरता

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.2 भारत : शुद्ध बोया गया सिंचित क्षेत्र, 1998-99

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.3 भारत : शस्य गहनता

तथा जनसंख्या का दबाव भी शस्य गहनता को प्रभावित करते हैं। आधुनिक अधिक उपज देने वाली फसलों ने भी शस्य गहनता को बढ़ाने में सहायता की है।

आर्द्र और शुष्क भूमि कृषि

फसलों के लिए जब नमी का एकमात्र स्रोत वर्षा जल ही होता है तो इसे वर्षा पोषित (वर्षाधीन) कृषि या शुष्क भूमि कृषि कहते हैं। लेकिन दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। 75 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले प्रदेशों में इसे शुष्क भूमि कृषि कहते हैं तथा 75 से.मी. से अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसे वर्षापोषित (आर्द्र भूमि) कृषि कहते हैं। शुष्क भूमि कृषि में वर्षा जल को संरक्षित करने वाली विधियों की आवश्यकता होती है। इन विधियों से वर्षा की दो अवधियों के बीच होने वाली सूखे जैसी दशाओं को कम करने में मदद मिलती है। भारत की लगभग एक तिहाई कृषि, शुष्क भूमि कृषि ही है। वर्षा पोषित प्रदेशों में, वर्षा ऋतु में जल की उपलब्धता फसलों की आवश्यकता से अधिक होती है। इस अधिशेष जल को सिंचाई या भौम जल के पुनर्भरण के लिए इकट्ठा कर लिया जाता है।

भारतीय कृषि आज भी वर्षाधीन है। 14.28 करोड़ हेक्टेयर के फसलगत शुद्ध क्षेत्र (1996-97) में से केवल 5.51 करोड़ हेक्टेयर (38.5%) क्षेत्र ही सिंचित है। मोटे अनाज और ज्वार, बाजरा, दालें, तिलहन और कपास मुख्य वर्षा पोषित फसलें हैं।

शुष्क भूमि कृषक को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मृदा और वर्षा जल शुष्क भूमि, कृषि के मूल संसाधन हैं। मिट्टियों को बड़े पैमाने पर नुकसान हुआ है। शुष्कता की लंबी अवधियों और अनियंत्रित चराई ने वनस्पति के आवरण को नष्ट कर दिया है। नंगी (आवरणहीन) भूमि किसी न किसी प्रकार के अपरदन से पीड़ित रहती है। इस प्रक्रिया में मिट्टियों की ऊपरी ह्यूमस युक्त उर्वर मृदा की परत हट जाती है तथा नीचे उथली अनुपजाऊ मृदा की परत रह जाती है। शुष्क भूमि फसलों के लिए वर्षा ही जल का एकमात्र स्रोत है। यह (वर्षा) मात्रा में अपर्याप्त तथा अत्यधिक परिवर्तनशील है। अतः शुष्क भूमि कृषि फसलों के लिए वर्षाजल का संरक्षण और प्रबंधन आवश्यक है।

शुष्क भूमि कृषि क्षेत्रों में ग्रामीण जनसंख्या का गरीब वर्ग रहता है। ये लोग मृदा की अनुर्वरता और जल के अभाव को निष्प्रभावित करने के लिए धनाभाव के कारण आवश्यक सुविधाएं (निवेश) जुटाने में असमर्थ होते हैं। इन समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए किसान पुराने जमाने में फसलें उगाने के साथ-साथ पशुपालन भी करते थे। लेकिन अब परिदृश्य पूरी तरह से बदल गया है। जनसंख्या के निरंतर बढ़ते दबाव के कारण चरागाहों को खेती के लिए उपयोग किया जाने लगा है।

सरकार ने ऐसे क्षेत्रों में अनेक योजनाएं शुरू की हैं। इनमें से कुछ ये हैं– समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र विकास कार्यक्रम, काम और रोजगार के बदले अनाज कार्यक्रम आदि। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य शुष्क भूमि क्षेत्रों के ग्रामीणों की दशा सुधारना है। इन कार्यक्रमों के लागू होने से थोड़ी-सी आर्थिक स्थिरता तो आई है, लेकिन मूल समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है।

शुष्क भूमि कृषक को बार-बार पीड़ित करने वाले कष्टों को कम करने के लिए ये उपाय किए जा सकते हैं– जल्दी पकने वाली फसलों को उगाना, नई तकनीक अपनाना, मृदा की नमी का संरक्षण करना, जीव जंतु आधारित क्रियाकलाप शुरू करना तथा लघु उद्योगों की स्थापना। अर्धशुष्क उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र के लिए अंतर्राष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान, पाटनचेरु, हैदराबाद तथा केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, राजस्थान इन मुद्दों पर काम कर रहे हैं।

फसल प्रतिरूप

सभी फसलों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है : खाद्य फसलें तथा गैर खाद्य फसलें। खाद्य फसलों का पुनः तीन उपवर्गों में विभाजन किया जा सकता है– (i) अनाज और ज्वारा-बाजरा, (ii) दालें, और (iii) फल तथा सब्जियां (इन्हें प्रायः उद्यान कृषि की फसलें भी कहते हैं)। अनाज, ज्वार-बाजरा और दालों को सामूहिक रूप से खाद्यान्न भी कहते हैं। गैर खाद्य फसलों में तिलहन, रेशेदार फसलें, अनेक रोपण फसलें तथा चारे की फसलें प्रमुख हैं।

खाद्यान्नों का उत्पादन 1950-51 में 5.08 करोड़ टन था, जो बढ़कर 2000-01 में 19.59 करोड़ टन हो गया। इसके परिणामस्वरूप खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता में वृद्धि हुई। 1951 में यह 395 ग्राम थी जो 2001 में 417 ग्राम हो गई। खाद्यान्नों में अनाजों और ज्वार-बाजरा के उत्पादन में तीव्र वृद्धि हुई है। इनका उत्पादन 1950-51 में 4.24 करोड़ टन था, जो बढ़कर 2001 में 18.52 करोड़ टन हो गया है। लेकिन प्रोटीन युक्त दालों का उत्पादन बहुत धीमी गति से बढ़ा है। इसी

सारणी 9.1 — **भारत : प्रमुख फसलों के क्षेत्र और उत्पादन की प्रवृत्ति, 1950-51 से 2000-01 तक**

फसल	1950-51			2000-01		
	क्षेत्र	उत्पादन	उपज	क्षेत्र	उत्पादन	उपज
चावल	30.81	20.58	668	44.3	84.9	1913
गेहूं	09.75	06.46	663	25.1	68.7	2743
ज्वार	15.57	5.50	353	10.0	7.7	772
बाजरा	9.00	2.60	288	9.8	7.1	719
मक्का	3.16	1.71	547	6.6	12.1	1841
अनाज और ज्वार-बाजरा	78.23	42.41	642	99.8	195.2	2622
चना	7.57	3.65	482	4.9	3.5	720
तुर	2.2	1.72	790	3.7	2.3	616
सभी दालें	19.09	8.41	441	20.0	10.7	533
सभी खाद्यान्न	97.32	50.83	522	119.8	195.9	1636
मूंगफली	4.49	3.48	775	6.7	6.2	924
तोरिया-सरसो	2.07	0.76	368	4.5	4.2	941
तिलहन	10.73	5.16	481	22.3	18.4	826
गन्ना	1.71	57.05	—	4.3	299.2	—
कपास*	5.88	3.04	88	8.6	9.7	191
जूट**	0.57	3.31	1043	0.8	9.3	2014
चाय	0.31	0.3	880	0.4	0.85	850
कॉफी	0.1	0.03	300	0.3	0.3	959
रबर	0.58	0.01	340	0.6	0.6	1576

क्षेत्रफल, 10 लाख हेक्टेयर में; उत्पादन 10 लाख टनों में; उपज कि. ग्राम./हेक्टेयर

* उत्पादन दस लाख गांठों में प्रत्येक गांठ 170 कि.ग्रा.

** उत्पादन दस लाख गांठों में प्रत्येक गांठ 180 कि.ग्रा.

स्रोत : *भारत सरकार (i) आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02. (ii) भारत वार्षिक संदर्भ ग्रंथ-2002*

अवधि में इनका उत्पादन 84.1 लाख टन से बढ़कर केवल 107 लाख टन ही हुआ है। दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता जो 1950-51 में 63.8 ग्राम थी, वह घटकर (2000-01) में 28.5 ग्राम रह गई है (सारणी 9.1)।

गैर खाद्य फसलों में तिलहनों, जूट और कपास के उत्पादन में वृद्धि धीमी और रुक-रुककर हुई है, फिर भी तिलहनों के उत्पादन में असाधारण वृद्धि हुई है। इनका उत्पादन 1950-51 में केवल 51.6 लाख टन था जो बढ़कर 1998-99 में 2.47 करोड़ टन हो गया। लेकिन 2000-01 में यह घटकर 1.84 करोड़ टन ही रह गया। इसी प्रकार कपास का उत्पादन 1950-51 में 30 लाख गांठों का था, जो बढ़कर 2000-01 में 97 लाख गांठें हो गया। चाय का उत्पादन 2000-01 में 8.48 लाख टन पर पहुंच गया, जबकि 1950-51 में यह केवल 2.78 लाख टन ही था। 2000-01 में कॉफी का उत्पादन 3.01 लाख टन तथा प्राकृतिक रबड़ का उत्पादन 6.3 लाख टन था।

प्रमुख फसलों का वितरण

फसलों का वितरण सामान्यतः जलवायु से नियंत्रित होता है। परंतु प्रत्येक फसल के लिए जलवायु की अनुकूलतम दशाएं भिन्न होती हैं। भूमि का स्वरूप और मृदा भी फसलों के चयन को प्रभावित करते हैं। इन भौतिक कारकों के अलावा अन्य अनेक सामाजिक, आर्थिक और संस्थागत कारक जैसे-जोतों

का आकार और स्वामित्व, प्रौद्योगिकीय विकास, सरकार की नीतियां आदि भी कृषि को प्रभावित करते हैं। भारत में पाई जाने वाली इन भिन्नताओं के कारण ही देश के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं।

भारत की जलवायु दशाएं ऐसी हैं कि यहां सारे साल फसलें पैदा की जा सकती हैं। देश में तीन कृषि ऋतुएं हैं : खरीफ, रबी और जायद। दक्षिण पश्चिम मानसून की ऋतु (मुख्यत: उत्तर भारत में) को खरीफ की ऋतु कहा जाता है। इस ऋतु में अधिक आर्द्रता और उच्च तापमान चाहने वाली फसलें पैदा की जाती हैं। खरीफ की मुख्य फसलें हैं : चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, तुर, मूंग, उड़द, कपास, जूट, तिल, मूंगफली, सोयाबीन आदि। शीत ऋतु को रबी की ऋतु कहते हैं। इस ऋतु की मुख्य फसलें हैं : गेहूं, जौ, तोरिया और सरसों, अलसी, मसूर और चना। जायद ग्रीष्म की कृषि ऋतु है। उच्च तापमान चाहने वाली फसलें सिंचाई की सहायता से इस ऋतु में उगाई जाती हैं। तरबूज, खरबूजा, खीरा, ककड़ी, सब्जियां आदि प्रमुख जायद फसलें हैं। इस प्रकार भारत में उष्ण कटिबंधीय तथा शीतोष्ण कटिबंधीय दोनों ही प्रकार की फसलें उगाई जा सकती हैं। फिर भी फसलों के संकेंद्रण के कुछ स्पष्ट क्षेत्र हैं।

खाद्य फसलें

चावल : देश की खाद्य फसलों में चावल का प्रथम स्थान है। सन् 2000-01 में इसका कुल उत्पादन 8.49 करोड़ टन था। लेकिन 1950-51 में यह केवल 2.06 करोड़ टन ही था। सकल फसलगत क्षेत्र के 23 प्रतिशत (4.44 करोड़ हेक्टेयर) भाग में चावल उगाया जाता है। चावल के उत्पादन में संसार में भारत का दूसरा स्थान है तथा लगभग 21.5 प्रतिशत की भागीदारी है। यद्यपि हमारे देश में चावल के अंतर्गत संसार में सबसे अधिक क्षेत्र है, लेकिन उत्पादन में हमारा स्थान चीन के बाद ही है। चावल की प्रति हेक्टेयर उपज 1913 कि.ग्रा. है, लेकिन चीन में यह 6331 कि.ग्रा. है। यह सही है कि चावल की प्रति हेक्टेयर उपज में काफी वृद्धि हुई है। 1950-51 में यह 668 कि. ग्रा. थी जो 2000-01 में 1913 कि.ग्रा. हो गई है। लेकिन इस दिशा में अभी बहुत संभावनाएं हैं और इसे 3000 कि. ग्रा. हेक्टेयर तक बढ़ाया जा सकता है।

125 से.मी. से 200 से.मी. वर्षा वाले तथा 23° से. से अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में चावल सामान्य रूप से पैदा किया जाता है। कम वर्षा तथा उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में भी सिंचाई की मदद से चावल पैदा किया जा सकता है। फिर भी प्रमुख चावल उत्पादक क्षेत्र ये हैं : उत्तर-पूर्वी पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्र, गंगा के मैदान और इसका डेल्टा प्रदेश, पूर्वी तटीय मैदान, पूर्वी प्रायद्वीपीय पठार तथा पश्चिमी तटीय मैदान (चित्र 9.1)। हरियाणा, पंजाब और उत्तरांचल के तराई क्षेत्रों में चावल का उत्पादन बढ़ रहा है। आंध्र प्रदेश, पंजाब और तमिलनाडु का चावल के अंतर्गत 90 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र सिंचित है। पश्चिम बंगाल भारत का सबसे अधिक चावल पैदा करने वाला राज्य है। देश के कुल चावल उत्पादन में इसकी 14.6 प्रतिशत की भागीदारी है। पश्चिम बंगाल में चावल की खेती के लिए इतनी अच्छी जलवायु दशाएं हैं, कि यहां एक कृषि वर्ष में इसकी तीन फसलें लेना संभव है। *औस, आमन* और *बोरो* इन तीन फसलों के नाम हैं। इसके बाद उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश का दूसरा और तीसरा स्थान है। सारणी 9.2 में भारत के प्रमुख राज्यों में चावल का क्षेत्र और उत्पादन दिए गए हैं।

गेहूं : देश में क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से चावल के बाद गेहूं का दूसरा स्थान है। भारत के उत्तर पश्चिम के शुष्क भागों में उगाई जाने वाले यह रबी की प्रमुख फसल है। विगत पांच दशकों में गेहूं के क्षेत्र और उत्पादन में असाधारण तीन गुनी वृद्धि हुई है। गेहूं के अंतर्गत क्षेत्र 1950-51 में 97 लाख हेक्टेयर था, जो बढ़कर सन् 2000-01 में 2.5 करोड़ हेक्टेयर हो गया था। गेहूं के उत्पादन में ग्यारह गुनी वृद्धि हुई है। यह इसी अवधि में 65 लाख टन से बढ़कर 6.88 करोड़ टन हो गया था। उत्पादन में यह असाधारण वृद्धि गेहूं की उपज में वृद्धि का ही परिणाम था। इस अवधि में गेहूं की प्रति हेक्टेयर उपज 663 कि.ग्रा. से बढ़कर 2743 कि.ग्रा. हो गई थी। देश में हुई हरित क्रांति का सबसे अधिक लाभ गेहूं को ही मिला। 1994-95 में गेहूं की फसल के अंतर्गत कुल क्षेत्र में से 90.6 प्रतिशत क्षेत्र में गेहूं के अधिक उपज देने वाले बीज बोए गए थे तथा कुल फसलगत क्षेत्र का 85 प्रतिशत भाग सिंचित था (1997-98)।

भारत में गेहूं विभिन्न जलवायु और मृदा दशाओं में पैदा किया जाता है। इसे अधिक वर्षा की जरूरत नहीं होती है अर्थात् 75 से.मी. से अधिक वर्षा नहीं चाहिए। लेकिन पौधों की वृद्धि के लिए मृदा में पर्याप्त नमी होनी चाहिए, अच्छी उपज के लिए सिंचाई की जाती है। भारत में गेहूं के

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.4 भारत : चावल उत्पादक क्षेत्र

सारणी 9.2 — भारत : प्रमुख राज्यों में चावल का क्षेत्र और उत्पादन, 2000-01

राज्य	क्षेत्र (000 हे.)	%	उत्पादन 000 टन में	%
पश्चिम बंगाल	5435	12.3	12428	14.6
उत्तर प्रदेश	5839	13.2	11540	13.6
आंध्र प्रदेश	4028	9.1	11448	13.5
पंजाब	2611	5.9	9154	10.8
तमिलनाडु	2113	4.8	7218	8.5
बिहार	3671	8.3	5417	6.4
उड़ीसा	4434	10.0	4614	5.4
असम	2675	6.0	3999	4.7
कर्नाटक	1482	3.3	3734	4.4
छत्तीसगढ़	3598	8.1	3238	3.8
हरियाणा	1049	2.4	2684	3.2
भारत	**44359**	**100.0**	**84871**	**100.0**

दो प्रमुख क्षेत्र हैं : उत्तर पश्चिम में गंगा और सतलुज का मैदान तथा मध्यवती भाग में दक्षिण की काली मिट्टी वाला क्षेत्र (चित्र 9.5)।

दक्षिण पश्चिम मानसून के निवर्तन के बाद अक्तूबर और नवंबर में गेहूं की बुआई की जाती है तथा मार्च-अप्रैल में इसे काटा जाता है। उत्तर पश्चिमी मैदान की दोमट मिट्टी गेहूं की खेती के लिए उपयुक्त है। उत्तर भारत में शीत ऋतु में होने वाली चक्रवातीय वर्षा गेहूं की फसल के लिए बहुत लाभकारी होती है। सिंचाई की सुविधाओं से युक्त उत्तर पश्चिमी मैदानों में गेहूं की नई और संकर जाति की फसलें पैदा की जाती हैं। इन विकसित सुविधाओं के कारण ही पंजाब और हरियाणा देश में गेहूं के धान्यागार बन गए हैं। मध्य प्रदेश के पश्चिमी और मध्यवर्ती भाग, पूर्वी राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र अन्य प्रमुख गेहूं उत्पादन क्षेत्र हैं। इस प्रदेश की काली मिट्टी मृदा को सुरक्षित रखती है, जिससे गेहूं की खेती में मदद मिलती है।

उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा गेहूं उत्पादक राज्य है। सन् 2000-01 में उत्तर प्रदेश में 2.49 करोड़ टन (देश के कुल उत्पादन का 36.3%) गेहूं का उत्पादन हुआ था। गेहूं के उत्पादन में पंजाब का दूसरा स्थान है। देश के प्रमुख

सारणी 9.3 — भारत : प्रमुख राज्यों में गेहूं का क्षेत्र और उत्पादन, 2000-01

राज्य	क्षेत्र		उत्पादन	
	(000 हेक्टेयर)	%	(000 टन)	%
उत्तर प्रदेश	9170	36.6	24940	36.3
पंजाब	3408	13.6	15551	22.6
हरियाणा	2349	9.4	9651	14.0
राजस्थान	2310	9.2	5554	8.1
बिहार	2108	8.4	4497	6.5
मध्य प्रदेश	2688	10.7	3887	5.7
पश्चिम बंगाल	426	1.7	1059	1.5
महाराष्ट्र	754	3.0	948	1.4
भारत	**25068**	**100.0**	**68763**	**100.0**

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होना है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं की गई है।
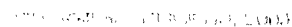
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.5 भारत : गेहूं उत्पादक क्षेत्र

राज्यों में गेहूं का क्षेत्र और उत्पादन सारणी 9.3 में दिया गया है।

ज्वार : खाद्यान्न में क्षेत्रफल की दृष्टि से ज्वार का तीसरा स्थान है। ज्वार 45 से.मी. से कम वर्षा वाले शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में उगाई जा सकती है। इसकी वृद्धि के लिए उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। यह सामान्यतः कम उपजाऊ मिट्टियों और अनिश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाई जाती है।

ज्वार रबी और खरीफ दोनों की ही फसल है। यह भारत के लगभग एक करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र (5.2%) में उगाई जाती है। विगत वर्षों में कुछ क्षेत्रों में ज्वार के स्थान पर गेहूं और सोयाबीन की खेती होने लगी है। इसी के कारण ज्वार का क्षेत्र घट गया है। भला हो, संकर बीजों का जिनकी मदद से इसका उत्पादन 1950-51 के 55 लाख टन से बढ़कर सन् 2000-01 में 77 लाख टन हो गया था।

संपूर्ण प्रायद्वीपीय भारत में ज्वार पैदा की जाती है। लेकिन इसका सबसे अधिक संकेंद्रण भारी और मध्यम वर्ग की काली मिट्टियों वाले तथा 100 से.मी. से कम वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में है। ज्वार के संपूर्ण फसलगत क्षेत्र का आधा भाग (50.1%) महाराष्ट्र में है। इस राज्य में सन् 2000-01 में देश के कुल ज्वार उत्पादन का आधे से अधिक (51.7%) भाग पैदा हुआ था। कर्नाटक (21.2%), आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और मध्य प्रदेश अन्य प्रमुख ज्वार उत्पादक राज्य हैं।

बाजरा : ज्वार की तुलना में बाजरा हल्की मिट्टियों और शुष्क क्षेत्रों मे पैदा किया जाता है। इसीलिए यह अच्छे जल निकास वाली बलुई, दोमट और उथली काली मिट्टियों में खूब पैदा किया जाता है। बाजरे की खेती के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र ये हैं : राजस्थान की मरुस्थली और अरावली की पहाड़ियां, दक्षिणी पश्चिमी हरियाणा, चंबल द्रोणी, दक्षिण पश्चिमी उत्तर प्रदेश, कच्छ, काठियावाड़, और उत्तरी गुजरात, महाराष्ट्र में पश्चिमी घाट के पवन विमुख ढाल। बाजरा वर्षापोषित खरीफ की फसल है।

देश के कुल क्षेत्र के 98 लाख हेक्टेयर (लगभग 5.0%) क्षेत्र में बाजरे की खेती की जाती है (2000-01)। विगत शताब्दी के उत्तरार्ध में बाजरे का क्षेत्रफल स्थिर बना रहा, लेकिन उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। 1950-51 में बाजरे का कुल उत्पादन 26 लाख टन था जो बढ़कर सन् 2000-01 में 58 लाख टन हो गया। राजस्थान देश का सबसे बड़ा बाजरा उत्पादक राज्य है। सन् 2000-01 में यहां 20 लाख टन बाजरा पैदा किया गया जो देश को कुल उत्पादन का 28.9% था। अन्य प्रमुख बाजरा उत्पादक राज्य ये हैं : उत्तर प्रदेश (17.5%), महाराष्ट्र (13.4%) और हरियाणा।

मक्का : देश के कुल फसलगत क्षेत्र के 3.5 प्रतिशत भाग में मक्का बोई जाती है। इसका कुल उत्पादन 1.2 करोड़ टन था (2000-01)। मक्का के क्षेत्रफल और उत्पादन दोनों में ही तेजी से वृद्धि हुई है। संकर जाति के उपज बढ़ाने वाले बीजों, उर्वरकों और सिंचाई के साधनों ने इसकी उत्पादकता बढ़ाने में सहायता की है। सन् 1951 और 2001 की अवधि में मक्का का उत्पादन दस गुना बढ़ गया है।

मक्का की खेती सारे भारत में की जाती है। मक्का के उत्पादन में कर्नाटक का पहला स्थान है। इसके बाद उत्तर प्रदेश, बिहार और आंध्र प्रदेश का स्थान है। मक्का के अन्य उत्पादक राज्य हैं– मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और हिमाचल प्रदेश।

दालें : भारतीय भोजन में दालें प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। ये फलीदार फसलें हैं तथा ये अपनी जड़ों के द्वारा मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाकर उसकी उर्वरता में वृद्धि करती है। दालों को कम नमी की आवश्यकता होती है। अतः ये शुष्क दशाओं में भी पनपती है। तुर, उड़द, मूंग और मोठ खरीफ की प्रमुख फसलें हैं तथा चना, मटर, तुर और मसूर रबी की फसलें है। दालों के फसलगत क्षेत्र में थोड़ी-सी वृद्धि हुई है। 1950-51 में दालों के अंतर्गत क्षेत्रफल 1.91 करोड़ हेक्टेयर था जो थोड़ा-सा बढ़कर सन् 2000-01 में दो करोड़ हेक्टेयर हो गया। इसी अवधि में उनका उत्पादन भी 84 लाख टन से बढ़कर 1.07 करोड़ टन हो गया।

चना : देश में दाल की प्रमुख फसल है। प्रमुख चना उत्पादक क्षेत्र ये हैं : मध्य प्रदेश का मालवा का पठार, राजस्थान का उत्तर पूर्वी भाग, और दक्षिणी उत्तर प्रदेश। पांच में से दो भाग से भी अधिक (40.8%) का उत्पादन मध्य प्रदेश में होता है। उत्तर प्रदेश (19.6%) का चने के उत्पादन में दूसरा स्थान है। तुर दाल की महत्वपूर्ण फसल है। तुर के प्रमुख उत्पादक राज्य महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश हैं। अन्य दालों के वितरण में व्यापक अंतर पाया जाता है, उत्तर प्रदेश में 22 लाख टन (20.3%) दालों का उत्पादन

हुआ था। इस प्रकार यह राज्य देश में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक था। मध्य प्रदेश (19.5%) और महाराष्ट्र (15.3%) दालों के अन्य प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

गन्ना : गन्ना एक उष्ण कटिबंधीय तथा उपोष्ण कटिबंधीय फसल है। भारत को गन्ने का मूल स्थान माना जाता है। यह एक बारहमासी फसल है। इसके लिए अच्छे जल निकास वाली भूमि, भारी दोमट उर्वर मिट्‌टी, भारी मात्रा में नमी की आपूर्ति, पाला रहित मौसम और बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। यद्यपि दक्षिण भारत में तापमान की दशाएं गन्ने की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है तथापि नमी के कारण यह यहां की सामान्य फसल नहीं है। केरल के तटीय मैदान जलवायु की दृष्टि से गन्ने की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है, यहां भूमि का मुख्य उपयोग धान और उद्यान कृषि की फसलों के लिए किया जाता है। यही नहीं, गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टा प्रदेश सिंचाई की सुविधाओं और उर्वर जलोढ़ मृदा के कारण गन्ने के लिए बहुत उपयुक्त है लेकिन यहां प्राय: आने वाले चक्रवात गन्ने की फसल को नष्ट कर देते हैं।

गन्ना एक सिंचित फसल है। प्राय:द्वीपीय भारत की तुलना में उत्तरी मैदानों में सिंचाई कम लागत में और आसानी से हो जाती है। अत: गन्ने के प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों का संकेंद्रण उत्तरी उपोष्ण कटिबंधीय भागों में हो गया है।

प्रमुख गन्ना उत्पादक राज्य ये हैं : महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश (चित्र 9.6)। इन राज्यों में गन्ने की खेती के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल 15.5 लाख हेक्टेयर है। यह देश में गन्ने के कुल क्षेत्रफल एक तिहाई से अधिक (36.1%) है। इन राज्यों में देश का लगभग आधा (48.5 %) गन्ना पैदा किया जाता है। दक्षिणी राज्यों में गन्ने की प्रति हेक्टेयर उपज उत्तरी राज्यों की अपेक्षा अधिक है। तमिलनाडु में यह 106 टन तथा कर्नाटक में 101 टन है। बिहार में गन्ने की प्रति हेक्टेयर उपज 41.7 टन तथा उत्तर प्रदेश में 57.4 टन है। इसी के परिणामस्वरूप गन्ने का उत्पादन 5.02 करोड़ टन होते हुए भी महाराष्ट्र देश में गन्ने के उत्पादन में दूसरे स्थान पर और कर्नाटक तीसरे स्थान पर है। कर्नाटक में 2000-01 में 4.3 करोड़ टन गन्ना पैदा हुआ था। उत्तर भारत के प्रमुख गन्ना उत्पादक क्षेत्र सतलुज यमुना मैदान, और ऊपरी व मध्य गंगा के मैदान में स्थित पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार है। यहां गन्ने का कुल उत्पादन 10.66 करोड़ टन था जो देश के कुल उत्पादन का 35.6% था। उत्तर भारत में गुजरात, उत्तर प्रदेश के बाद दूसरे स्थान पर है। यहां गन्ने का कुल उत्पादन 1.27 करोड़ टन था जो देश के कुल उत्पादन का 4.2 प्रतिशत था। भारत संसार में गन्ने का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। इसका संसार के कुल उत्पादन में 21.3 प्रतिशत (1997) का योगदान है।

उद्‌यान कृषि की फसलें

कृषि जलवायु विषयक दशाओं में विविधता के कारण भारत में विभिन्न प्रकार की उद्‌यान कृषि की फसलें उगाई जाती हैं। ऐसी फसलों में प्रमुख हैं– फल, सब्जियां, कंद फसलें, शोभाकारी फसलें, औषधीय पौधे और सुगंधित पौधे तथा मसाले। भारत संसार में फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। संसार में आम, केले, चीकू और नींबू के उत्पादन में भारत अग्रणी है। भारत में आम की अनेक किस्में उगाई जाती हैं। आम के उत्पादन में उत्तर प्रदेश का मुख्य स्थान है। नागपुर के संतरे बहुत प्रसिद्‌ध हैं। तमिलनाडु, महाराष्ट्र और अन्य दक्षिण भारतीय राज्य अपने केलों के लिए प्रसिद्‌ध हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार की लीची और अमरूद की भी खूब ख्याति है। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में अंगूर का उत्पादन बहुत बढ़ा है। कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के सेब, नाशपाती, खूबानी, अखरोट और अन्य फलों की बड़ी भारी मांग है। भारतीय मसालों में काली मिर्च केरल के पश्चिमी घाट में सीमित है, लेकिन अदरक पूर्वी राज्यों में भी पैदा होता है। भारत काजू का सबसे बड़ा निर्यातक है। भारत में 2000-01 में काजू का उत्पादन 5.2 लाख टन था, जो संसार के कुल उत्पादन का 40% था। केरल, तमिलनाडु, और आंध्र प्रदेश काजू के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। भारत संसार का सबसे अधिक नारियल उत्पादक देश बन गया है। नारियल के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं : केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक। सन् 2000-01 में नारियल के अंतर्गत कुल क्षेत्रफल 18 लाख हेक्टेयर और उत्पादन 126 अरब नारियल (फल) थे।

तिलहन : आजकल 2.32 करोड़ हेक्टेयर भूमि में नौ प्रमुख तिलहनों की खेती की जाती है जो देश के कुल फसलगत क्षेत्र का 12 प्रतिशत है। सन् 1950-51 में 1.07 करोड़ हेक्टेयर भूमि तिलहनों की फसलों के अंतर्गत थी। विगत 50 वर्षों में तिलहनों का उत्पादन 51.6 लाख

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.6 भारत : गन्ना उत्पादक क्षेत्र

टन से बढ़ कर 1.84 करोड़ टन हो गया है। प्रमुख तिलहन ये हैं : सोयाबीन (71 लाख टन 1999-00), तोरिया और सरसों (42 लाख टन), मूंगफली (62 लाख टन)। मध्यप्रदेश सोयाबीन का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। सन् 2000-01 में मध्यप्रदेश में 44.5 लाख टन सोयाबीन का उत्पादन हुआ, जो देश के कुल उत्पादन का 65.54 प्रतिशत था। महाराष्ट्र (16.2 लाख टन) और राजस्थान (6 लाख टन) अन्य उत्पादक राज्य हैं।

भारत संसार में मूंगफली की दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। आंध्र प्रदेश मूंगफली का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। इसमें सन् 2000-01 में 20 लाख टन का उत्पादन हुआ, जो राष्ट्रीय उत्पादन का 32.7 प्रतिशत था। मूंगफली के अन्य उत्पादक राज्य हैं : तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात और महाराष्ट्र। तोरिया और सरसों रबी की फसलें हैं। राजस्थान में 2000-01 में इनका उत्पादन 13 लाख टन था, जो राष्ट्रीय उत्पादन का 31.2% था। उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और हरियाणा अन्य उत्पादक हैं।

रोपण फसलें

चाय : भारत संसार में चाय का सबसे बड़ा उत्पादक तथा उपभोक्ता है। यहां संसार की 28 प्रतिशत चाय पैदा होती है। अंतर्राष्ट्रीय चाय व्यापार में भारत की 15 प्रतिशत की भागीदारी है। चाय के उत्पादन में तीन गुनी वृद्धि हुई है। 1950-51 में चाय का उत्पादन तीन लाख टन था जो बढ़कर 2000-01 में लगभग 8 लाख टन हो गया। आजकल 4.35 करोड़ हेक्टेयर भूमि में चाय की खेती होती है। चाय के बागान लगाने का प्रारंभ असम की ब्रह्मपुत्र घाटी में सन् 1840 के दशक में हुआ। असम आज भी चाय का प्रमुख उत्पादक बना हुआ है। आजकल चाय मुख्य रूप से उत्तर पूर्वी भारत और दक्षिण में पैदा की जाती है।

चाय का आधे से अधिक क्षेत्र असम की ब्रह्मपुत्र घाटी में फैला है (सारणी 9.4)। इस घाटी में चाय बागानों के लिए अनुकूल दशाएं ये है : अधिक वर्षा तथा उच्च तापमान, अच्छे जल निकास वाली भूमि, तथा दोमट मिट्टी। पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग, जलपाइगुड़ी, और कूच बिहार प्रमुख चाय उत्पादक जिले हैं। दक्षिण भारत में चाय तमिलनाडु और केरल में पश्चिम घाट के निचले ढालों पर, नीलगिरि और कार्डामम पहाड़ियों पर उगाई जाती है। हिमाचल प्रदेश में शिवालिक की पहाड़ियों के ढालों पर और उत्तरांचल की दून घाटी में भी थोड़ी चाय पैदा की जाती है।

सारणी 9.4 — भारत : चाय का क्षेत्रफल और उत्पादन, 2000-01

राज्य	क्षेत्रफल 000 हे.	%	उत्पादन 000 टन	%
असम	232	53.2	414	51.4
पश्चिमी बंगाल	103	23.6	180	22.4
तमिलनाडु	51	11.7	128	15.9
केरल	37	.8.5	068	8.4
भारत	**436**	**100.0**	**805**	**100,0**

चाय के निर्यात में चीन और श्रीलंका के बाद भारत का तीसरा स्थान है। चाय के निर्यात में भारत का महत्व घट रहा है। 1951 में चाय के निर्यात व्यापार में 45 प्रतिशत की भागीदारी थी, जो घटकर 1997 में 15.7 प्रतिशत ही रह गई।

कॉफी : भारत संसार की 4 प्रतिशत कॉफी का उत्पादन करता है। भारत में कॉफी का व्यापारिक उत्पादन सन् 1820 के आस-पास हुआ था। 1950-51 में इसका उत्पादन 24.6 हजार टन था, जो 2000-01 में 3.01 लाख टन हो गया। कॉफी के बागान 3.05 लाख हेक्टेयर भूमि पर लगाए गए हैं। भारतीय कॉफी की गुणवत्ता बहुत ऊंची मानी जाती है। देश में पैदा की गई रोबस्टा और अरेबिका किस्मों की सारे संसार में भारी मांग है। 1990-91 में भारत ने एक लाख टन कॉफी का निर्यात किया था, जो बढ़कर सन् 2000-01 में तीन लाख टन से कुछ अधिक हो गया था। कर्नाटक में देश के कुल फसलगत क्षेत्र के 58 प्रतिशत भाग में कॉफी के बागान थे। राष्ट्रीय उत्पादन में इस राज्य का 70 प्रतिशत का योगदान था। केरल में देश का 23.6 प्रतिशत और तमिलनाडु में 5.6 प्रतिशत उत्पादन हुआ। तमिलनाडु में नीलगिरि पर कॉफी के बागान हैं। कॉफी के बागान अनेक अन्य राज्यों में भी लगाए जा रहे हैं।

रबड़ : ट्रावनकोर और मलाबार क्षेत्र में पहली बार सन् 1880 के दशक में रबड़ के बागान लगाए गए थे। लेकिन व्यापारिक उत्पादन सन् 1902 में शुरू हुआ। आजकल 4 लाख हेक्टेयर भूमि पर रबड़ के बागान हैं। 2000-01 में रबड़ का कुल उत्पादन 6.3 लाख टन था। यह संसार में कुल रबड़ के उत्पादन का 8% था। संसार के रबड़ उत्पादक देशों में भारत का चौथा स्थान है। रबड़ की खेती

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.7 भारत : चाय और कहवा उत्पादक क्षेत्र

मुख्य रूप से केरल और तमिलनाडु में होती है। रबड़ का 85% क्षेत्र केरल में तथा 4% तमिलनाडु में है। शेष क्षेत्र कर्नाटक और अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में है। ये रबड़ के अन्य उत्पादक हैं।

रेशेदार फसलें

कपास : कपास एक बहु-उपयोगी प्राकृतिक रेशा है। सूती वस्त्रों के निर्माण में कच्चे माल के रूप मे कपास का बहुत अधिक महत्त्व है। कपास की खेती के लिए ये दशाएं अनुकूल होती हैं : उच्च तापमान, हल्की वर्षा या सिंचाई, पाला रहित मौसम, तथा चमकीली धूप। भारत में कपास की खेती 60 से 85 से.मी. वार्षिक औसत वर्षा वाले क्षेत्रों तक ही सीमित है। कम वर्षा वाले क्षेत्र पंजाब में यह सिंचित फसल है। कपास पारंपरिक रूप से दकन के पठार की कपास वाली काली मिट्टी में पैदा की जाती रही है।

भारत संसार में कपास का तीसरा बड़ा उत्पादक देश है तथा उत्पादन में इस का सहयोग 14 प्रतिशत का है। सन् 1950-51 में कपास का 30.4 लाख गांठों का उत्पादन हुआ था। लेकिन 2000-01 में उत्पादन बढ़कर 97 लाख गांठें हो गया। प्रति हेक्टयर उपज में तीव्र वृद्धि के कारण ही कुल उत्पादन में वृद्धि संभव हो सकी। इस अवधि में कपास की प्रति हेक्टेयर उपज 88 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर से बढ़ कर 191 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर हो गई।

कपास के प्रमुख उत्पादक क्षेत्र ये हैं : (i) गुजरात के मैदान और (गुजरात) काठियावाड़, (ii) महाराष्ट्र में पश्चिमी घाट के पूर्व में पठारी प्रदेश, (iii) पश्चिमी मध्य प्रदेश और नर्मदा घाटी, (iv) दक्षिणी कर्नाटक और पश्चिमी आंध्र प्रदेश, (v) दक्षिणी तमिलनाडु, (vi) पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश। क्षेत्रफल और उत्पादन दोनों की दृष्टि से महाराष्ट्र का प्रथम स्थान है। कपास के उत्पादन में राज्यों की भागीदारी इस प्रकार है : महाराष्ट्र 17.2%, हरियाणा 14.3%, पंजाब 12.4%, गुजरात 12%, कर्नाटक 10.2%। तमिलनाडु और मध्य प्रदेश अन्य महत्त्वपूर्ण उत्पादक हैं। भारतीय कपास छोटे रेशे वाली किस्म की होती है।

जूट : जूट का उपयोग टाट, बोरे आदि बनाने के लिए किया जाता है। इसके लिए कोष्ण और आर्द्र जलवायु तथा अच्छे जल निकास वाली उपजाऊ मृदा उपयुक्त होती है। यह पश्चिम बंगाल, असम घाटी, उत्तरी बिहार और उड़ीसा के महानदी डेल्टा में पैदा किया जाता है (चित्र 9.8)।

सन् 2000-01 में जूट का कुल उत्पादन 93 लाख गांठ था (एक गांठ 180 कि.ग्रा.)। भारत में संसार का आधे से अधिक जूट पैदा किया जाता है। पश्चिम बंगाल का उत्पादन 74 लाख गांठों का है, जो देश के कुल उत्पादन का लगभग 85 प्रतिशत है।

कृषि में आधुनिक विकास

भारतीय कृषि में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन 1960 के दशक में प्रारंभ हुए जब किसान निम्नलिखित आधुनिक निवेशों का उपयोग करने लायक बन गया : बीजों की अधिक उपज देने वाली किस्में, उर्वरक, मशीनीकरण, ऋण, और विपणन सुविधाएं। केंद्र सरकार ने 1960 में गहन क्षेत्रविकास कार्यक्रम शुरु किया था। मैक्सिको में विकसित अधिक उपज देने वाले गेहूं के बीज तथा फिलीपिन्स में विकसित चावल के बीज भारत लाए गए थे। अधिक उपज देने वाले बीजों के अलावा, रासायनिक उर्वरक, और पीड़कनाशियों का उपयोग भी शुरू किया गया तथा सिंचाई की सुविधाओं में सुधार और विस्तार किया गया। इन सबके संयुक्त प्रभाव को हरित क्रांति के नाम से जाना जाता है। हरित क्रांति के प्रमुख घटकों का वितरण नीचे दिया गया है।

> ***हरित क्रांति किस कीमत पर***
>
> *यद्यपि हरित क्रांति ने देश में खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाया, लेकिन ये सब सिंचाई के लिए पानी, उर्वरकों तथा अन्य निवेशों के गहन उपयोग की कीमत पर ही संभव हो सका। इसके परिणामस्वरूप मृदा लवणीकरण, भौम जल प्रदूषण, पोषक असंतुलन, नए पीड़कों और रोगों का जन्म, तथा पर्यावरणीय ह्रास जैसी गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं।*

सिंचाई : अधिक उपज देने वाली फसलों की खेती सुनिश्चित जल आपूर्ति वाले क्षेत्रों में ही शुरू की गई थी। देश की सिंचाई क्षमता में बहुत वृद्धि हुई है। 1950-51 में कुल सिंचित क्षेत्र 2.26 करोड़ हेक्टेयर था, जो बढ़कर 1965-66 में 3.22 करोड़ हेक्टेयर हुआ और 2000-01 में 8.47 करोड़ हेक्टेयर हो गया। रासायनिक उर्वरकों और अधिक उपज देने वाले बीजों के साथ मिलकर सिंचाई की विस्तृत सुविधाओं के उपयोग से कृषि का उत्पादन और उत्पादकता दोनों में ही पर्याप्त वृद्धि हुई।

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 9.8 भारत : कपास और जूट उत्पादक क्षेत्र

बीजों की अधिक उपज देने वाली किस्में : गेहूं, ज्वार और मक्का के बीजों की अधिक उपज देने वाली किस्मों के व्यापक उपयोग से इनके उत्पादन में, असाधारण वृद्धि हुई। 1966-67 में अधिक उपज देने वाले बीजों की किस्मों को 18.9 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में बोया गया था। 1994-95 में यह क्षेत्र बढ़कर 7.13 करोड़ हेक्टेयर हो गया। 1966-67 में केवल 5.4 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में ही गेहूं के अधिक उपज देने वाले बीज बोए गए, लेकिन 1994-95 में इन उन्नत बीजों की बुआई का क्षेत्र बढ़कर 2.32 करोड़ हेक्टेयर हो गया। सन् 2000-01 में गेहूं के कुल फसलगत क्षेत्र में 90.6 प्रतिशत क्षेत्र गेहूं के उन्नत बीजों के अंतर्गत था। लेकिन चावल, ज्वार, मक्का और बाजरा के उन्नत बीजों के उपयोग की प्रगति कम उत्साहजनक रही। 1966-67 में चावल के उन्नत बीज 8.8 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में बोए गए थे, जो बढ़कर 1995-96 में 3.1 करोड़ हेक्टेयर हो गया। (चावल के सकल फसलगत क्षेत्र का 73.5 प्रतिशत)। गेहूं की 3000 अधिक उपज देने वाली संकर किस्मों, मक्का की 130 किस्में और दालों की 430 से अधिक किस्में उपयोग में लाई गई हैं।

उर्वरक : उर्वरकों का उपयोग हरित क्रांति का अभिन्न घटक है। स्वतंत्रता के बाद उर्वरकों के उत्पादन और उपभोग में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। सभी प्रकार के उर्वरकों का कुल उपयोग 1965-66 में 7.6 लाख टन (5.05 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) था, जो बढ़कर 2000-01 में 1.81 करोड़ टन हो गया तथा प्रति हेक्टेयर उपभोग 95 कि.ग्रा तक बढ़ गया। विभिन्न राज्यों की उर्वरकों की मात्रा के उपयोग की दृष्टि से स्थिति इस प्रकार है : 184 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर के साथ पंजाब प्रथम स्थान पर, इसके बाद तमिलनाडु (163 कि.ग्रा.) और आंध्र प्रदेश (158 कि.ग्रा.) का स्थान है। उड़ीसा में उर्वरकों का उपयोग 44 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है, जो सबसे कम है। रासायनिक उर्वरकों और पीड़कनाशकों के उपयोग से कृषि उत्पादन में तो वृद्धि हुई है, लेकिन इससे भूमि और जल इस सीमा तक प्रदूषित हो गए हैं कि स्वास्थ्य के लिए संकटकालीन स्थिति पैदा हो गई है। इस प्रकार उर्वरक कल्पना के अनुसार वरदान सिद्ध नहीं हुए हैं।

कृषि का मशीनीकरण : भारत में कृषि के पारंपरिक तरीकों का आज भी उपयोग हो रहा है। कृषि के बड़े पैमाने पर मशीनीकरण में ये बाधाएं हैं : भूमि पर जनसंख्या का भारी दबाव, छोटी और छितरी हुई जोतें, किसानों की गरीबी और मशीनों को खरीदने के लिए पूंजी का अभाव, सस्ते श्रमिक, डीजल और बिजली की अधिक कीमत। फिर भी हरित क्रांति के बाद से भारतीय कृषि में मशीनों का उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। ट्रैक्टरों की संख्या बढ़ी है। 1961 में 100 हेक्टेयर पर 0.2 ट्रैक्टर थे, जो 1988 में 5.95 हो गए। इसी समय डीजल चालित और विद्युत चालित पंप सेट 1.35 से लगभग 40 हो गए हैं। इसी के परिणामस्वरूप कृषि में ऊर्जा उपयोग जो 1961 में 5.5 किलोवाट प्रतिघंटा था, 1987 में 156.7 कि.वा. प्रतिघंटा हो गया था। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कृषि में मशीनीकरण की प्रगति आश्चर्यजनक रही है।

हरित क्रांति की उपलब्धियां

हरित क्रांति की सबसे अधिक उल्लेखनीय उपलब्धि खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता में भारी वृद्धि है। खाद्यान्नों का उत्पादन 1965-66 में 7.2 करोड़ टन था जो 2000-01 में 19.8 करोड़ टन हो गया। 1965-66 की तुलना में खाद्यान्नों के उत्पादन में यह 175 प्रतिशत की वृद्धि थी। अनाज और ज्वार-बाजरा के उत्पादन में सबसे अधिक वृद्धि 197 प्रतिशत की थी। दालों के उत्पादन में जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में वृद्धि नहीं हुई। इसी अवधि में दालों का उत्पादन 99 लाख टन (1965-66) से बढ़कर 1.07 करोड़ टन (2000-01) तथा तिलहनों का उत्पादन 1.21 करोड़ टन (1965-66) से बढ़कर 1.84 करोड़ टन (2000-01) हो गया। अनाजों में भी गेहूं के उत्पादन में 6 गुनी से भी अधिक (562%) वृद्धि दर्ज की गई। इस का उत्पादन 1965-66 में 1.04 करोड़ टन था, जो बढ़कर 2000-01 में 6.88 करोड़ टन हो गया। लेकिन चावल में लगभग तीन गुनी वृद्धि हुई। इसका उत्पादन 3.06 करोड़ टन से बढ़कर 8.49 करोड़ टन हो गया। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि हरित क्रांति का सबसे अधिक लाभ गेहूं की खेती को मिला है। घरेलू उत्पादन में वृद्धि के परिणामस्वरूप खाद्यान्नों का आयात घटते-घटते अब बिल्कुल समाप्त हो गया है। 1965 में खाद्यान्नों का आयात 1.03 करोड़ टन था जो घटकर 1983-84 में केवल 24 लाख टन रह गया। 2000-01 में खाद्यान्नों का कोई आयात नही हुआ।

भारतीय कृषि की समस्याएं

यद्यपि कृषि के विकास के लिए बहुत अधिक प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन संसार के विकसित देशों की तुलना में हमारी कृषि की उत्पादकता अब भी कम है। इस परिस्थिति के लिए अनेक कारक संयुक्त रूप से जिम्मेदार हैं। इनको चार वर्गों में बांटा गया है : (i) पर्यावरणीय, (ii) आर्थिक, (iii) संस्थागत, (iv) प्रौद्योगिकीय।

(i) ***पर्यावरणीय कारक :*** सबसे गंभीर समस्या मानसून का अनिश्चित स्वरूप है। तापमान तो सारे साल ही ऊंचे रहते हैं। अत: यदि नियमित रूप में जल की पर्याप्त आपूर्ति होती रहे तो पूरे वर्ष फसलें पैदा की जा सकती हैं। लेकिन ऐसा संभव नहीं है क्योंकि देश के अधिकतर भागों में वर्षा केवल 3 या 4 महीनों में ही होती है। यही नहीं वर्षा की मात्रा तथा ऋतुनिष्ठ और प्रादेशिक वितरण अत्यधिक परिवर्तनशील है। इस परिस्थिति का कृषि के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जहां तक वर्षा का संबंध है, देश के अधिकतर भाग, उपार्द्र, अर्ध शुष्क और शुष्क हैं। इन क्षेत्रों में अक्सर सूखा पड़ता रहता है। सिंचाई की सुविधाओं के विकास और वर्षा जल संग्रहण के द्वारा इन प्रदेशों की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

(ii) ***आर्थिक कारक :*** कृषि में निवेश जैसे अधिक उपज देने वाले बीज, उर्वरक आदि, और परिवहन की सुविधाएं आर्थिक कारक हैं। विपणन सुविधाओं की कमी या उचित ब्याज पर ऋण का न मिलने के कारण किसान कृषि के विकास के लिए आवश्यक संसाधन नहीं जुटा पाता है। इसका परिणाम होता है– निम्न उत्पादकता। सच्चाई तो यह है कि भूमि पर जनसंख्या का दबाव दिनों-दिन बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति फसलगत भूमि में कमी हो रही है। 1921 में यह 0.444 हेक्टेयर, 1961 में 0.296 हेक्टेयर तथा और भी घटकर 1991 में 0.219 हेक्टेयर रह गई है। जोतों के छोटे होने के कारण निवेश की क्षमता भी कम है।

(iii) ***संस्थागत कारक :*** जनसंख्या के दबाव के कारण जोतों का उपविभाजन (पीढ़ियों के अनुसार बंटवारा) और छितराव हो रहा है। 1961-62 में कुल जोतों में से 52% जोतें सीमांत आकार में (दो हेक्टेयर से कम) और छोटी थीं। 1990-91 में कुल जोतों में छोटी जोतों का प्रतिशत बढ़कर 78 हो गया। इन छोटी जोतों में भी छोटे-छोटे खेत दूर-दूर बिखरे हैं। जोतों का अनार्थिक होना (आर्थिक दृष्टि से अनुपयुक्त आकार) कृषि के आधुनिकीकरण की प्रमुख बाधा है। भूमि के स्वामित्व की व्यवस्था बड़े पैमाने पर निवेश के अनुकूल नहीं है, क्योंकि काश्तकारी की अवधि अनिश्चित बनी रहती है।

(iv) ***प्रौद्योगिकीय कारक :*** कृषि के तरीके पुराने और अक्षम हैं। अधिकतर किसान आज भी लकड़ी का हल और बैलों का ही उपयोग करते हैं। मशीनीकरण बहुत सीमित है। उर्वरकों और अधिक उपज देने वाले बीजों का उपयोग भी सीमित है। फसलगत क्षेत्र के केवल एक तिहाई क्षेत्र के लिए ही सिंचाई की सुविधाएं जुटाई जा सकी हैं। इसका वितरण वर्षा की कमी और परिवर्तनशीलता के अनुरूप नहीं है। ये दशाएं कृषि की उत्पादकता और इसकी गहनता को निम्न स्तर पर बनाए हुए हैं।

> ***जैव प्रौद्योगिकी और जीन क्रांति***
>
> *अब एक और नई क्रांति की चर्चा है। यह है जीन-क्रांति जो जैव प्रौद्योगिकी की देन है। इसके द्वारा हरित क्रांति की थकान मिटाकर नई स्फूर्ति लाई जा सकती है और भारत की खाद्य सुरक्षा का समाधान किया जा सकता है। जैव प्रौद्योगिकी कृषि की अनोखी समस्याओं को हल कर सकती है तथा कृषि उत्पादों के मूल्य (गुणवत्ता) में वृद्धि कर सकती हैं।*

भूमंडलीकरण और भारतीय कृषि

किसी देश की अर्थव्यवस्था का संसार की अर्थव्यवस्था के साथ समन्वय ही भूमंडलीकरण है। भूमंडलीकरण के द्वारा भारतीय बाजार संसार के लिए खुल गए हैं। इसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर सरकारी नियंत्रण कम हुआ है तथा आयात और निर्यात से संबंधित नीतियों में उदारता आ गई है। अब कृषि उत्पादों समेत अन्य विदेशी उत्पादों का भारत में आयात किया जा सकता है। भारत भी कुछ उत्पाद अन्य देशों को भेज सकता है।

बंधन मुक्त व्यापार में वस्तु की कीमत और गुणवत्ता प्रतिस्पर्धात्मक हो जाती है। यदि किसी फसल की लागत

ऊंची है, तो व्यापारी इसे कम कीमत पर अन्य देशों से आयात करके राष्ट्रीय बाजार में बेच सकते हैं। इससे भारतीय कृषि में गतिहीनता आ सकती है तथा यह पिछड़ भी सकती है या अवनति भी हो सकती है। इस नीति का स्वाभाविक तकाजा है कि विभिन्न फसलों की उत्पादन लागत घटाई जाए। यह न केवल विश्व बाजार में प्रतिस्पर्द्धा का सामना कर सके अपितु दूसरों से बढ़कर हो। क्या भारतीय कृषि अपने वर्तमान रूप में विकसित देशों की अत्यधिक पोषित और संवर्धित कृषि का मुकाबला कर सकेगी? उनकी प्रति हेक्टेयर उपज हमारे देश की उपज से बहुत अधिक है। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अनेक उत्पादों की कीमतें गिर रही हैं, जबकि भारतीय बाजारों में ये बढ़ रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कीमतों में गिरावट के दो कारण हैं: (i) जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तीव्र विकास, जिसके परिणामस्वरूप विकसित देशों में किसानों को अत्यधिक उपज देने वाले बीज उपलब्ध कराए जा रहे हैं। (ii) परिष्कृत कृषि यंत्रों के उपयोग के द्वारा उत्पादन लागत काफी घट गई है। इन के साथ-साथ विकसित देशों में किसानों को भारी अनुदान दिए जाते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन लागत घट जाती है। विश्व व्यापार समझौते के अनुसार सभी देशों को कृषि क्षेत्र में दिए जाने वाले भारी अनुदान बंद करने पड़ेंगे। अन्य देशों से आयात के मध्य दीवार बनकर खड़े सीमा शुल्क को नीचे लाना पड़ेगा।

विश्व बाजार की प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने के लिए भारत को अपनी कृषि की विशाल संभावनाओं का व्यवस्थित और नियोजित तरीके से उपयोग करना होगा। हमें भी कुछ वैसी ही तकनीकें विकसित करनी होंगी जिनका उपयोग विकसित देश आजकल कर रहे हैं। जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग के अलावा देश में कृषि उत्पादों के लिए एक बंधन मुक्त और एकीकृत राष्ट्रीय बाजार बनाने का कार्य सही दिशा में उठाया गया कदम होगा। इस कदम को उठाने के लिए हमें एक सुगठित अवसंरचना की जरूरत होगी, जिसमें किसानों और व्यापारियों के लिए सड़कें, बिजली, सिंचाई और ऋण की सुविधाएं होंगी।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   (i) भारत में कृषि का क्या महत्व है?
   (ii) शस्य गहनता का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
   (iii) कारण सहित पांच प्रमुख चावल उत्पादक राज्यों के नाम बताइए।
   (iv) भारत में गन्ने के वितरण का वर्णन कीजिए।
   (v) भारत में उद्यान कृषि की फसलों के वितरण प्रतिरूप का वर्णन कीजिए।
   (vi) भारत में चाय और कॉफी के वितरण का वर्णन कीजिए।
   (vii) हरित क्रांति की उपलब्धियां क्या हैं?
   (viii) कारण सहित भारत के पांच बड़े गेहूं उत्पादक राज्यों के नाम बताइए।
2. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) आर्द्र भूमि और शुष्क भूमि कृषि।
   (ii) खरीफ और रबी की फसलें।
   (iii) खाद्यान्न और खाद्य फसलें।
3. भारत में कृषि के नवीनतम हुए विकास का वर्णन कीजिए।
4. "उल्लेखनीय विकास के बावजूद, भारतीय कृषि अनेक समस्याओं से ग्रस्त है।" व्याख्या कीजिए।
5. भारतीय कृषि पर भूमंडलीकरण के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

परियोजना कार्य

6. (i) अपने घर में उपभोग की महत्वपूर्ण वस्तुओं के नाम लिखिए।
   (ii) उन फसलों के नाम बताइए, जिनसे ये वस्तुएं ली गई हैं।
   (iii) उपभोग की प्रत्येक वस्तु के विकल्प का नाम बताइए।
   (iv) इन वस्तुओं के उत्पादक राज्यों के नाम बताइए।

10 अध्याय

खनिज और शक्ति के संसाधन

विशाल आकार तथा विविध प्रकार की भू-वैज्ञानिक संरचनाओं के कारण भारत में औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण खनिजों के बहुत बड़े और उत्तम कोटि के भंडार पाए जाते हैं। उच्च कोटि के लौह-अयस्क के भंडारों के अलावा भारत में अनेक प्रकार के उच्च कोटि की गुणवत्ता वाले निम्न खनिज पाए जाते हैं : मिश्रधातु खनिज जैसे मैंगनीज, क्रोमाइट और टिटैनियम के काफी बड़े भंडार; गालक खनिज जैसे चूने का पत्थर डोलोमाइट, जिप्सम आदि, ऊष्मसह जैसे मैग्नेसाइट, क्यानाइट और सिलिमेनाइट। लेकिन भारत में कुछ अलौह खनिजों जैसे–तांबा, सीसा, जस्ता, टिन, ग्रेफाइट, टंग्सटन और पारे की अपेक्षाकृत कमी है। बॉक्साइट और अभ्रक का पर्याप्त भंडार है। भारत में रासायनिक उर्वरक उद्योगों में काम आने वाले खनिजों जैसे गंधक, पोटाश और शैल फास्फेट की भी कमी है। बिटूमिनस कोयले के भारत मे विशाल भंडार हैं, लेकिन देश में कोर्किंग कोयले और पैट्रोलियम का अभाव है। फिर भी परमाणु खनिजों जैसे– यूरेनियम और थोरियम के संदर्भ में भारत की स्थिति काफी सुदृढ़ है।

भारत के खनिज संसाधन

भारत में लगभग 100 खनिज पाए जाते हैं। इनमें 30 खनिज आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कोयला, लौह-अयस्क, मैंगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट आदि ऐसे ही खनिज हैं। लेकिन देश की आवश्यकताओं को देखते हुए, औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कुछ खनिज संसाधन अपेक्षाकृत कम मात्रा में पाए जाते हैं। देश के खनिज संसाधनों की खोज और विकास में कई संगठन लगे हुए हैं। इनमें से कुछ संगठन ये हैं : भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण, भारतीय खान ब्यूरो, खनिज अन्वेषण निगम लिमिटेड। इन संस्थाओं द्वारा प्रमुख खनिजों के अनुमानित भंडार सारणी 10.1 में दिए गए हैं।

सारणी 10.1 **— भारत : प्रमुख खनिजों के भंडार और उत्पादन**

(भंडार दस लाख टनों में और उत्पादन हजार टनों में)

खनिज	*भंडार 2000*	*उत्पादन 1999-2000*	*उत्पादन 2000-2001*
कोयला	213,905.5	309620	304103
लिगनाइट	34168	23552	22124
पैट्रोलियम	17000	32426	31949
प्राकृतिक गैस	692 अघमी	27860 कघमी	26885 कघमी
बॉक्साइट	2953	7893.1	7049.9
क्रोमाइट	90.23	1951.6	1737.9
तांबा अयस्क	537.86	3483	3084.8
सोना	17.79	439.6	569.8
लौह-अयस्क	13460	79210	74946
मैंगनीज	161	1556.4	1585.7
डोलोमाइट	4387	2964.3	2815.4
जिप्सम	238	2706.9	3247
चूने का पत्थर	75679	126070	128787
मैग्नेसाइट	245	317	326

अघमी - अरब घन मीटर, कघमी - करोड़ घन मीटर

स्रोत : भारत - 2002

खनिज संसाधन

देश में प्राचीन काल से खनिज संसाधनों और उनके उपयोग का ज्ञान है। 18वीं से 20वीं शताब्दी के दौरान औद्योगिक क्रांति ने खनिजों की मांग में असाधारण वृद्धि कर दी है। अंग्रेजों के शासन में भारत में बहुत कम उद्योग थे। अत: 1947 तक अधिकतर खनिजों का निर्यात कर दिया जाता था। स्वतंत्रता के बाद न केवल अनेक खनिज खोजे गए हैं, अपितु देश में औद्योगिक मांग के अनुरूप खनिजों का उत्पादन भी बढ़ा है। इसी के परिणामस्वरूप खनिजों के कुल मूल्य में भी वृद्धि हुई है। 1951 में देश में निकाले गए खनिजों का मूल्य केवल 89.2 करोड़ रुपए था। इसके विपरीत 1999-

2000 में निकाले गए खनिजों का मूल्य 5.30 अरब रुपए और 2001-02 में 4.80 अरब रुपए था। पिछले पचास वर्षों में खनिजों के मूल्य में 5.38 गुनी वृद्धि हुई।

2000-01 में जितना भी खनिज उत्पादन हुआ उसमें से खनिज ईंधनों (कोयला, लिग्नाइट, पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस) की खनिजों के कुल मूल्य में भागीदारी 88.87 प्रतिशत की थी। इनके बाद क्रमश: धात्विक खनिजों (7.26 प्रतिशत) और अधात्विक खनिजों (3.86 प्रतिशत) का स्थान था। धात्विक खनन क्षेत्र में लौह अयस्क, क्रोमाइट, तांबा, सोना, जस्ता, मैंगनीज और बॉक्साइट महत्वपूर्ण खनिज हैं। अलग-अलग अधात्विक वर्ग में प्रमुख खनिज हैं–चूने का पत्थर, फोस्फोराइट, डोलोमाइट, काओलिन, जिप्सम और मैग्नेसाइट। खनिजों में कोयला (कुल मूल्य में भागीदारी 41.11 प्रतिशत), पैट्रोलियम (30.69 प्रतिशत), प्राकृतिक गैस (14.88 प्रतिशत), लौह-अयस्क (4.00 प्रतिशत), चूने का पत्थर (2.60 प्रतिशत) और लिग्नाइट (2.19 प्रतिशत) ऐसे खनिज हैं जिनकी देश में उत्पादित सभी खनिजों के कुल मूल्य में एक प्रतिशत से अधिक की भागीदारी थी। कुल मिलाकर देश में 68 खनिजों का उत्पादन होता है। खनिजों के उत्पादन के आंकड़े सारणी 10.1 में दिए गए हैं।

खनिजों का वितरण

देश में खनिजों और खनिज ईंधनों का वितरण बहुत असमान है। इसका कारण यह है कि खनिजों का अस्तित्व कुछ निश्चित भूगर्भिक संरचनाओं से जुड़ा है और वे केवल कुछ निश्चित क्षेत्रों में ही पाई जाती हैं। इस दृष्टि से प्राचीन शैल समूह उल्लेखनीय हैं। उदाहरण के लिए लौह-अयस्क और मैंगनीज के भंडार देश की केंब्रियनपूर्व की शैलों के धारवाड़ समूह में पाए जाते हैं। इसी प्रकार तांबा, सीसा और जस्ता की शिराएं धारवाड़ की अरावली माला में पाई जाती हैं। धारवाड़ और कड़प्पा समूहों में प्रमुख धात्विक खनिजों के भंडार निहित हैं। चूने का पत्थर, डोलोमाइट, जिप्सम और केल्सियम सल्फेट कड़प्पा और ऊपरी विंध्यन समूहों तक ही सीमित हैं। पैट्रोलियम टरशरी शैलों में पाया जाता है। अधिकतर खनिज धारक शैल समूह प्रायद्वीपीय भारत में ही पाए जाते हैं। इसलिए देश का यह भाग खनिज संसाधनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। पठारों में तीन प्रमुख खनिज पेटियों की पहचान की जा सकती है।

1. ***उत्तर पूर्वी पठार :*** इस पट्टी में छोटा नागपुर का पठार, उड़ीसा का पठार और पूर्वी आंध्र प्रदेश का पठार शामिल हैं। धातु उद्योग में काम आने वाले विविध प्रकार के खनिजों के उत्तम कोटि के भंडार इस पेटी में पाए जाते हैं। इनमें लौह-अयस्क, मैंगनीज, अभ्रक, बॉक्साइट, चूने के पत्थर और डोलोमाइट के विशाल भंडार हैं तथा ये व्यापक रूप में वितरित हैं। इस प्रदेश में तांबे, थोरियम, यूरेनियम, क्रोमियम, सिलिमेनाइट और फास्फेट के भंडार भी हैं। इनके साथ ही दामोदर घाटी और छत्तीसगढ़ के कोयले के भंडार भी हैं, जिन्होंने भारी उद्योगों के विकास में बहुत योगदान दिया है। समन्वित लोहा और इस्पात संयंत्र अधिकतर इसी पेटी में स्थित हैं। एल्युमिनियम संयंत्र भी यहीं स्थित हैं।

2. ***दक्षिण-पश्चिमी पठार :*** यह पेटी कर्नाटक के पठार और निकटवर्ती तमिलनाडु के पठार पर फैली हैं तथा धात्विक खनिजों में संपन्न हैं। यहां पाए जाने वाले धात्विक खनिज हैं– लौह-अयस्क, मैंगनीज और बॉक्साइट। कुछ अधात्विक खनिज भी यहां मिलते हैं। परंतु यहां शक्ति के संसाधनों विशेष रूप से कोयले की कमी है। इसी कारण इस प्रदेश में भारी उद्योगों का विकास नहीं हो सका। इस देश की सोने की तीनों खानें इसी पेटी में स्थित हैं।

3. ***उत्तर पश्चिमी प्रदेश :*** यह पेटी गुजरात में खंभात की खाड़ी से लेकर राजस्थान में अरावली की श्रेणियों तक फैली हैं। पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस इस पेटी के प्रमुख संसाधन हैं। अन्य खनिजों के भंडार कम और बिखरे हुए हैं। लेकिन यह पेटी अनेक अलौह धातुओं जैसे– तांबा, चांदी, सीसा और जस्ता के भंडारों और उत्पादन के लिए विख्यात हैं।

खनिजों की इन पेटियों के बाहर, ऊपरी ब्रह्मपुत्र घाटी उल्लेखनीय पैट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र है। केरल में भारी खनिज बालू के विशाल संकेंद्रण हैं। देश के अन्य भागों में भी खनिज पाए जाते हैं, लेकिन बिखरे हुए हैं और उनके भंडार आर्थिक दृष्टि दोहन के योग्य नहीं हैं।

खनिज ईंधन

कोयला

कोयला ऊर्जा का प्रमुख संसाधन है। अनेक उद्योगों में इसका कच्चे माल के रूप में भी उपयोग होता है। 1200 मीटर की गहराई तक पाए जाने वाले कोयले के कुल अनुमानित भंडार 21,390.55 करोड़ टन हैं। यह अनुमान भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण ने जनवरी 2001 में लगाया था। यह संसार के कुल अनुमानित कोयला भंडार का केवल एक प्रतिशत है। कोयले के भंडार सीमित तो हैं ही लेकिन ऊपर से भारत का कोयला अच्छी किस्म का नहीं है। अधिकतर कोयला बिटूमिनस प्रकार का है तथा यह गैर कोकिंग ग्रेड का भी है। इसका बहुत थोड़ा-सा भाग ही कोकिंग ग्रेड का है। बिटूमिनस कोयले का वितरण बहुत असमान है। इसके अधिकतर भंडार पूर्वी प्रायद्वीपीय पठारों की कुछ नदी घाटियों में ही केंद्रित हैं। परिणामस्वरूप अन्य क्षेत्रों के भारी उद्योगों को कोयले की आपूर्ति के संकट झेलने पड़ते हैं।

कोयले के भंडार दो भूगर्भिक समूहों में निहित हैं : निम्न गोंडवाना समूह (20 करोड़ वर्ष पुराना) और टरशरी समूह (लगभग 5.5 करोड़ वर्ष पुराना)। देश के 113 ज्ञात कोयला क्षेत्रों में से 80 क्षेत्र निम्न गोंडवाना समूह में स्थित हैं। इसमें देश के 96 प्रतिशत कोयला भंडार हैं तथा यहां से देश के कुल उत्पादन का 99 प्रतिशत कोयला निकाला जाता है। गोंडवाना कोयला क्षेत्र चार नदी-घाटियों में पाए जाते हैं : (1) दामोदर घाटी(झारखंड और पश्चिम बंगाल)। (2) सोन घाटी (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश); (3) महानदी घाटी (छत्तीसगढ़ और उड़ीसा); (4) वर्धा गोदावरी घाटी (मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश) (चित्र 10.1)। टरशरी कोयला असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और नागालैंड में पाया जाता है। सारणी 10.2 में कोयले का राज्यानुसार वितरण और उत्पादन दिया गया है।

झारखंड : कुल अनुमानित कोयला भंडारों में से लगभग एक तिहाई कोयला भंडार झारखंड कोयला क्षेत्रों में निहित हैं। इस राज्य के प्रमुख कोयला क्षेत्र ये हैं : झरिया, बोकारो, गिरिडीह, करनपुरा, रामगढ़, डाल्टनगंज, औरंगाबाद और हुतार। पश्चिम बंगाल के रानीगंज कोयला क्षेत्र का कुछ भाग इसी राज्य के अंतर्गत है। दामोदर घाटी के कोयला क्षेत्रों से ही धातु उद्योग के लिए उपयोगी अधिकतर कोयला पाया जाता है। लोहे और इस्पात के अधिकतर कारखानों को कोकिंग कोयला इन्हीं क्षेत्रों से मिलता है। इन कोयला क्षेत्रों का आपेक्षिक महत्व बहुत घट गया है। 1970 में यहां से देश के कुल कोयला उत्पादन का 47 प्रतिशत भाग प्राप्त होता था, जो घटकर 1998-99 में 26 प्रतिशत रह गया है। अतः कोयला उत्पादक राज्यों में अब इसका स्थान दूसरा हो गया है।

सारणी 10.2 — भारत : कोयले के भंडारों का राज्यवार वितरण, 2001
(कुल भंडार)

राज्य	कुल भंडार		उत्पादन 1998-99	
	करोड़ टन	प्रतिशत	करोड़ टन	प्रतिशत
झारखंड	69174.59	32.34	76.35	26.01
उड़ीसा	51571.29	24.11	43.52	14.83
मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़	44319.02	20.72	85.76	29.21
पश्चिम बंगाल	25918.54	12.12	17.06	5.81
आंध्र प्रदेश	13674.90	6.39	28.38	9.67
महाराष्ट्र	7295.56	3.41	25.20	8.58
उत्तर प्रदेश	1061.80	0.50	15.48	5.28
मेघालय	459.43	0.21	—	—
असम	320.21	0.15	1.79	0.61
अरुणाचल प्रदेश	90.23	0.04	—	—
कुल	**213905.51**	**100.0**	**293.56**	**100.00**

चित्र 10.1 भारत : कोयला क्षेत्र

उड़ीसा : कोयले के भंडारों में उड़ीसा का दूसरा तथा उत्पादन में तीसरा स्थान है। देश के कुल अनुमानित कोयला भंडारों में से लगभग एक चौथाई कोयला भंडार उड़ीसा में पाए जाते हैं। तालचेर और रामपुर इस राज्य के प्रमुख कोयला क्षेत्र हैं। तालचेर में कोयले के विशाल भंडार हैं। लेकिन कोयला घटिया है। अत: यह भाप और गैस बनाने के लिए उपयुक्त है। तालचेर में इसका उपयोग उर्वरक बनाने के कारखानों और ताप बिजली घरों में होता है। देश के कुल कोयला उत्पादन में उड़ीसा की भागीदारी बढ़ गई है। 1970 में यह पांच प्रतिशत थी जो 1998-99 में 14.8 प्रतिशत हो गई है।

मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ : इन राज्यों के कोयला क्षेत्रों में देश के कुल कोयला भंडारों का पांचवां भाग पाया जाता है। इन राज्यों के कोयला क्षेत्र परंपरा से चार समूहों में बांटे जाते हैं : (क) मध्यवर्ती भारतीय कोयला क्षेत्र (सिंगरौली, सोहागपुर, जोहिल्ला, उमरिया); (ख) सतपुड़ा कोयला क्षेत्र (पेंच, कान्हन, पथखेड़ा); (ग) उत्तर छत्तीसगढ़ कोयला क्षेत्र (चिरिमिरी, कुरसिया, विश्रामपुर, झिलमिली, सोनहाट, लखनपुर, सेंदुरगढ़, लखनपुर-रामकोला); (घ) दक्षिण छत्तीसगढ़ कोयला क्षेत्र हासदो-अरंड, कोरबा, मांड-रायगढ़। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुल उत्पादन में 29.2 प्रतिशत की भागीदारी थी, 1976 में यह केवल 17 प्रतिशत थी।

अन्य राज्य : कोयले के भंडारों में पश्चिम बंगाल का चौथा तथा उत्पादन में छठा स्थान है। रानीगंज इसका मुख्य कोयला क्षेत्र है जबकि दार्जिलिंग छोटा कोयला क्षेत्र है। यहां उत्पादित कोयले का उपयोग ताप बिजली घरों और रेलों में होता है। कोयले के प्रक्षालन केंद्र जामादोबा और लोदना में स्थित हैं। कोयला उत्पादन में पश्चिम बंगाल की भागीदारी 1970 में 26 प्रतिशत थी जो घटकर 1998-99 में केवल 5.81 प्रतिशत रह गई है। आंध्र प्रदेश में 6.93 प्रतिशत कोयले के भंडार हैं। इस राज्य के कोयला क्षेत्र गोदावरी घाटी में स्थित सिंगरैनी, कोटागुंडम् और तंदूर हैं। भारत के लगभग 3.41 प्रतिशत कोयला भंडार महाराष्ट्र में हैं। इस राज्य के प्रमुख कोयला क्षेत्र हैं : चांदा-वर्धा, कांपटी और बांदेर। सिंगरौली कोयला क्षेत्र का कुछ भाग उत्तर प्रदेश में है।

टरशरी कोयला मेघालय के दारंगिरि, चेरापूंजी, लेतरिंग्यू, माओलौंग और लांगरिन क्षेत्रों से निकाला जाता है। ऊपरी असम के कोयला क्षेत्र हैं– माकुम, जयपुर और नजीरा। अरुणाचल प्रदेश में नामचिक और नामरुक कोयला क्षेत्र हैं। जम्मू और कश्मीर राज्य में कालाकोट में कोयला निकाला जाता है।

कोयले का उत्पादन : कोयला खनन के विकास के इतिहास का रेल-मार्गों के निर्माण के साथ निकट का संबंध रहा है। बाद में दो विश्वयुद्धों ने कोयला खनन को बहुत प्रोत्साहित किया। 1946 में कोयले का कुल उत्पादन 3.06 करोड़ टन था। बढ़ती मांग के अनुरूप कोयले के उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। 1972 में कोयला उद्योग के राष्ट्रीयकरण के बाद कोयले के उत्पादन में वास्तविक उछाल आया। सन् 2000-01 में कोयले का कुल उत्पादन 30.96 करोड़ टन था। 1948 और 2001 की अवधि में यह 10 गुनी वृद्धि थी। भारत में कोयले के उत्पादन में दो कंपनियां लगी हैं : कोल इंडिया लिमिटेड और सिंगरैनी कोलियरीज कंपनी लिमिटेड। कोयले के कुल उत्पादन में 90 प्रतिशत अकोकिंग कोयला तथा 10 प्रतिशत कोकिंग कोयला होता है। इस समय कुल उत्पादित कोयले में से तीन चौथाई कोयला खुले गर्त वाली खानों से निकाला जाता है।

लिग्नाइट एक निम्न कोटि का कोयला है। इसमें नमी ज्यादा और कार्बन कम होता है। भारत में लिग्नाइट के कुल अनुमाानित भंडार 34.17 अरब टन हैं। इसमें से 88.4 प्रतिशत (13.02 अरब टन) तमिलनाडु के लिग्नाइट बेसिन में है। नेवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन लिमिटेड नेवेली में लिग्नाइट का खनन करती है। लिग्नाइट के भंडार राजस्थान, गुजरात और जम्मू और कश्मीर में भी पाए जाते हैं। क्योंकि लिग्नाइट क्षेत्र मुख्य कोयला उत्पादक क्षेत्रों से दूर स्थित हैं; अत: इनका आर्थिक महत्व हो सकता है।

पैट्रोलियम

आधुनिक समाज में पैट्रोलियम का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। पैट्रोलियम और इसके उत्पादों का विविध प्रकार से उपयोग किया जाता है। इनमें से कुछ उपयोग ये हैं– शक्ति/ऊर्जा, स्नेहक तथा कच्चा माल अन्य उद्योगों में आवश्यक कृत्रिम उत्पादों और रसायनों को बनाने में पैट्रोलियम का कच्चे माल के रूप में उपयोग होता है। भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग के अनुमानों के अनुसार भारत में पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस (हाइड्रोकार्बन) के कुल भंडार 17 अरब टन हैं, जिसमें से 75 प्रतिशत अब तक स्थापित हो चुके हैं।

पैट्रोलियम की खोज के लिए 1866 में ऊपरी असम घाटी में कुएं खोदे गए थे। भारत में कुओं का खनन पेंसिलवालियां में तेल खोज के सात वर्ष बाद ही प्रारंभ हो गया था। सन् 1890 में डिगबोई क्षेत्र में तेल मिल गया था।

1959 से पूर्व तक केवल असम में ही तेल का उत्पादन होता था। 1958 में खंभात के तेल क्षेत्र की खोज हुई और इस क्षेत्र के अंकलेश्वर में 1960 में खोदे गए पहले इस कुएं का नाम वसुधारा रखा गया था। पहला अपतटवेधन गुजरात के अलियाबेट नामक स्थान पर शुरू किया गया। बाद में सन् 1975 मुंबई (बंबई) की खोज हुई तथा इस क्षेत्र से सन् 1976 में उत्पादन शुरू हुआ। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप, देश में तेल के उत्पादन में तेजी से वृद्धि होने लगी।

तेल क्षेत्रों का वितरण : आजकल चार प्रदेशों में व्यापारिक स्तर पर तेल निकाला जा रहा है: (1) उत्तर पूर्वी प्रदेश इसका विस्तार ऊपरी असम घाटी, अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड में है, (2) गुजरात प्रदेश जो खंभात बेसिन और गुजरात के मैदानों में विस्तृत है, (3) मुंबई हाई अपतट प्रदेश, (4) पूर्वी तटीय प्रदेश, यह कावेरी और गोदावरी-कृष्णा द्रोणियों में विस्तृत है।

1. ***उत्तर पूर्वी प्रदेश :*** इस प्रदेश के सुविज्ञात तेल क्षेत्र हैं– डिगबोई (सबसे पुराना क्षेत्र 1866), नहरकाटिया, मोरान, रुद्रसागर, गालेकी, और हुगरीजन। अरुणाचल प्रदेश के तिरप जिले का निगरू और नागालैंड का, असम–नागालैंड सीमा के निकट स्थित बोरहोल्ला तेल क्षेत्र उल्लेखनीय हैं।

2. ***गुजरात प्रदेश :*** इस प्रदेश के प्रमुख तेल क्षेत्र हैं– अंकलेश्वर, कलोल, नवागांव, कोसांबा, कठना, बरकोल, मेहसाना, सनंद और ल्यूनेज। सौराष्ट्र के भावनगर से 45 कि.मी. दूर पश्चिम में अलियाबेट द्वीप में भी तेल मिला है।

3. ***मुंबई हाई :*** मुंबई से 176 कि.मी. दूर, अरब सागर में स्थित यह एक अपतट क्षेत्र है। आजकल यह देश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तेल क्षेत्र है। 1998-99 में यहां 2.12 करोड़ टन कच्चा तेल निकाला गया। यह भारत के कुल तेल उत्पादन का दो तिहाई (64.5 प्रतिशत) था। तेल और प्राकृतिक गैस मुख्य भूमि के तट पर उरण में समुद्री पाइप लाइन द्वारा लाया जाता है। मुंबई हाई के दक्षिण में एक और तेल क्षेत्र बसीन की खोज हुई है। यहां के भंडार मुंबई के तेल भंडारों से बड़े माने जा रहे हैं।

4. ***पूर्वी तट प्रदेश :*** यह कृष्णा–गोदावरी और कावेरी की द्रोणियों में विस्तृत है। तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और आयल इंडिया लिमिटेड ने इस क्षेत्र में विस्तृत पूर्वेक्षण और खोज कार्य किया था। कावेरी द्रोणी के प्रमुख तेल क्षेत्र हैं : नारीमनम और कोविलप्पल। 1998-99 में यहां से 4.51 लाख टन कच्चा तेल निकाला गया था। अभी कुछ समय पूर्व गोदावरी कृष्णा द्रोणी में भी तेल की खोज हुई है।

   जैसलमेर में भी कुछ समय पूर्व तेल के भंडारों का पता चला है।

कच्चे तेल का उत्पादन : 1951 में केवल 2.69 लाख टन कच्चे तेल का उत्पादन हुआ था, जो बढ़कर 1962 में 10.8 लाख टन तथा 1995-96 में 3.45 करोड़ टन हो गया। लेकिन 1998-99 में यह घटकर 3.29 करोड़ टन और 2000-01 में 3.24 करोड़ टन ही रह गया। कुल उत्पादन में एक तिहाई (36.4 प्रतिशत) अभितट क्षेत्रों से तथा लगभग दो तिहाई अपतट क्षेत्रों से कच्चा तेल निकाला गया। तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और आयल इंडिया लिमिटेड दो राष्ट्रीय कंपनियां तथा कुछ निजी और कुछ संयुक्त कंपनियां कच्चे तेल और प्राकृतिक गैस की खोज और उत्पादन में लगी हैं। 2000-01 में तेल और प्राकृतिक गैस आयोग की देश के कुल उत्पादन में 77.27 प्रतिशत की तथा संयुक्त कंपनियों की 12.61 प्रतिशत की और आयल इंडिया लिमिटेड की 10.11 प्रतिशत की भागीदारी थी। मुंबई हाई कच्चे तेल का सबसे बड़ा उत्पादक प्रदेश है। 1998–99 में यहां से कुल तेल का दो तिहाई भाग निकाला गया था। दूसरा स्थान गुजरात का तथा तीसरा स्थान असम का था (सारणी 10.3)।

सारणी 10.3 — भारत में कच्चे पैट्रोलियम का प्रदेशानुसार उत्पादन

प्रदेश	*उत्पादन (करोड़ टन)*	*प्रतिशत*
मुंबई हाई	21.23	64.55
गुजरात	5.86	17.82
असम	5.27	16.02
तमिलनाडु	0.45	1.37
अरुणाचल प्रदेश	0.08	0.23
कुल	**32.89**	**100.0**

भारत में पैट्रोलियम उत्पादों का सन् 2000-01 में कुल उपभोग 9.96 करोड़ टन का था तथा देश में कुल 3.243 करोड़ टन कच्चे तेल का उत्पादन हुआ था। भारत अपनी आवश्यकता के केवल एक तिहाई कच्चे तेल का उत्पादन कर पाता है। इस कमी को पूरा करने के लिए देश को भारी मात्रा में कच्चे तेल का आयात करना पड़ता है। 1998-99 में 3.98 करोड़ टन कच्चे तेल और 1.809 करोड़ टन पैट्रोलियम उत्पादों का रूस, ईरान और अन्य पश्चिमी एशियाई देशों से आयात किया गया।

तेल परिष्करण : कच्चे पैट्रोलियम के उत्पादन में वृद्धि होने के कारण देश में परिष्करण क्षमता का असाधारण विकास हुआ है। इस समय देश में 18 तेल परिष्करण शालाएं हैं। इनमें से 16 सार्वजनिक क्षेत्र में, एक संयुक्त क्षेत्र में तथा एक निजी क्षेत्र में है। सन् 2002 में इनकी कुल परिष्करण क्षमता 11.264 करोड़ टन वार्षिक थी। सार्वजनिक क्षेत्र की परिष्करणशालाएं गुवाहाटी, बरौनी, कोयली, हल्दिया, मथुरा, डिगबोई, पानीपत, चेन्नई, नारीमनम, बोंगईगांव, मुंबई (एच.पी.सी.एल.), विशाखापत्तनम्, मुंबई (बी.पी.सी.एल.), कोच्चि, नुमालीगढ़ (असम), तथा तातीपाका (ओ.एन.जी.सी.) में स्थित हैं। संयुक्त क्षेत्र की परिष्करणशाला मंगलौर में है। इसकी परिष्करण क्षमता 96.9 लाख टन की है। निजी क्षेत्र की (रिलायंस पैट्रोलियम लिमिटेड) परिष्करणशाला जामनगर में स्थित है। इसकी तेल परिष्करण क्षमता 2.7 करोड़ टन है। यह देश की सबसे बड़ी परिष्करणशाला है। अधिकतर परिष्करणशालाएं आयातित कच्चे तेल पर निर्भर हैं। देश के तेल क्षेत्रों में उत्पादित तेल को पाइप लाइनों द्वारा परिष्करणशालाओं तक ले जाया जाता है।

प्राकृतिक गैस : प्राकृतिक गैस व्यापारिक ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत बन कर सामने आ रही है। यह पैट्रोलियम के साथ ही पाई जाती है। अप्रैल 2001 में देश में प्राकृतिक गैस के प्रतिलभ्य भंडार 638 अरब अघमी (अरब घन मीटर) थे। सन् 2000-01 में प्राकृतिक गैस का कुल उत्पादन 29.48 अघमी था। गैस के प्रसंस्करण, परिवहन, वितरण और विपणन के लिए भारतीय गैस प्राधिकरण का गठन किया गया था। इस समय यह 4200 कि.मी. लंबी पाइप लाइनों का संचालन कर रहा है। यह कंपनी 5000 मेगावाट बिजली उत्पादन के लिए बिजली उत्पादक कारखानों को गैस की आपूर्ति करती है। यह कंपनी देश के विभिन्न भागों में स्थित 500 औद्योगिक कारखानों को गैस की आपूर्ति करती है।

धात्विक खनिज

लौह-अयस्क : भारत में उच्च कोटि के लौह-अयस्क के पर्याप्त भंडार हैं। अधिकतर भंडार हैमेटाइट और मैग्नेटाइट श्रेणी के हैं। लौह-अयस्क के कुल परिलभ्य भंडार इस प्रकार हैं : हैमेटाइट 1005 अरब टन तथा मैग्नेटाइट 340.8 अरब टन। उच्च कोटि का लौह-अयस्क धारवाड़ शैल समूहों में पाया जाता है, इसीलिए इनके भंडार प्रायद्वीपीय भारत तक ही सीमित हैं। ये उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, गोवा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और राजस्थान में स्थित हैं। अत्यंत उच्च कोटि के लौह-अयस्क के भंडार सीमित हैं और केवल छत्तीसगढ़ के बैलाडिला क्षेत्र में ही निहित हैं। ऐसे भंडार थोड़ी-सी मात्रा में कर्नाटक के बेल्लारी–हास्पेट क्षेत्र और झारखंड तथा उड़ीसा के बरामजादा क्षेत्रों में विस्तृत हैं। मैग्नेटाइट संसाधन कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गोवा, केरल, झारखंड, राजस्थान और तमिलनाडु में स्थित हैं। झारखंड और उड़ीसा के भंडार आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। लोहा और इस्पात के प्रमुख कारखानों की अवस्थिति में इनकी निर्णायक भूमिका रही है। कोयले और लौह-अयस्क के भंडार के बहुत पास–पास पाए जाने के कारण उत्तर पूर्वी पठार पर लोहे और इस्पात के छः बड़े कारखाने स्थापित किए गए हैं।

छत्तीसगढ़ लौह-अयस्क का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य है। देश के कुल उत्पादन में इसकी 23.4 प्रतिशत की भागीदारी है। इसके बाद क्रमशः गोवा, कर्नाटक, झारखंड, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र का स्थान है। डल्ली, राजहरा (दुर्ग), बैलाडिला (दांतेवाड़ा) छत्तीसगढ़ की प्रमुख खानें हैं। गोवा की खानें, साहक्वालिम, संग्यूम, क्यूपेम, सतारी, पौंडा, और बिचोलिम में स्थित हैं। कर्नाटक में बेल्लारी जिले के बेल्लारी, हास्पेट और संदूर क्षेत्रों में लौह-अयस्क की खानें हैं। झारखंड में लौह-अयस्क नोआमुंडी, और गुआ (पूर्व व पश्चिम सिंहभूम) से निकाला जाता है। उड़ीसा की प्रमुख खानें हैं– गुरुमहिषानी, सुलई पत, बादाम पहाड़ (मयूरभंज), किरिबुरु, मेघाहतबुरु (केंदूझार) बोनई (सुंदरगढ़)। झारखंड और उत्तरी उड़ीसा के लौह-अयस्क

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

***चित्र 10.2** भारत : तेल परिष्करणशालाएं*

क्षेत्र एक 45 कि.मी. लंबी पट्टी में हैं। महाराष्ट्र में लौह-अयस्क की खानें चन्द्रपुर, रत्नागिरि और भंडारा जिलों में स्थित हैं। आंध्र प्रदेश के करीम नगर, वारंगल, कुर्नूल, कड़प्पा और अनंतपुर जिलों में लौह-अयस्क के अच्छे भंडार हैं। दक्षिण में थोड़ा-सा आगे तमिलनाडु की तीर्थमल्लई पहाड़ियों (सेलम), यादपल्ली और किल्लीमल्लई क्षेत्र (नीलगिरि) में लौह-अयस्क के भंडार हैं।

लौह-अयस्क का उत्पादन : लोहे और इस्पात उद्योग के विकास के साथ ही लौह-अयस्क का उत्पादन बहुत तेजी से बढ़ा। 1948 में देश में केवल 23 लाख टन लौह-अयस्क का उत्पादन होता था। लेकिन यह बढ़कर 1971 में 3.37 करोड़ टन तथा 2000-01 में लगभग 7.5 करोड़ टन हो गया। इस समय छत्तीसगढ़ सहित मध्य प्रदेश प्रथम स्थान पर है। गोवा द्वितीय स्थान पर खिसक गया है। इनके बाद कर्नाटक का स्थान है। विभिन्न राज्यों में लौह-अयस्क का उत्पादन सारणी 10.4 में दिया गया है।

सारणी 10.4 **— भारत : लौह-अयस्क का राज्यवार उत्पादन 1998-99**

राज्य	*उत्पादन*	
	करोड़ टन में	*कुल उत्पादन का प्रतिशत*
मध्य प्रदेश	16567	23.44
गोवा	15426	21.82
कर्नाटक	14811	20.95
बिहार	12003	16.98
उड़ीसा	11522	16.30
आंध्र प्रदेश	320	0.45
महाराष्ट्र	27	0.04

स्रोत : *स्टेटिस्टिकल एब्स्ट्रैक्ट ऑफ इंडिया, 1999*

क्रोमाइट

क्रोमाइट का उपयोग धातु कर्मीय, तापसह और रासायनिक उद्योगों में किया जाता है। क्रोमाइट के कुल भंडार 18.4 करोड़ टन हैं। इनमें से 10.5 करोड़ टन उसी स्थान पर तथा 7.9 करोड़ टन प्रतिबंधित भंडार है। इनमें से लगभग 9 करोड़ टन प्रतिलभ्य भंडार हैं। लगभग 96 प्रतिशत भंडार उड़ीसा के कटक जिले तक सीमित हैं। इस जिले के सुकिंदा क्षेत्र में उच्च कोटि के भंडार निहित हैं। केंदुझार और धेनकनाल में भी खनन योग्य भंडार हैं। अकेले उड़ीसा में ही 98 प्रतिशत खनन योग्य भंडार हैं। अधिक महत्व के कुछ भंडार कर्नाटक (हसन जिला), तमिलनाडु (सेलम जिला), आंध्र प्रदेश (खम्मम जिला) तथा मणिपुर में भी हैं।

क्रोमाइट का उत्पादन 1951 के 19 हजार टन से बढ़ कर सन् 2000-01 में 17.4 लाख टन हो गया था। 1998-99 में कुल उत्पादन में उड़ीसा की भागीदारी 98.9 की और कर्नाटक की 1.1 प्रतिशत थी। महाराष्ट्र में भी थोड़े से क्रोमाइट का उत्पादन हुआ था।

तांबा

बिजली का सुचालक होने के कारण तांबा बिजली के केबल, तार और मशीनें बनाने में उपयोग किया जाता है। सन् 2000 में देश में तांबे के कुल प्रतिलभ्य भंडार 53.79 करोड़ टन थे। यह 53 लाख टन शुद्ध धातु के बराबर है। इसके अतिरिक्त 72.1 करोड़ टन प्रतिबंधित भंडार है। ये तांबे की 31.6 लाख टन शुद्ध धातु के बराबर है। तांबे के प्रमुख भंडार निम्नलिखित जिलों में पाए जाते हैं : झारखंड की सिंहभूम, मध्य प्रदेश का बालाघाट, तथा राजस्थान के झुंझुनू और अलवर जिले। इनके अलावा थोड़े से भंडार गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, मेघालय, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल में भी हैं।

1998-99 में तांबा-अयस्क का कुल उत्पादन लगभग 42.5 लाख टन था। लेकिन यह घटकर सन् 2000-01 में लगभग 30.8 लाख टन रह गया। 1998-99 में आधे से अधिक (52.4 प्रतिशत) तांबा-अयस्क मध्य प्रदेश में स्थित मलंजखंड, बालाघाट जिले की खानों से निकाला गया। राजस्थान के झुंझुनू, और अलवर की खेतड़ी की खानों का एक तिहाई भाग तथा झारखंड की भागीदारी 15.2 प्रतिशत की थी। हिंदुस्तान कापर लिमिटेड, एक सार्वजनिक क्षेत्र का प्रतिष्ठान है। यह देश में प्राथमिक तांबे का एकमात्र उत्पादक है।

जस्ता और सीसा

इनका औद्योगिक महत्व बहुत अधिक है। जस्ते का प्रमुख उपयोग टायर उद्योग में है। यह सांचे बनाने, शुष्क बैटरियां और वस्त्र उद्योग में भी काम में आता है। इसी प्रकार सीसे का भी बिजली के केबलों, बैटरियों, कांच, बारूद, मुद्रण, रबड़ उद्योग आदि में उपयोग किया जाता है। सीसे और

जस्ते के भंडार राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मेघालय, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और सिक्किम में पाए जाते हैं। सभी प्रकार की श्रेणी के सीसे और जस्ते के कुल प्रतिलभ्य भंडार 17.68 करोड़ टन हैं। इनमें से सीसे की 23.81 लाख टन शुद्ध धातु तथा जस्ते की 97 लाख टन शुद्ध धातु प्राप्त की जा सकती है।

1998-99 में सीसे के सांद्रों का उत्पादन 63,856 टन और जस्ते के सांद्रों का उत्पादन 3,49,934 टन था, जो 2000-01 में क्रमशः 54,493 तथा 3,65,164 टन हो गया। लगभग जस्ते का संपूर्ण उत्पादन राजस्थान में ही होता है। यहीं पर सीसे के 80 प्रतिशत सांद्रों का उत्पादन भी होता है। उड़ीसा (10.7 प्रतिशत) तथा आंध्र प्रदेश (8.2 प्रतिशत) अन्य उत्पादक हैं। सिक्किम में भी सीसे-जस्ते का उत्पादन होता है। सीसे-जस्ते के अयस्क के उत्पादन और प्रगलन की जिम्मेदारी हिंदुस्तान जिंक लिमिटेड की है।

मैंगनीज

मैंगनीज मुख्य रूप से अपघर्षण और जंगरोधी इस्पात बनाने तथा लोहे और मैंगनीज की मिश्र धातु बनाने के उपयोग में आता है। इनके अलावा भी इसके अन्य अनेक उपयोग हैं। भारत मैंगनीज का प्रमुख उत्पादक और निर्यातक देश है। लेकिन भारत का मैंगनीज निर्यात बाजार अन्य देशों में उत्पादन बढ़ने के कारण तथा विकल्पों के उपयोग के कारण घट गया है। लगभग सभी प्रकार के भूवैज्ञानिक शैल समूहों में मैंगनीज पाया जाता है। लेकिन 90 प्रतिशत से अधिक मैंगनीज धारवाड़ शैल समूहों के गौंडाइट और कोडुराइट श्रृंखलाओं में निहित हैं। मैंगनीज के कुल प्रतिलभ्य भंडार 16.1 करोड़ टन हैं जिनमें से 4.9 करोड़ टन भंडार परीक्षित (प्रमाणित) है। उड़ीसा में मैंगनीज के प्रमुख भंडार हैं। इसके बाद क्रमशः कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गोवा और महाराष्ट्र का स्थान है। अन्य राज्यों में मैंगनीज का कुल उत्पादन 15.86 लाख टन था। मैंगनीज के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं– उड़ीसा (33.3 प्रतिशत, 1998-99), मध्य प्रदेश (21.1 प्रतिशत), महाराष्ट्र (20.6 प्रतिशत), कर्नाटक (17.9 प्रतिशत) और आंध्र प्रदेश (5.4 प्रतिशत)। मैंगनीज की प्रमुख खानें इन जिलों में स्थित हैं। केंदूझार और सुंदरगढ़ (उड़ीसा), बालाघाट (मध्य प्रदेश), नागपुर और भंडारा (महाराष्ट्र), बेल्लारी, उत्तरकन्नड़ और शिमोगा (कर्नाटक), विजयनगर और आदिलाबाद (आंध्र प्रदेश), पश्चिम सिंहभूम (झारखंड), बांसवाड़ा और उदयपुर (राजस्थान)।

सोना

सोना एक बहुमूल्य धातु है। सारे संसार के लोग इसे बहुत सम्मान देते हैं। यह दुर्लभ खनिजों में से एक है। देश के अधिकतर खनिज भंडार धारवाड़ की शिष्ट शैलों की क्वार्टज शिराओं में निहित है। इसे 'धातु रेखा भंडार' कहते हैं। नदियों की बालू में भी कुछ सोना पाया जाता है। इन्हें 'प्लेसर भंडार' कहते हैं। देश में तीन प्रमुख स्वर्ण क्षेत्र हैं। ये हैं : कोलार स्वर्ण क्षेत्र (कोलार जिला), रायचूर जिले के हट्टी स्वर्ण क्षेत्र (दोनों कर्नाटक में) तथा अनंतपुर जिले के रामगिरि स्वर्ण क्षेत्र (आंध्र प्रदेश)। स्वर्ण अयस्क के कुल अनुमानित प्रतिलभ्य भंडार लगभग 1.8 करोड़ टन हैं इनमें लगभग 68 टन सोने की धातु है। 1998-99 में सोने का कुल उत्पादन 2463 कि.ग्रा. था जो घटकर 2000-01 में 2,153 कि.ग्रा. रह गया। लगभग 70 प्रतिशत सोना कर्नाटक की खानों से प्राप्त किया जाता है तथा लगभग एक चौथाई आंध्र प्रदेश से। झारखंड की नदियों के बालू (प्लेसर भंडार) में से भी सोना प्राप्त किया जाता है।

बॉक्साइट

भारत बॉक्साइट में आत्मनिर्भर है। बॉक्साइट का अल्युमिनियम बनाने के लिए कच्चे माल के रूप मे उपयोग किया जाता है। बॉक्साइट के अधिकतर भंडार लैटेराइट से जुड़े हैं तथा ये भारत के प्रायद्वीप के ऊंचे पठारों पर आवरण के रूप में मिलते हैं। देश के कुल प्रतिलभ्य भंडार 246.2 करोड़ टन है। इनमें से उसी स्थान पर उपलब्ध भंडार 295.3 करोड़ टन है। इनमें से 88 प्रतिशत भंडार धातुकर्मीय वर्ग के हैं। आधे से अधिक भंडार उड़ीसा में हैं और लगभग पांचवा भाग आंध्र प्रदेश में है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात और झारखंड में भी बॉक्साइट के विशाल भंडार हैं।

बॉक्साइट का कुल उत्पादन 1999-2000 में 78.9 लाख टन था, जो घटकर 2000-01 में 75 लाख टन रह गया। उड़ीसा बॉक्साइट का सबसे बड़ा उत्पादक (43.6

प्रतिशत) है। इसके बाद क्रमशः झारखंड (19.2 प्रतिशत), महाराष्ट्र (13.3 प्रतिशत) और मध्य प्रदेश (11.4 प्रतिशत) का स्थान है। गुजरात और तमिलनाडु का उत्पादन भी उल्लेखनीय है। बॉक्साइट के प्रमुख उत्पादक जिले इस प्रकार हैं : कोरापुट और सुंदरगढ़ (उड़ीसा), गुमला और लोहारडागा (झारखंड), कोल्हापुर और रत्नागिरि (महाराष्ट्र), बस्तर, बिलासपुर और सरगुजा (छत्तीसगढ़), मांडला, सतना, जबलपुर और शहडोल (मध्य प्रदेश), जामनगर, कच्छ और जूनागढ़ (गुजरात), सेलम और नीलगिरि (तमिलनाडु)।

अधात्विक खनिज

भारत में अनेक अधात्विक खनिजों के भंडार भी पाए जाते हैं। देश में औद्योगीकरण की गति में तेजी के साथ इन खनिजों का उत्पादन भी बढ़ा है। इन खनिजों का कच्चा माल, गालक खनिज और ऊष्मसह खनिजों के रूप में उपयोग होता है। देश में सन् 2000-01 में 47 अधात्विक खनिजों का व्यापारिक पैमाने पर उत्पादन हुआ है। इन खनिजों का कुल मूल्य 18.53 अरब रुपए अर्थात् कुल उत्पादित खनिजों के मूल्य का 3.86 प्रतिशत था। अधात्विक खनिजों में से कुछ थोड़े से खनिज ही खनन अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस समूह के खनिजों के कुल मूल्य में अकेले चूने के पत्थर की भागीदारी दो तिहाई की है। फास्फोराइट, काओलिन, जिप्सम, और मैग्नेसाइट भी महत्वपूर्ण हैं।

चूने का पत्थर

निर्माण (भवन, पुल आदि), रासायनिक और धातुकर्मीय उद्योगों के लिए चूने का पत्थर आधारभूत पदार्थ हैं। देश में चूने के पत्थर के विशाल भंडार उपलब्ध हैं। चूने का पत्थर कड़प्पा, विध्यन और क्रिटेशस शैल समूहों में बड़े व्यापक रूप में पाए जाते हैं। सभी श्रेणियों के चूने के पत्थर के परिलभ्य भंडार 7567.9 करोड़ टन हैं। कुल प्रतिबंधित भंडार 70.1 करोड़ टन हैं। आधे से अधिक अनुमानित भंडार तीन राज्यों में ही सीमित हैं। ये राज्य हैं : कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, और राजस्थान। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़, गुजरात, मेघालय, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल में भी विशाल भंडार हैं।

1998-99 में चूने के पत्थर का कुल उत्पादन 10.98 करोड़ टन था, जो बढ़कर 2000-01 में 12.88 करोड़ टन हो गया। 1998-99 के कुल उत्पादन में विभिन्न राज्यों की भागीदारी इस प्रकार थी : मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ (24.5 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (17.4 प्रतिशत), राजस्थान (16.4 प्रतिशत) और गुजरात (11.0 प्रतिशत)। तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश में से भी प्रत्येक का उत्पादन 50 लाख से लेकर एक करोड़ टन तक था। चूने के पत्थर के प्रमुख उत्पादक जिले इस प्रकार हैं : सतना, जबलपुर, कटनी, रीवा, दमोह, मंदसौर, और मुरैना (मध्य प्रदेश); रायपुर, महासमंद, दुर्ग, बिलासपुर, और जंजगीर (छत्तीसगढ़); कड़प्पा, नलगोंडा, आदिलाबाद, कृष्णा, करीमनगर गुण्टूर, और रंगारेड्डी (आंध्र प्रदेश); चित्तौड़गढ़, अजमेर, सिरोही, उदयपुर, और कोटा (राजस्थान); जूनागढ़, अमरेली और जामनगर (गुजरात)। इनके अतिरिक्त तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडु), गुलबर्गा (कर्नाटक), और चन्द्रपुर (महाराष्ट्र) भी चूने के पत्थर के बड़े उत्पादक हैं। इनमें से अधिकतर क्षेत्रों में सीमेंट के कारखानें लगाए गए हैं।

डोलोमाइट

डोलोमाइट के भंडार देश के लगभग सभी भागों में पाए जाते हैं। सभी श्रेणी के डोलोमाइट के कुल परिलभ्य भंडार 438.7 करोड़ टन हैं : इनमें से 90 प्रतिशत भंडार इन राज्यों में पाए जाते हैं : मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, गुजरात, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, और महाराष्ट्र। इसका कुल उत्पादन 1998-99 में 29.08 लाख टन तथा 2000-01 में 28.15 लाख टन था। अधिकतर डोलोमाइट, लोहे और इस्पात के कारखानों के निकट स्थित भंडारों से निकाला जाता है। उड़ीसा (31.7 प्रतिशत) तथा मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़, (30.1 प्रतिशत) मिलकर देश के 60 प्रतिशत से अधिक डोलोमाइट का उत्पादन करते हैं। आंध्र प्रदेश और झारखंड भी डोलोमाइट के प्रमुख उत्पादक हैं। प्रमुख उत्पादक जिले ये हैं : सुंदरगढ़ (उड़ीसा), झाबुआ, बालाघाट, और जबलपुर (मध्य प्रदेश), बिलासपुर, जंजगीर और दुर्ग (छत्तीसगढ़), खम्मम (आंध्र प्रदेश), पलामू (झारखंड), वडोदरा (गुजरात), नागपुर (महाराष्ट्र) और मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश)।

फास्फेट खनिज

इन खनिजों का उपयोग मुख्य रूप से फास्फेट युक्त उर्वरक बनाने के लिए किया जाता है। फास्फोराइट के प्रतिलभ्य भंडार 14.26 करोड़ टन हैं। इसके भंडार राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उत्तरांचल और गुजरात में निहित हैं। सन् 2000-01 में देश में 11.92 लाख टन फास्फोराइट का उत्पादन हुआ था। राजस्थान इसका प्रमुख उत्पादक है। इसके बाद क्रमशः उत्तरांचल, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश अन्य उत्पादक राज्य हैं। प्रमुख उत्पादक जिले ये हैं : उदयपुर (राजस्थान), देहरादून (उत्तरांचल), झाबुआ और छत्तरपुर (मध्य प्रदेश) और ललितपुर (उत्तर प्रदेश)।

ऐपाटाइट के व्यापारिक भंडार इन राज्यों में हैं : पश्चिम बंगाल, झारखंड, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और राजस्थान। यह आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम और पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिलों में निकाला जाता है।

अन्य अधात्विक खनिज

देश में उत्पादित अन्य अधात्विक खनिज हैं : कैओलिन, मृत्तिका, जिप्सम, मैग्नेसाइट, अभ्रक, बैराइटेस, फेल्सपार और गैरिक (Ochre)। ये सभी मूल्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। **कैओलिन** के कुल प्रतिलभ्य भंडार लगभग 104.2 करोड़ टन हैं। प्रमुख उत्पादक : केरल (सबसे बड़ा उत्पादक), आंध्र प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ हैं। **जिप्सम** के प्रतिलभ्य भंडार 23.8 करोड़ टन हैं। इसमें से 3.45 लाख टन शल्य चिकित्सीय/प्लास्टर श्रेणी, तथा 3.9 करोड़ टन उर्वरक/मृदभांड श्रेणी के हैं। जिप्सम के प्रमुख उत्पादक हैं : राजस्थान, जम्मू और कश्मीर। तमिलनाडु और गुजरात में भी कुछ जिप्सम का उत्पादन होता है। सन् 2000-01 में जिप्सम का कुल उत्पादन लगभग 3.25 लाख टन था। **मैग्नेसाइट** के प्रमुख भंडार उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और राजस्थान में पाए गए हैं। भारत ने सन् 2000-01 में 3.26 लाख टन मैग्नेसाइट का उत्पादन किया था। भारत संसार में **परतदार अभ्रक** का अग्रणी उत्पादक रहा है तथा संसार में अभ्रक के व्यापार में 60 प्रतिशत की भागीदारी है। अभ्रक के प्रमुख खनिज भंडार आंध्र प्रदेश, झारखंड और राजस्थान में पाए जाते हैं। देश में अभ्रक के उत्पादन में बहुत कमी आई है। सन् 1950 में 9.9 हजार टन अभ्रक का उत्पादन हुआ, 1960 में 28.34 हजार टन तथा सन् 2000-01 में केवल 1.8 हजार टन ही रह गया। आंध्र प्रदेश के कड़प्पा जिले में मानागमपेट बैराइटेस के सबसे बड़े भंडार हैं।

भारत में शक्ति उत्पादन

आर्थिक विकास और जीवन की गुणवत्ता सुधारने के लिए शक्ति का उपयोग जरूरी है। भारत में यह विविध रूपों में उपलब्ध है, जैसे कोयला, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैस (जीवाश्म ईंधन के रूप में प्रसिद्ध) और बिजली। इन्हें ऊर्जा के परंपरागत स्रोत कहते हैं। इनके अलावा ऊर्जा के गैर-परंपरागत संसाधन जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और जैव ऊर्जा आदि का भी विकास किया जा रहा है। ये ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोत हैं क्योंकि ये समाप्त नहीं होते और इनसे ऊर्जा की निरंतर आपूर्ति होती रहती है। इनके विपरीत परंपरागत स्रोत समाप्य हैं और इनका प्राकृतिक रूप में नवीकरण नहीं होता। अव्यापारिक ईंधन जैसे जलावन, गोबर और कृषि के अवशिष्ट ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की अधिकतर आवश्यकता को पूरा करते हैं। जीवनस्तर के ऊंचा उठने और कृषि के मशीनीकरण में वृद्धि के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में भी ऊर्जा के परंपरागत स्रोतों का उपयोग बढ़ गया है।

भारत में शक्ति के विकास का इतिहास उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से शुरू होता है, जब 1897 में दार्जिलिंग में पहली बार बिजली की आपूर्ति शुरू की गई थी। 1925 में बिजली उत्पादन की स्थापित क्षमता 162 मेगावाट तथा 1947 में 1400 मेगावाट थी। आजादी से पहले बिजली की आपूर्ति निजी क्षेत्र में थी और केवल शहरों तक ही सीमित थी। आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान राज्य बिजली बोर्डों का गठन किया गया। इन्होंने संपूर्ण देश में बिजली उद्योग के व्यवस्थित विकास के लिए संगठित प्रयास किए। ताप बिजली की आपूर्ति बढ़ाने और जीवाश्म ईंधन की कमी वाले प्रदेशों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अनेक बहुउद्देश्यीय योजनाएं स्थापित की गईं। देश में बिजली के उत्पादन और पोषण के संचालन और निर्माण संबंधी कार्यों की व्यवस्था करने के लिए अनेक संगठनों

सारणी 10.5 — भारत : विद्युत संयंत्रों की स्थापित क्षमता में प्रगति, 1950-2001

वर्ष	जल विद्युत		ताप		परमाणु		कुल
	(000 मे.वाट)	(%)	(000 मे.वाट)	(%)	(000 मे.वाट)	(%)	(000 मे.वाट)
1950-51	0.6	35.3	1.1	64.7	—	—	1.7
1960-61	1.9	41.3	2.7	58.7	—	—	4.6
1970-71	6.4	43.5	7.9	53.7	0.4	2.7	14.7
1980-81	11.8	38.9	17.6	58.1	0.9	3.0	30.2
1990-91	18.8	28.4	45.8	69.3	1.5	2.9	66.1
2000-01	25.1	24.7	73.6	72.4	2.9	2.9	101.6

का गठन किया गया है। इन्हीं के परिणामस्वरूप देश में बिजली के उत्पादन की स्थापित क्षमता जो 1947 में केवल 1400 मेगावाट थीं, बढ़कर 2000-01 में 1,01,600 मेगावाट हो गई है। बिजली उत्पादन में यह 72 गुनी वृद्धि है (सारणी 10.5)।

ऊर्जा के नवीकरणीय संसाधनों की वृद्धि पर बल देने के बावजूद कुल स्थापित क्षमता में जल विद्युत का अनुपात घट रहा है। 1950-51 में यह अनुपात 35.3 प्रतिशत था जो घटकर 2000-01 में 24.7 प्रतिशत रह गया है। इसके विपरीत, ताप बिजली (गैस और डीजल सहित) का प्रतिशत भाग इसी अवधि में काफी बढ़ गया है। परमाणु ऊर्जा का योगदान उल्लेखनीय नहीं है (चित्र 10.3 अ और ब)। विभिन्न स्रोतों से उत्पादित ऊर्जा की प्रवृत्ति को सारणी 10.6 में दिया गया है।

स्थापित क्षमता और उत्पादित ऊर्जा दोनों का ही प्रादेशिक वितरण बहुत असमान है। बिजली का उत्पादन निम्न प्रकार के क्षेत्रों में अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। ये क्षेत्र हैं : अधिक बिजली की मांग वाले भारी उद्योगों की स्थापना वाले प्रदेश (जैसे–मुंबई औद्योगिक प्रदेश, तमिलनाडु औद्योगिक पट्टी आदि), कोयला क्षेत्रों के निकट स्थित प्रदेश, (जैसे–दामोदर घाटी कोयला पट्टी, सिंगरौली कोयला क्षेत्र), बहु-उद्देश्यीय योजनाओं के आसपास के प्रदेश (जैसे–भाकड़ा नांगल, कोयना आदि)। इसके विपरीत औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े प्रदेशों में तथा विरल जनसंख्या वाले राज्यों, जैसे प्रायद्वीप के आंतरिक भाग, पश्चिमी राजस्थान, असम और अन्य पर्वतीय राज्यों में बिजली के उत्पादन में वृद्धि कम हुई है।
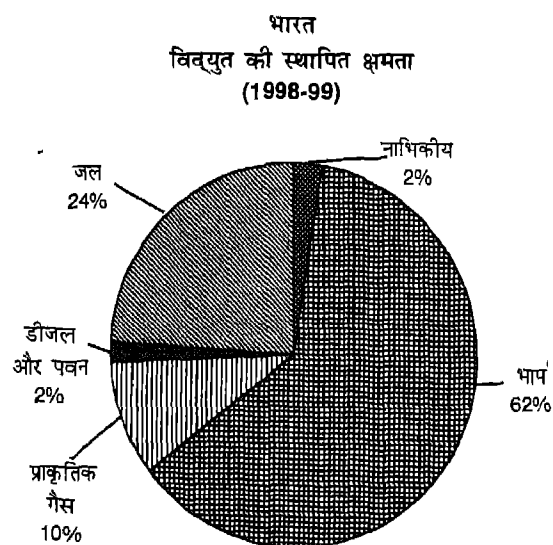
चित्र 10.3 (अ) *भारत में विद्युत की स्थापित क्षमता, 1998-99*
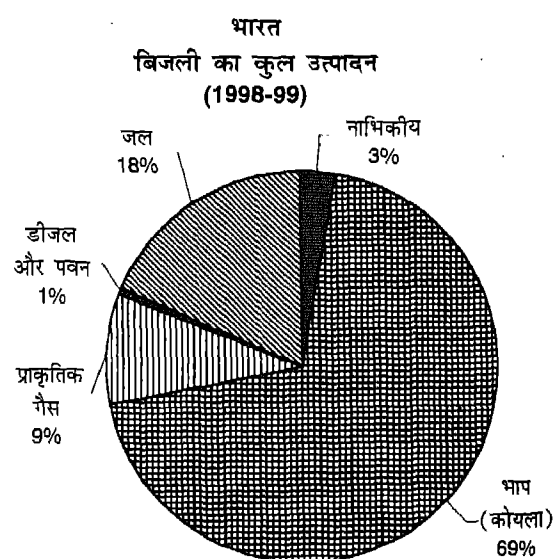
चित्र 10.3 (ब) *भारत में बिजली का कुल उत्पादन, 1998-99*

सारणी 10.6 — भारत : विभिन्न स्रोतों से उत्पादित ऊर्जा की प्रवृत्ति 1950-2001

वर्ष	जल		ताप		परमाणु		कुल
	अरब किवाघ*	(%)	अरब किवाघ	(%)	अरब किवाघ	(%)	अरब किवाघ
1950-51	2.5	49.0	2.6	51.0	—	—	5.1
1980-81	46.5	42.0	61.3	55.3	3.0	2.7	110.8
2000-01	74.3	14.9	408.2	81.7	16.9	3.4	499.5

* अरब किवाघ – अरब किलो वाट घंटे

बिजली के उपभोग के प्रतिरूपों में बहुत परिवर्तन हो गया है। इस समय (1999-2000) उपभोग की गई कुल बिजली में से उद्योग एक तिहाई (34.8 प्रतिशत) का उपभोग करते हैं, जबकि 1950-51 में उद्योग लगभग दो तिहाई (62.6 प्रतिशत) बिजली का उपभोग करते थे। इसके विपरीत इसी अवधि में कृषीय उद्देश्यों के लिए बिजली का उपयोग 3.9 से बढ़कर 29.2 प्रतिशत हो गया है। घरेलू उद्देश्यों के लिए बिजली का उपयोग 12.6 प्रतिशत से बढ़कर 22.2 प्रतिशत हो गया है।

ताप बिजली : ताप बिजली ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। इसमें बिजली बनाने के लिए कोयले, डीजल, और प्राकृतिक गैस का उपयोग किया जाता है। सन् 1975 राष्ट्रीय ताप बिजली निगम की स्थापना के बाद ताप बिजली की भागीदारी बड़ी तेजी से बढ़ी है। इस समय राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम कोयले पर आधारित 13 ताप विद्युत योजनाओं और सात गैस/डीजल आदि चालित बिजली घरों का संचालन कर रहा है। इसकी बिजली उत्पादन की स्थापित क्षमता 19435 मेगावाट है जो उत्पादित ताप बिजली का 27 प्रतिशत है। आजकल 82 प्रतिशत बिजली तापीय है।

जलविद्युत : जलविद्युत का विकास 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में शुरू हुआ। सन् 1897 में दार्जिलिंग नगर को बिजली की आपूर्ति के लिए राज्य जल विद्युत उत्पाद संयंत्र स्थापित किया गया था। कर्नाटक में कावेरी पर स्थित शिवसमुद्रम में 1902 में दूसरा जलविद्युत उत्पादन संयंत्र लगाया गया था। बाद में मुंबई की मांग को पूरा करने के लिए पश्चिमी घाट में भी जल विद्युत उत्पादन के लिए कुछ संयंत्र लगाए गए। उत्तर में उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश तथा दक्षिण में तमिलनाडु और कर्नाटक में 1930 में भी जलविद्युत संयंत्र स्थापित किए गए। 1947 में कुल उत्पादन क्षमता 508 मेगावाट तक पहुंच गई। पंचवर्षीय
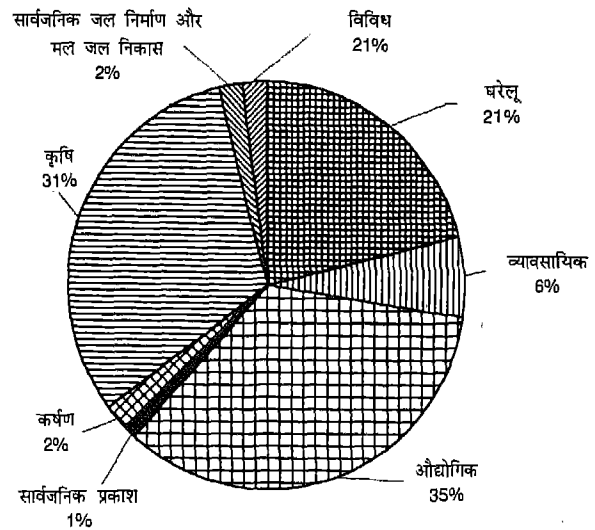
चित्र 10.4 भारत : बिजली का उपभोग (प्रतिशत में)

योजनाओं के दौरान जल शक्ति के विकास के लिए प्रभावशाली प्रयास किए गए तथा अनेक बहु उद्देश्यीय योजनाओं का निर्माण किया गया। सन् 1975 में राष्ट्रीय जलविद्युत ऊर्जा निगम की स्थापना की गई इस निगम ने अब तक जलविद्युत की आठ परियोजनाएं पूरी की हैं। इनकी कुल स्थापित क्षमता 2193 मेगावाट है। सन् 2000-01 के अन्त में जलविद्युत की कुल स्थापित क्षमता बढ़कर 25,219.55 मेगावाट हो गई है, जो बिजली की कुल स्थापित क्षमता का लगभग एक चौथाई भाग है। सस्ती, प्रदूषण मुक्त और नवीकरणीय स्रोत के होने के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद की अवधि मे जलविद्युत का महत्व कम हो गया है। सन 1950-51 में इसकी भागीदारी 49 प्रतिशत की थी, जो घटकर 2000-01 में केवल 14.9 प्रतिशत रह गई है। फिर भी उत्तरी पश्चिमी और दक्षिणी ग्रिडों में जल विद्युत की उल्लेखनीय भूमिका है। उत्तर-पूर्वी ग्रिड मुख्य रूप से जलविद्युत पर आश्रित हैं।

देश में ऊर्जा के संकट के संदर्भ में जल विद्युत की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। भारतीय नदियां प्रतिवर्ष 1677 अरब घन मीटर जल बहाकर समुद्र में ले जाती हैं। केंद्रीय जल और ऊर्जा आयोग के अनुमान के अनुसार इन नदियों से चार करोड़ किवाघ (kwh) जल विद्युत बनाई जा सकती है। केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण ने पुन: अनुमान लगाकर बताया कि 84000 मेगावाट जल विद्युत की संभावित उत्पादन क्षमता है। यह वार्षिक ऊर्जा उत्पादन की 450 अरब यूनिटों के बराबर है। नदी द्रोणियों के अनुसार संभावित क्षमता सारणी 10.7 में दी गई है।

***सारणी 10.7* — भारत : नदी द्रोणियों के अनुसार जलविद्युत क्षमता का अनुमान।**

60 प्रतिशत उद्भार गुणक पर क्षमता हजार मेगा वाट में

नदी द्रोणी	*संभावित क्षमता*	*योग का प्रतिशत*
सिंधु	20.0	23.8
ब्रह्मपुत्र	35.0	41.7
गंगा	11.0	13.1
मध्यवर्ती भारत की द्रोणियां	3.0	3.6
पश्चिम की ओर बहने वाली नदियां	6.0	7.1
पूर्व की ओर बहने वाली नदियां	9.0	10.7
योग	**84.0**	**100.0**

यह संभावित क्षमता अनेक भौतिक और आर्थिक कारकों पर निर्भर करती है। इनमें से महत्वपूर्ण कारक ये हैं : नदी की प्रवृत्ति, नदी में जल की मात्रा, नदी प्रवाह में नियमितता (ये सभी वर्षा प्रतिरूप पर आश्रित हैं), भूमि का स्वरूप, शक्ति के अन्य स्रोतों की उपलब्धता, मांग पैदा करने वाला आर्थिक विकास का स्तर तथा प्रौद्योगिकीय स्तर। तीव्र गति से जल का नियमित पर्याप्त प्रवाह जल विद्युत के विकास के लिए अनुकूल दशा है। प्रवाह की नियमितता और मात्रा वर्षा के स्वरूप पर निर्भर करती है जबकि ढाल प्रवाह की गति को निर्धारित करता है। सारे देश में इन दशाओं में बहुत अंतर पाया जाता है। अत: जल विद्युत की संभावित क्षमता का वितरण भी असमान है।

उत्तरी पर्वतीय प्रदेश से निकलने वाली नदियां इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन नदियों के उद्गम स्रोत हिमानियों और हिमक्षेत्रों में हैं। अत: ये सततवाहिनी हैं तथा इनका जलप्रवाह पूरे वर्ष नियमित बना रहता है। ऊबड़-खाबड़ भूमि के कारण प्रवाह तेज रहता है। यही नहीं जल के अन्य उपयोग के लिए प्रतिस्पर्द्धा भी कम है। इस पर्वतीय प्रदेश के उत्तर-पूर्वी भाग में ब्रह्मपुत्र नदी की द्रोणी है। इसमें संभावित क्षमता का सर्वाधिक संकेंद्रण है। उत्तर पश्चिम की सिन्धु नदी द्रोणी का दूसरा स्थान है। गंगा की हिमालयी सहायक नदियों की संभावित क्षमता 11000 मेगावाट की है। इस प्रकार तीन चौथाई संभावित क्षमता उत्तरी पर्वतीय प्रदेश से निकलने वाली नदियों की द्रोणियों में निहित हैं।

इस दृष्टि से प्रायद्वीपीय भारत की नदियों का महत्व अपेक्षाकृत कम है। ये अपने प्रवाह के लिए पूर्णतया वर्षा पर आश्रित हैं। अत: इनका प्रवाह अनियमित है। मानसून की अवधि में असाधारण रूप से बढ़ जाता है तथा उसके बाद एक लंबी अवधि तक इनकी जलधारा क्षीण बनी रहती है। इसलिए प्रवाह को नियमित करने के लिए जल का भंडारण आवश्यक है। इस भाग के पहाड़ी प्रदेशों में अनेक नदीतंत्रों के ऊपरी और मध्य मार्गों में अधिकतर संभावित क्षमता सीमित है। नदी के इन मार्गों में स्थलाकृतिक लक्षण सिंचाई के लिए प्राय: अनुकूल नहीं होते हैं। परिणामस्वरूप, जल विद्युत के स्थलों के विकास का जल के अन्य महत्वपूर्ण उपयोगों के साथ कोई विरोध नहीं होता है। प्रायद्वीपीय भारत में जल विद्युत की संभावित क्षमता के संकेंद्रण के प्रमुख क्षेत्र ये हैं: पश्चिमी घाट, उत्तर पश्चिमी कर्नाटक, नीलगिरि और अनामलाई पहाड़ियों तथा नर्मदा की ऊपरी द्रोणी। इस सब के बावजूद जलविद्युत की संभावित क्षमता का अपेक्षाकृत अधिक विकास इन दक्षिणी राज्यों मे ही हुआ है, क्योंकि ये राज्य उत्तर पूर्वी पठारों के कोयला क्षेत्रों से बहुत दूर हैं।

परमाणु शक्ति

परमाणु शक्ति कार्यक्रम विगत शताब्दी के पांचवें दशक में शुरू किए गए थे। परमाणु कार्यक्रमों के निर्णय लेने के लिए सर्वोच्च संस्था टाटा एटामिक एनर्जी कमीशन का 1948 के अगस्त महीने में गठन किया गया था। लेकिन इस दिशा में प्रगति तभी प्रारंभ हुई, जब 1954 में ट्रांबे में परमाणु ऊर्जा संस्थान की स्थापना हो गई। इस संस्थान का नाम बदल कर 1967 में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र रखा गया। 1969 में मुंबई के निकट तारापुर में 320 मेगावाट की क्षमता के पहले परमाणु शक्ति केंद्र की स्थापना की गई। इसके बाद कोटा के निकट रावतभाटा में

भारत के विभिन्न राज्यों में जल विद्युत उत्पादन के प्रमुख केंद्र

राज्य	*जल विद्युत उत्पादक केंद्र का नाम*
जम्मू और कश्मीर	निचला झेलम, चिनाब पर सलाल, दुल हस्ती और कर्राह
पंजाब और हिमाचल प्रदेश	सतलुज पर भाकड़ा नांगल, व्यास पर देहर, सतलुज पर गिरि बाटा, आंध्रा, बिनवा, रूक्ति, रौंगतौंग, भावनगर, बस्सी, बैरा सिऊल, चमेरा, नाथपा-झाकड़ी (भारत की सबसे बड़ी जल विद्युत परियोजना)।
उत्तर प्रदेश	सोन पर रिंद, टोंस पर खोदरी और चिबरो
उत्तरांचल	भागीरथी (गंगा) पर टिहरी
राजस्थान	चंबल पर राणा प्रताप सागर और जवाहर सागर
मध्य प्रदेश	चंबल पर गांधी सागर, नर्मदा पर पेंच और बारगी, टोंस पर बनसागर
बिहार	कोसी
झारखंड	सुबर्णरेखा, मैथान, पंचेत, तिलैया (तीनों दामोदर पर)
पश्चिम बंगाल	पंचेत
उड़ीसा	महानदी पर हीराकुड, मेला बाली
उत्तर पूर्वी राज्य	दिखू, दोयांग (दोनों नागालैंड में), गोमूती (त्रिपुरा), लोकतक (मणिपुर) कोपिली (असम), खानडौंग और क्रिदेमकुलई (मेघालय), सेरलुई बाराबी (मिजोरम), रंगानदी (अरुणाचल प्रदेश)
गुजरात	उकई (तापी), कदाना (माही)
महाराष्ट्र	कोयना, भिवपुरी (टाटा इलैक्ट्रिक वर्क्स), खोपली, भोला, भीरा, पूर्णा, वैतरणा, पैथान, भटनागर बीड।
आंध्र प्रदेश	निचला सिलेरू, ऊपरी सिलेरू, मचकुंड, निजामसागर, नागार्जुन सागर, श्री शैलम (कृष्णा)
कर्नाटक	तुगंभद्रा, शरावती, कालीनदी, महात्मा गांधी (जोग प्रपात), शिव समुद्र (कावेरी) शिम्सापुरा मुनीराबाद, लिंगमक्की।
केरल	इदुकी (पेरियार) सबरिगिरि कुत्तियाडी, शोलायार, सेनगुलाम, पल्ली वसाल, कल्लाड, नीरियामंगलम, पंरबिकुलम, अलियार, पोरिंगल, पोनियार।
तमिलनाडु	पाइकारा, मैटूर, कोडायार, शोलायार, अलियार, सकरपाथी, मोयार, सुरुलिया, पापनाशम।

(320 मेगावाट), तमिलनाडु में कल्पक्कम (440 मेगा वाट) और उत्तर प्रदेश के नरौरा में परमाणु रिएक्टर स्थापित किए गए। कर्नाटक के कैगा और गुजरात के काकरापाड़ा में भी परमाणु ऊर्जा संयंत्र लगाए गए हैं। इस प्रकार इस समय 6 केंद्रों पर स्थित दस यूनिटों से परमाणु ऊर्जा पैदा की जा रही है। इन परमाणु ऊर्जा रिएक्टरों की ईंधन और भारी पानी की मांग, हैदराबाद स्थित परमाणु ईंधन संकुल तथा वडोदरा के भारी पानी संयंत्रों से पूरी की जा रही है। सन् 2000-01 में इन परमाणु रिएक्टरों की कुल स्थापित क्षमता 2758 मेगावाट थी। ये केवल 16.9 अरब किवाघ ऊर्जा का उत्पादन कर रहे हैं। यह भारत में उत्पादित कुल ऊर्जा का केवल 3.4 प्रतिशत भाग है।

ऊर्जा के स्रोतों के आधार पर तीन प्रकार के क्षेत्रों की पहचान की जा सकती है :

1. ***जल विद्युत प्रधान क्षेत्र :*** यह कर्नाटक, केरल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, मेघालय, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम में विस्तृत है। ये सभी कोयला क्षेत्रों से दूर स्थित हैं लेकिन जल विद्युत के विकास के लिए यहां अनुकूलतम दशाएं उपलब्ध हैं।
2. ***ताप विद्युत प्रधान क्षेत्र :*** इसमें दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, असम, पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र शामिल हैं। इनमें से अधिकांश राज्यों में कोयला के सुरक्षित भंडार हैं, जिनका उपयोग विद्युत

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परन्तु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 10.5 भारत : नाभिकीय एवं तापीय शक्ति के संयंत्र

उत्पादन के लिए किया जाता है। बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाणा और पंजाब में कोयला नहीं हैं, पर कोयले के क्षेत्र रेलमार्गों से जुड़े हैं। तथापि, ये अपने शक्ति के साधनों में परिवर्तन कर रहे हैं (चित्र 10.5)।

3. ***अणुशक्ति प्रधान क्षेत्र :*** यह क्षेत्र राजस्थान है, जहां कुल वाणिज्यिक ऊर्जा का 54 प्रतिशत अणु शक्ति है, 33 प्रतिशत ताप विद्युत और 13 प्रतिशत जलविद्युत है। यह राज्य कोयला और जल दोनों में ही अभावग्रस्त है।

अपारंपरिक ऊर्जा के स्रोत

सबसे पहले 1970 में ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों का महत्व स्वीकार किया गया था। अब यह माना जाने लगा है कि ऊर्जा के नवीकरणीय संसाधन ऊर्जा के सततपोषणीय विकास के आधार बन सकते हैं, क्योंकि ये असमाप्य और पर्यावरण हितैषी हैं। विगत एक चौथाई शताब्दी में ऊर्जा की अनेक नवीकरणीय प्रौद्योगिकियों का विकास हुआ है तथा गांवों और नगरों में इनका उपयोग शुरू किया गया है। ऊर्जा के इन स्रोतों में निम्नलिखित शामिल हैं : बायोगैस, जैव पदार्थ, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, लघु जलविद्युत परियोजनाएं, सौर फोटो वौल्टैइक ऊर्जा, नगरीय, नगरपालिका के और औद्योगिक कूड़ा-करकट ऊर्जा के अपारंपरिक स्रोतों की

सारणी 10.8 **— भारत : नवीकरणीय ऊर्जा की संभावित क्षमता और उपलब्धियां**

स्रोत/तंत्र	*संभावित क्षमता लगभग*	*31.03.2001 को स्थिति*
बायो गैस संयंत्र संख्या	120 लाख	32 लाख
सौर जल तापन तंत्र	—	337 लाख
सौर फोटो भोल्टैइक तंत्र	20 मे.वा./वर्ग कि.मी	73 मेगावाट
बायोमास शक्ति	19,500 मेगावाट	332.18 मेगावाट
पवन शक्ति	45,000 मेगावाट	1,340 मेगावाट
लघु जलविद्युत	15,000	1,361 मेगावाट
सौर फोटो वौलटैइक शक्ति	इकाइयां	2,494 मेगावाट

व्यवस्था के लिए एक अलग मंत्रालय बनाया गया है। ऊर्जा के नवीकरणीय संसाधनों से संबंधित सभी कार्यों, नियोजन, प्रोत्साहन और समन्वय का दायित्व इस मंत्रालय का है। भारत इस समय संसार का ऐसा देश है, जिसमें ऊर्जा के नवीकरणीय अपारंपरिक स्रोतों का उपयोग करने के लिए प्रौद्योगिकी विकसित कर ली है। कुछ उपलब्धियां सारणी 10.8 में दी गई हैं।

निष्कर्ष

बिजली आसानी से आयात और भंडारित नहीं की जा सकती। अत: देश की ऊर्जा की मांग को पूरा करने के लिए देश में ही इसकी उत्पादन क्षमता का विकास अनिवार्य है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में ऊर्जा क्षेत्र में क्षमता और उत्पादन की पर्याप्त वृद्धि पर ध्यान दिया गया था। लेकिन योजना के प्रथम तीन वर्षों में ऊर्जा क्षेत्र की क्षमता का विस्तार आशाओं से बहुत कम रहा है। पेट्रोलियम के घरेलू उत्पादन के न बढ़ने के कारण तेल का अत्यधिक मात्रा में आयात अनिवार्य हो गया है। ऊर्जा उत्पादन क्षमता को तय कार्यक्रम के अनुरूप नहीं बढ़ाया जा सका है। इन परिस्थितियों में ऊर्जा क्षेत्र में निम्न कार्यक्रमों पर विशेष जोर दिया जा रहा है। ये कार्यक्रम हैं : ऊर्जा का उत्पादन कर रहे संयंत्रों से अधिक से अधिक लाभ उठाना, ऊर्जा आपूर्ति की विश्वसनीयता और गुणवत्ता में सुधार करना, अंतर्प्रादेशिक पारेषण संपर्क स्थापित करना, तथा समन्वित राष्ट्रीय ग्रिड का गठन। इस प्रकार ऊर्जा के सभी क्षेत्रों में सुधारों की आवश्यकता है। ऊर्जा के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इससे मांग और आपूर्ति के बीच का अंतर कम हो सकता है। एक अन्य परिवर्तन अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय चिंताओं की ओर से आ रहा है। इसमें तापमान में वृद्धि करने वाली गैसों के उत्सर्जन पर चिंता जताई जा रही है तथा ऐसी नीतियां लागू की जा रही हैं, जिनमें बेहतर क्षमता और नवीकरणीयता और कोयला के कम से कम उपयोग तथा तेल और गैस के अधिक उपयोग पर जोर दिया जा रहा है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   (i) भारत में खनिज संसाधनों की खोज और विकास में लगे तीन संगठनों के नाम बताइए।
   (ii) भारत की प्रमुख खनिज पट्टियों के नाम बताइए।
   (iii) उन चार नदी घाटियों के नाम बताइए जिनमें गोंडवाना कोयला पाया जाता है।
   (iv) चार राज्यों के नाम बताइए जहां भारत का अधिकांश कोयला निकाला जाता है।
   (v) लिग्नाइट किसे कहते हैं।
   (vi) भारत के पैट्रोलियम उत्पादक प्रदेशों के नाम बताइए।
   (vii) भारत के परमाणु ऊर्जा केंद्रों के नाम बताइए।
   (viii) ऊर्जा के गैरपरंपरागत स्रोत कौन से हैं?
2. भारत में मैंगनीज अयस्क और बॉक्साइट के उपयोग और वितरण का वर्णन कीजिए।
3. भारत में लौह-अयस्क के वितरण का वर्णन कीजिए।
4. भारत में बिजली के वितरण के प्रतिरूप का वर्णन कीजिए।
5. निम्नलिखित खनिजों के उपयोगों का वर्णन कीजिए :
   (i) क्रोमाइट
   (ii) जस्ता
   (iii) तांबा
   (iv) डोलोमाइट
   (v) चूने का पत्थर
   (vi) कोयला
6. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) धात्विक और अधात्विक खनिज
   (ii) ताप और जल विद्युत
   (iii) गोंडवाना और टरशरी कोयला।

परियोजना कार्य

7. (क) भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए :
   (i) भारत की तेल परिष्करणशालाएं
   (ii) पैट्रोलियम उत्पादक क्षेत्र
   (ख) देश में कोयले और पैट्रोलियम के वितरण प्रतिरूपों पर एक संक्षिप्त आलेख तैयार कीजिए।

11
अध्याय

विनिर्माण उद्योग

औद्योगिक विकास को आर्थिक विकास के स्तर को नापने के लिए मापदंड के रूप में उपयोग किया जाता है। संसार के सभी विकसित देशों में औद्योगिक क्षेत्र अत्यंत विकसित और विविधीकृत होता है। भारत में औद्योगिक विकास के लिए सभी आवश्यक दशाएं विद्यमान हैं। विशाल और विविध प्राकृतिक संसाधनों के साथ इसकी विशाल जनसंख्या सस्ते श्रमिक सुलभ कराती हैं तथा निर्मित वस्तुओं की खपत के लिए विशाल बाजार भी प्रदान करती हैं।

यूरोप में औद्योगिक क्रांति से पूर्व भारत औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश था। भारतीय उद्योग कृषि के साथ एकीकृत थे तथा घरेलू उद्योग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अंग थे। भारतीय दस्तकार और कारीगर, कपड़ा बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना, बांस के उपकरण, आभूषण तथा धातुओं की वस्तुएं बनाना जानते थे। वे लकड़ी और चमड़े की वस्तुएं भी बनाते थे। भारत जलयान निर्माण के लिए भी प्रसिद्ध था। लेकिन यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बाद भारतीय बाजारों को ब्रिटेन के कारखानों में बनी कम कीमत की वस्तुओं से पाट दिया गया। भारतीय हस्तशिल्प और ग्रामीण उद्योगों में बनी वस्तुएं कारखानों में बनी वस्तुओं का मुकाबला नहीं कर पाईं और इस प्रकार देश के घरेलू उद्योग नष्ट हो गए।

स्वतंत्रता पूर्व का औद्योगिक विकास

भारत में औद्योगीकरण की शुरुआत सन् 1854 में मुख्यत: भारतीय पूंजी और उद्यम से मुंबई (बंबई) में सूती वस्त्र बनाने के कारखाने की स्थापना से हुई। पहली जूट मिल 1855 में कोलकाता के निकट रिसरा में स्काटिश पूंजी और प्रबंध से लगाई गई थी। कोयले का खनन भी लगभग उसी समय शुरू हुआ। इसके बाद कागज के कारखाने और रासायनिक उद्योग भी शुरू किये गये। सन् 1875 में कुल्टी में कच्चा लोहा बनाने का कारखाना खोला गया। 1907 में जमशेदपुर में टाटा लोहा और इस्पात कंपनी की स्थापना के बाद से भारत के औद्योगिक इतिहास का नया अध्याय शुरू हुआ।

प्रथम विश्वयुद्ध से पहले उद्योगों का विकास धीमा था। अंग्रेज भारतीय बाजार को ब्रिटेन के उद्योगों के लिए खोना नहीं चाहते थे। भारतीय उद्योग केवल ब्रिटिश उद्योगों के उत्पादों की कमी को पूरा करने वाले थे। केवल उन उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाता था, जिनका विकास ब्रिटेन के लिए अनुपयुक्त था। चीनी और सीमेंट ऐसे ही उद्योग थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान और बाद में परिस्थितियां बहुत बदल गईं। युद्ध के कारण समुद्री मार्ग से वस्तुओं के परिवहन में बाधा पड़ती थी। अत: एक उदार नीति अपनाई गई, जिसने औद्योगिक विकास को प्रेरित किया। इस्पात, चीनी, सीमेंट, कांच, औद्योगिक रसायन और इंजिनियरी का सामान बनाने वाले उद्योगों की स्थापना की गई। इस अवधि में पहले से स्थापित उद्योगों का भी काफी विस्तार हुआ। युद्धोत्तर मुद्रा स्फीति और 1947 में देश के विभाजन का उद्योगों पर, विशेषरूप से जूट और सूती वस्त्र उद्योग पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

स्वातंत्र्योत्तर औद्योगिक विकास

स्वतंत्रता के समय भारत का औद्योगिक विकास मुख्य रूप से उपभोक्ता वस्तुओं तक ही सीमित था। मुख्य उद्योग थे : सूती वस्त्र, चीनी, नमक, साबुन, चमड़े की वस्तुएं तथा कागज। कोकिंग कोयला, सीमेंट, इस्पात, अलौह धातुएं, रसायन जैसी मध्यवर्ती वस्तुएं बनाने वाले विनिर्माण उद्योगों की प्रगति धीमी थी। पूंजीगत वस्तुएं बनाने वाले उद्योग बहुत पिछड़े हुए थे। 1948 में एक औद्योगिक नीति लागू की गई इसमें औद्योगिक नीति की रूपरेखा को स्पष्ट किया गया था। इसके अनुसार उद्यमी और सत्ता दोनों के रूप में राज्य की भूमिका निर्धारित की गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ से ही औद्योगिक प्रक्रिया शुरू हुई जो बाद की योजनाओं

में भी जारी रही। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में उद्योगों की विद्यमान क्षमता के पूर्ण उपयोग पर मुख्य जोर दिया गया था। सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र में अनेक उद्योग लगाए गए थे। देश में प्रथम योजना के दौरान पहली बार निम्नलिखित वस्तुओं का निर्माण किया गया : अखबारी कागज, केल्शियम कार्बाइड, पेनीसिलीन, डी.डी.टी., धुनाई मशीनें, स्वचालित करघे, इस्पात के तारों के रस्से/रस्सियां, जूट कातने के फ्रेम, गहरे कुंओं के लिए टर्बाइन पंप, मोटर तथा उच्चतर क्षमता वाले ट्रांसफार्मर।

1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव के द्वारा अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र को सामरिक महत्व की भूमिका सौंपी गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) में पूंजीगत तथा वस्तुओं का उत्पादन करने वाली मशीनों को बनाने वाले उद्योगों पर विशेष बल दिया गया। इस योजना के दौरान उद्योगों का विकास और विविधीकरण उल्लेखनीय था। सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात के तीन नए कारखाने लगाए गए। बिजली के भारी सामान और भारी मशीनी उपकरण उद्योगों तथा भारी इंजीनियरी उद्योगों की विभिन्न शाखाओं की आधारशिला रखी गई। रसायन उद्योग ने अत्याधिक प्रगति की। यह प्रवृत्ति अगली योजना में भी जारी रही। तीसरी पंचवर्षीय योजना और बाद की तीन वार्षिक योजनाओं में औद्योगिक विकास की गति में बाधाएं आईं। ये बाधाएं चीन (1962) तथा पाकिस्तान (1965) के साथ युद्ध और 1965-67 में भयंकर सूखे के रूप में आई थीं।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) के दौरान औद्योगीकरण में असंतुलन को दूर करने के प्रयास किए गए तथा निर्यात के लिए वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ावा दिया गया तथा निर्यात के लिए वस्तुएं बनाने वाले उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित किया गया ताकि और अधिक औद्योगीकरण हो सके तथा और अधिक निर्यात किया जा सके। पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) में निर्यातोन्मुख वस्तुओं के उत्पादन तथा जन-उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन पर बल दिया गया। इसी समय पैट्रोलियम की कीमतों में भारी तेजी से न केवल भारत में अपितु पूरे संसार में आर्थिक संकट पैदा हो गया।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में औद्योगिक नीति का उदारीकरण किया गया। उत्पादन तेजी से बढ़ने लगा तथा इलैक्ट्रोनिक उद्योग ने असाधारण प्रगति की। देश में लघु कम्प्यूटरों, सूक्ष्म संसाधित्रों (प्रोसेसरों), संचार उपकरणों, रेडियो प्रसारण और दूरदर्शन प्रसारण उपकरणों, आदि का उत्पादन होने लगा। बिजली के उपकरणों, मोटरवाहनों और मशीनी उपकरण बनाने वाले उद्योगों की प्रगति भी संतोषजनक थी। सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) से एकीकृत औद्योगिक नीति अपनाई गई। इसके अनुसार देश के विशाल घरेलू बाजार और निर्यात की संभावनाओं को ध्यान मे रखकर उद्योगों का विकास किया गया। 1991 की नई औद्योगिक नीति में उदारीकरण के अनेक उपायों की घोषणा की गई। इस नीति के अनुसार आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) के दौरान औद्योगिक क्रियाकलापों में निजी क्षेत्र की भागीदारी को बहुत प्रोत्साहन दिया गया। उदारीकरण की नीति के प्रमुख उपाय ये थे : निवेश संबंधी बाधाएं हटा दी गईं, व्यापार को बंधनमुक्त कर दिया गया, कुछ क्षेत्रों में विदेशी प्रौद्योगिकी आयात करने की छूट दी गई, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (विनियोग) की अनुमति दी गई, पूंजी बाजार में पहुंच की बाधाओं को हटा दिया गया, औद्योगिक लाइसेंस पद्धति को सरल और नियंत्रण मुक्त कर दिया गया, सार्वजनिक क्षेत्र के सुरक्षित क्षेत्रों को घटा दिया गया तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ चुने हुए उपक्रमों का विनिवेशीकरण किया गया अर्थात् इन्हें निजी कंपनियों को बेच दिया गया। इन सभी उपायों के बावजूद, कुछ समय पूर्व तक भारतीय उद्योगों का उत्पादन धीमा ही बना रहा।

उद्योगों के प्रकार

उद्योगों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। आकार, पूंजी निवेश और श्रमिकों की संख्या के आधार पर उद्योगों को बड़े पैमाने के, मध्यम पैमाने, छोटे पैमाने और कुटीर उद्योगों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। उद्यम वृत्ति या स्वामित्व के आधार पर उद्योगों को तीन वर्गों में रखा जाता है : (1) सार्वजनिक क्षेत्र, (2) निजी क्षेत्र और (3) संयुक्त और सहकारी क्षेत्र। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम सरकारी कंपनियां या निगम हैं, जिनमें सरकारी पूंजी लगी होती है। सामरिक महत्व के उद्योग तथा राष्ट्रीय महत्व के उद्योग प्रायः सार्वजनिक क्षेत्र में लगाए जाते हैं। उद्योगों का वर्गीकरण उनके उत्पादों के उपयोग के आधार पर भी किया जाता है, जैसे (1) आधारभूत वस्तु उद्योग (2) पूंजीगत वस्तु उद्योग (3) मध्यवर्ती वस्तु उद्योग (4) उपभोक्ता वस्तु उद्योग।

उपयोग में लाए गए कच्चे माल के आधार पर भी उद्योगों का वर्गीकरण किया जाता है। इस वर्गीकरण के अनुसार चार प्रकार के उद्योग हैं : (1) कृषि-आधारित उद्योग, (2) वन-आधारित उद्योग, (3) खनिज-आधारित

उद्योग तथा (4) उद्योगों में प्रसंस्कृत कच्चे माल पर आधारित उद्योग।

उद्योगों का अन्य सामान्य वर्गीकरण, निर्मित वस्तुओं के स्वरूप के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार उद्योगों को सात वर्गों में रखा जाता है : (1) धातु उद्योग, (2) यांत्रिक इंजीनियरी उद्योग, (3) बिजली इंजीनियरी उद्योग, (4) रसायन और संबंधित उद्योग, (5) वस्त्र उद्योग, (6) खाद्य उद्योग, (7) बिजली उत्पादन उद्योग और (8) इलैक्ट्रोनिक तथा संचार उद्योग हैं।

उद्योगों का स्थानीकरण

उद्योगों की अवस्थिति अनेक कारकों से प्रभावित होती है। इनमें से प्रमुख ये हैं : कच्चे माल की उपलब्धि, शक्ति (ऊर्जा), बाजार, पूंजी, परिवहन और श्रमिक। इन कारकों का सापेक्षिक महत्व समय, स्थान, अत्यावश्यकता, कच्चे माल के प्रकार और उद्योग के प्रकार के अनुसार बदलता रहता है तथापि आर्थिक दृष्टि से विनिर्माण उद्योग वहीं स्थापित किए जाते हैं, जहां उत्पादन लागत तथा निर्मित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने की लागत सबसे कम हो। परिवहन लागत, काफी हद तक कच्चे पदार्थ और निर्मित वस्तुओं के स्वरूप पर निर्भर करती है। उद्योगों के स्थानीकरण की अवस्थिति के संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से हैं :

कच्चा माल : ऐसे उद्योग, जिनके उत्पाद कच्चे माल की तुलना में काफी कम वजन के होते हैं, कच्चे माल के स्रोत के निकट लगाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में चीनी उद्योग, उत्तरी मैदानों या दक्षिणी राज्यों के गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में ही लगाए जाते हैं। 100 किलो गन्ने से लगभग 12 किलो चीनी बनती है, शेष खोई रह जाती है। यदि गन्ने को लंबी दूरियों तक ले जाना पड़े तो खोई के परिवहन की लागत, चीनी की उत्पादन लागत को बढ़ा देगी। इसी प्रकार लुग्दी उद्योग, तांबा प्रगलन, और कच्चा लोहा (पिग आयरन) उद्योग अपने कच्चे माल द्वारा ही आकर्षित होते हैं। लोहा और इस्पात उद्योग में उपयोग में आने वाले लौह-अयस्क और कोयला, दोनों ही भारी वजन खोने वाले और लगभग समान भार के होते हैं। अतः अनुकूलतम अवस्थिति इन दोनों के स्रोतों के मध्य होगी, जैसे कि जमशेदपुर में है। अन्य इस्पात संयंत्र या तो कोयला क्षेत्रों के निकट स्थापित किए गए हैं (बोकारो, दुर्गापुर आदि) अथवा लौह-अयस्क के स्रोतों के निकट (भद्रावती, भिलाई और राऊरकेला) हैं। इसी प्रकार शीघ्रनाशी कच्चे माल पर आधारित उद्योग कच्चे माल की उपलब्धता के निकट लगाए जाते हैं।

अधिक तथा सस्ते और भारी कच्चे माल का उपयोग करने वाले उद्योग भी कच्चे माल के प्रदेशों में ही स्थापित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, सीमेंट उद्योग का प्रमुख कच्चा माल चूने का पत्थर है, जो भारी-भरकम और सस्ता होता है। इसीलिए देश में सीमेंट बनाने वाले कारखाने चूने के पत्थर की खदानों पर या उनके निकट लगाए जाते हैं। बॉक्साइट पर आधारित अल्युमिनियम उद्योग, कच्चे पदार्थोंमुख उद्योग का विशिष्ट उदाहरण है। यही नहीं, आधारभूत उद्योगों के उत्पादों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करने वाले उद्योग भी कच्चे माल के स्रोतों से आकर्षित होते हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर अनेक इंजीनियरी उद्योग, लोहा और इस्पात केंद्रों जैसे जमशेदपुर और भिलाई के आस-पास विकसित हो गए हैं।

ऊर्जा/शक्ति : मशीनों को चलाने के लिए जरूरी है, इसीलिए किसी भी उद्योग की स्थापना से पहले ऊर्जा की नियमित और निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित कर ली जाती है। लेकिन कुछ उद्योग, जैसे अल्युमिनियम और कृत्रिम नाइट्रोजन का उत्पादन करने वाले उद्योग ऊर्जा के स्रोतों के निकट लगाए जाते हैं, क्योंकि इन्हें भारी मात्रा में बिजली की आवश्यकता होती है। यहां यह बता देना उचित होगा कि दक्षिणी और पश्चिमी भारत स्वदेशी कोयला क्षेत्रों से दूर हैं और यहां जो भी औद्योगिक विकास हो सका, वह इन क्षेत्रों में जल विद्युत के विकास के बाद ही संभव हुआ।

बाजार : देश में उद्योगों की अवस्थिति को बाजार का स्वरूप भी प्रभावित करता है। औद्योगिक मशीनी उद्योग, भारी रसायन उद्योग आदि औद्योगिक क्षेत्रों में ही स्थापित किए जाते हैं क्योंकि इनके उत्पादों की प्रदेश के अन्य उद्योगों में मांग रहती है। पैट्रोलियम परिष्करणशालाएं बाजार के निकट ही लगाई जाती हैं, क्योंकि कच्चे तेल का परिवहन आसान होता है तथा इनसे अनेक उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं, जिनके आधार पर अन्य उद्योग शुरू किए जाते हैं। मथुरा और बरौनी

परिष्करणशालाएं विशिष्ट उदाहरण हैं। आयातित कच्चे तेल पर आधारित परिष्करणशालाएं प्राय: पत्तनों के निकट ही लगाई जाती हैं।

परिवहन एवम् श्रम : परिवहन के साधनों ने उद्योगों की अवस्थिति और उनके फैलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उदाहरण के लिए प्रारंभिक काल में अधिकतर उद्योग मुंबई और कोलकाता के आस-पास ही स्थापित किए जाते थे, क्योंकि इन पत्तनों में मशीनें आयात करने की सुविधा उपलब्ध थी। पत्तन की सुविधा के कारण मुंबई में ही सूती वस्त्र उद्योग का संकेंद्रण हो गया था। रेलमार्गों के निर्माण के बाद ही यह उद्योग आंतरिक भागों में भी स्थापित किए जाने लगे। सभी प्रमुख उद्योग मुख्य रेलमार्गों पर ही अवस्थित हैं। श्रमिकों की मजदूरी भी विचारणीय मुद्दा रहा है, लेकिन अन्य कारकों की तुलना में इसका महत्व कम है।

औद्योगिक नीति : भारत जैसे देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था में उद्योगों की अवस्थिति के चयन का निर्णय अन्तिम रूप में सरकारी नीतियों और जनता की मांग पर निर्भर करता है। इसलिए उद्योगों के लिए स्थान का चयन सदैव उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर ही नहीं होता है। व्यवहार में उद्योगों की अवस्थिति और विकास का चयन प्राय: राजनीतिक निर्णयों के अनुरूप ही होता है। अत: उद्योग प्राय: ऐसे क्षेत्रों में स्थापित किए जाते हैं जहां पहले से ही उद्योग विद्यमान हैं अथवा वह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रभावशाली होता है। छत्तीसगढ़ का भिलाई में इस्पात कारखाने और उत्तरी उड़ीसा में राऊरकेला में इस्पात कारखाने की स्थापना का मुख्य उद्देश्य इन क्षेत्रों में औद्योगीकरण को शुरू करना था।

प्रमुख उद्योगों का वितरण

ऊपर वर्णित अवस्थिति के कारकों के प्रभाव से भारत में उद्योगों का वितरण बहुत असमान है।

लोहा और इस्पात उद्योग

लोहा और इस्पात उद्योग आधुनिक संसार का आधारभूत उद्योग है। यह अन्य उद्योगों का जनक है। भारतवासियों को लोहा बनाने की कला ईसा से हजारों साल पहले से आती थी। दिल्ली में कुतुब मीनार के निकट खड़ा लौह स्तंभ देश में निर्मित लोहे की गुणवत्ता का सजीव प्रमाण है। दमिश्क की प्रसिद्ध तलवारें भारतीय लोहे से बनाई जाती थीं। आधुनिक युग में, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम आधे भाग में लोहे और इस्पात के कारखाने लगाने के कई प्रयत्न किए गए। लेकिन कच्चा लोहा (पिग आयरन) बनाने का पहला सफल कारखाना सन् 1875 में कुल्टी (प.बंगाल) में बाराकर आयरन वर्क्स के नाम से स्थापित किया गया। लेकिन सन् 1907 में टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी द्वारा साक्ची (झारखंड स्थित आधुनिक जमशेदपुर) में लोहे और इस्पात के कारखाने की स्थापना के बाद से भारत में इस्पात का उत्पादन शुरू हुआ। सन् 1908 में हीरापुर में इस्पात बनाने का एक नया कारखाना लगाया गया। लेकिन बाद में इसे कुल्टी के साथ मिला दिया गया। इसका नाम इंडियन आयरन स्टील कंपनी रख दिया गया। 1923 में मैसूर आयरन एण्ड स्टील कंपनी ने भद्रावती (कर्नाटक) में एक कारखाना स्थापित किया। ऊर्जा के लिए लकड़ी पर आधारित यह पहला कारखाना था, जो पूरी तरह से भारतीय इंजीनियरों द्वारा बनाया गया था। 1937 में बर्नपुर में एक और कारखाना लगाया गया, जिसे आगे चलकर 1953 में इंडियन आयरन एण्ड स्टील कंपनी में शामिल कर लिया गया। इस प्रकार स्वतंत्रता के समय भारत में जमशेदपुर, कुल्टी-हीरापुर-बर्नपुर और भद्रावती में लोहे और इस्पात के कारखाने थे। 1950 में इन कारखानों ने 15 लाख टन कच्चे लोहे तथा 10 लाख टन इस्पात का उत्पादन किया था।

लोहे और इस्पात की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए, दूसरी पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में विदेशी तकनीकी सहायता से लोहे और इस्पात के तीन एकीकृत संयंत्र (कारखाने) लगाए गए। इन कारखानों की स्थापना भिलाई (छत्तीसगढ़), राऊरकेला (उड़ीसा) और दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) में की गई। चौथी पंचवर्षीय योजना में पुन: सार्वजनिक क्षेत्र में लोहे और इस्पात का कारखाना बोकारो (झारखंड) में स्थापित किया गया। इस कारखाने ने 1972 से उत्पादन शुरू किया। सार्वजनिक क्षेत्र के इन उपक्रमों के प्रबंध के लिए 1973 में भारतीय इस्पात प्राधिकरण का गठन किया गया। भारत का पहला तटवर्ती इस्पात का कारखाना विशाखापत्तनम (आंध्र प्रदेश) में लगाया गया। सेलम (तमिलनाडु) में इस्पात के कारखाने ने 1983 में उत्पादन शुरू किया (चित्र 11.1)। इनके

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जल-प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

अलावा अनेक लघु इस्पात संयंत्र भी चल रहे हैं। 1989-90 में इन कारखानों की कच्चे लोहे की कुल उत्पादन क्षमता 1.63 करोड़ टन तथा 1.56 करोड़ टन इस्पात पिंडों की उत्पादन क्षमता थी। 1993-94 में कच्चे लोहे का उत्पादन कुल 1.57 करोड़ टन तथा इस्पात पिंडों का उत्पादन 1.39 करोड़ टन था। सन् 2001 में भारत में परिष्कृत इस्पात का कुल उत्पादन 3.11 करोड़ टन था।

लोहे और इस्पात उद्योग की अवस्थिति : लोहा और इस्पात उद्योग मुख्य रूप से कच्चे माल पर आधारित 'वजन खोने' वाला उद्योग है। कच्चे माल की तुलना में तैयार माल का वजन काफी कम होता है। इस उद्योग को लौह-अयस्क, कोयले, चूने के पत्थर, डोलोमाइट और मैंगनीज की जरूरत होती है। एक टन कच्चे लोहे के उत्पादन के लिए 1.6 टन लौह अयस्क, 0.8 टन कोक (इसे बनाने के लिए 1.5 टन कोयला चाहिए) और 0.5 टन चूने के पत्थर और डोलोमाइट की आवश्यकता होती है। ये भारी-भरकम तथा अपेक्षाकृत सस्ते पदार्थ हैं। इसीलिए लोहे और इस्पात के कारखाने उसी स्थान पर लगाए जाते हैं, जिस स्थान पर इन पदार्थों को इकट्ठा करने में कम से कम लागत आती हो। केवल जमशेदपुर के कारखाने की ऐसी आदर्श स्थिति है। अन्य कारखाने या तो लौह-अयस्क के क्षेत्रों के निकट स्थित हैं जैसे राऊरकेला, भिलाई, भद्रावती और सेलम या कोयला क्षेत्रों के निकट स्थित हैं, जैसे दुर्गापुर, बोकारो और बर्नपुर-कुल्टी। विशाखापत्तनम् का लोहे और इस्पात का कारखाना इसका अपवाद है तथा इसकी स्थिति तटवर्ती है। सभी कारखाने प्रमुख रेलमार्गों पर स्थित हैं, जो इन्हें विशाल नगरीय बाजारों से जोड़ते हैं।

टाटा लोहा और इस्पात कंपनी : जमशेदपुर की लौह-अयस्क और कोयला क्षेत्रों के मध्य आदर्श स्थिति है। यह कोलकाता के उत्तर पश्चिम में 240 कि.मी. की दूरी पर कोलकाता मुंबई के मुख्य रेलमार्ग पर स्थित है। लौह-अयस्क सिंहभूम की नोआमुंडी और बादाम पहाड़ की आबद्ध खानों तथा उड़ीसा की जोड़ा खानों से, मैंगनीज को केंदुझार जिले की जोड़ा खानों से, तथा चूने का पत्थर और डोलोमाइट उड़ीसा के सुंदरगढ़ जिले से प्राप्त किया जाता है। कोकिंग कोयला झरिया और पश्चिम बोकारो के कोयला क्षेत्रों से आता है। सुबर्न रेखा और खोरकाई नदियों पर बने डिमना बांध के पीछे बनी झील से जल की आवश्यकता पूरी की जाती है। जमशेदपुर में और इसके आसपास अनेक भारी उद्योग केन्द्रित हो गए हैं। अतः यह एक सुविकसित औद्योगिक सकुल बन गया है।

भारतीय लोहा और इस्पात कंपनी के तीन कारखाने हैं जो कुल्टी, हीरापुर और बर्नपुर में स्थित हैं। हीरापुर में केकल ढलुआ लोहा जबकि कुल्टी-बर्नपुर में इस्पात बनाया जाता है। बाराकर नदी पर स्थित कुल्टी का लौह का कारखाना भारत का सबसे पुराना विद्यमान कारखाना है। इन कारखानों की वार्षिक उत्पादन क्षमता 10 लाख टन है। ये दामोदर घाटी के कोयला क्षेत्रों के केंद्र में स्थित हैं। इन कारखानों के लिए लौह-अयस्क सिंहभूम (झारखंड) की खानों से लाया जाता है, कोयला रानीगंज-झरिया तथा रामनगर से और चूने का पत्थर गंगपुर (उड़ीसा) से आता है। मैंगनीज उड़ीसा के बड़ाजामदा-बांसपानी से प्राप्त किया जाता है। अलवण जल दामोदर नदी से मिल जाता है। यद्यपि इसके लिए कच्चे माल एकत्र करने की लागत, जमशेदपुर के टाटा के कारखाने से अधिक है, लेकिन इसकी स्थिति आर्थिक दृष्टि से टाटा के कारखाने की तुलना में अधिक लाभदायक है क्योंकि इसके लिए उपयोग में रेल के डिब्बों का दुतरफा उपयोग होता है। इस कारखानों के लिए लौह-अयस्क ले जाने वाले डिब्बे लौटते समय राऊरकेला और भिलाई के संयंत्रों के लिए कोयला ले जाते हैं।

विश्वेश्वरैया लोहा और इस्पात लिमिटेड, भद्रावती, कर्नाटक के शिमोगा जिले में भद्रावती नदी के तट पर स्थित है। 50 कि.मी. दूर बाबाबुदान की पहाड़ियों की कमानगुडी की लौह-अयस्क की खानों ने इस कारखाने की स्थिति को प्रभावित किया है। आज इन्हीं खानों से इस कारखाने को लौह-अयस्क की आपूर्ति होती है। उत्तर पूर्वी पठारों के कोयला क्षेत्रों से दूर स्थित होने के कारण यह कारखाना सन् 1951 तक कोयले के बजाय लकड़ी का उपयोग करता था। लेकिन अब यह कारखाना जोग जल विद्युत ऊर्जा संयंत्र से प्राप्त जल विद्युत का ऊर्जा के लिए उपयोग करता है।

राऊरकेला इस्पात कारखाना, राऊरकेला, कोलकाता, मुंबई रेलमार्ग पर उड़ीसा के सुंदरगढ़ जिले में स्थित है। इस कारखाने को जर्मनी की कंपनी क्रूप्स और डिमैग के सहयोग से लगाया गया था। इसने 1959 में उत्पादन शुरू कर दिया था। यह मैंगनीज और चूने के पत्थर के भंडारों के निकट स्थित है। लौह-अयस्क उड़ीसा के सुंदरगढ़ और केंदुझार जिलों से लाया जाता है, कोयला बोकारो, झरिया

और तालचिर क्षेत्रों से, कोकिंग कोयला कारगली के कोयला प्रक्षालन केंद्र से तथा मैंगनीज, चूने का पत्थर और डोलोमाइट बीरमित्रपुर से प्राप्त किया जाता है। हीराकुड से सस्ती पनबिजली मिल जाती है।

भिलाई इस्पात कारखाना छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के भिलाई नाम के स्थान पर रूसी सहयोग से लगाया गया था। इसने 1959 में उत्पादन शुरू कर दिया था। इस स्थान का चयन दक्षिण की ओर केवल 86 कि.मी. दूर स्थित दिल्ली-राजहरा की हैमेटाइट वर्ग के उत्तम कोटि के लौह-अयस्क के भंडारों की निकटता के कारण किया गया था। इसके लिए कोकिंग कोयला छत्तीसगढ़ के कोरबा क्षेत्रों तथा झारखंड के कारगेली क्षेत्रों से तथा मैंगनीज मध्य प्रदेश के बालाघाट और महाराष्ट्र के भंडारा जिलों से मंगाया जाता है। चूने का पत्थर और डोलोमाइट छत्तीसगढ़ में ही उपलब्ध है। ऊर्जा की मांग कोरबा स्थित ताप बिजलीघर से पूरी हो जाती है। मुंबई-हावड़ा रेलमार्ग से परिवहन की सुविधा मिल जाती है।

दुर्गापुर इस्पात कारखाना पश्चिम बंगाल के बर्दवान जिले के दुर्गापुर में ब्रिटेन के सहयोग से स्थापित किया गया था। इसने 1962 में उत्पादन प्रारंभ कर दिया था। इसे सिंहभूम की नोआमुंडी खानों से लौह-अयस्क, कोयला रानीगंज और झरिया से, मैंगनीज केंदुझार तथा चूने का पत्थर सुंदरगढ़ (दोनों उड़ीसा में) से प्राप्त होता है। दामोदार घाटी निगम परियोजना से इसे बिजली की आपूर्ति होती है।

बोकारो इस्पात लिमिटेड, बोकारो का कारखाना सोवियत संघ के सहयोग से 1972 में बोकारो (झारखंड) में स्थापित किया गया। इसे कोयला झारिया और बोकारो की खानों से, लौह-अयस्क केंदुझार की केंदु खानों से, चूने का पत्थर तथा डोलामाइट पालाम और जल विद्युत दामोदर घाटी निगम परियोजना से मिलता है।

सेलम इस्पात कारखाना तमिलनाडु के सेलम में स्थित है। इसे लौह-अयस्क कर्नाटक की निकटस्थ खानों से तथा लिगनाइट नेवेली से मिलता है। यह विशिष्ट श्रेणी का इस्पात बनाता है।

विशाखापत्तनम इस्पात परियोजना, विशाखापत्तनम भारत का पहला तटवर्ती एकीकृत संयंत्र है। छठी पंचवर्षीय योजना में इसे आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम नगर में राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड द्वारा स्थापित किया गया है। यह छत्तीसगढ़ की बैलाडिला खानों का उत्तम कोटि का लौह-अयस्क इस्तेमाल करता है। दामोदर घाटी कोयला क्षेत्रों से इसे कोयला मिल जाता है। चूने का पत्थर और डोलोमाइट खम्मम जिले में उपलब्ध है।

सूती वस्त्र उद्योग

सूती वस्त्र उद्योग देशी वस्त्र उद्योग है क्योंकि इसकी स्थापना और विकास मुख्यत: भारतीय पूंजी और उद्यम से हुआ है। इस समय सूती वस्त्र के उत्पादन में भारत का संसार मे तीसरा स्थान है। रोजगार और औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से यह बड़े उद्योगों में से एक है।

कवास जी डाबर ने 1854 में मुंबई में पहला आधुनिक ढंग का सफल सूती वस्त्र बनाने वाला कारखाना लगाया था। बाद में अहमदाबाद में दो कारखाने 'शाहपुर मिल और केलिको मिल' की स्थापना की गई। सन् 1879-80 तक देश में 58 कारखाने खुल चुके थे। विश्व युद्धों से इस उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिला और 1947 तक कारखानों की संख्या बढ़कर 423 हो गई। देश के विभाजन से इस उद्योग को बहुत धक्का लगा। भारत के हिस्से में 409 कारखाने आए और कपास उत्पादन के कुल क्षेत्र का 27 प्रतिशत भाग ही मिला।

स्वतंत्रता के बाद इस उद्योग का खूब विकास हुआ। 1998 में कारखानों की संख्या 1782 हो गई। इनमें से 192 कारखाने सार्वजनिक क्षेत्र में, 151 सहकारी क्षेत्र में तथा शेष 1439 कारखाने निजी क्षेत्र में थे। इनके अलावा हथकरघों और शक्तिचालित (बिजली) करघों की संख्या में इस अवधि में असाधारण वृद्धि हुई।

सूती वस्त्र तीन क्षेत्रों में बनाए जाते हैं-(i) कारखाने (मिल), (ii) शक्ति चालित (बिजली) करघों, और (iii) हथकरघे। सूती वस्त्र उत्पादन में कारखानों की भागीदारी घट रही है। 1950-51 में यह 81 प्रतिशत थी जो अब घट कर 1999-2000 में केवल 6 प्रतिशत रह गई है। विकेन्द्रित बिजली करघा क्षेत्र देश की मांग पूरी करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। देश के कुल कपड़ा उत्पादन में इस क्षेत्र का 59.2 प्रतिशत का योगदान है। बिजली करघा उद्योग विविध प्रकार के वस्त्र तैयार करता है। इसमें साधारण बिना डिजाइन के वस्त्रों से लेकर विविध प्रकार के डिजाइन वाले वस्त्र शामिल हैं। हथकरघा क्षेत्र 65 लाख लोगों को रोजगार प्रदान करता है। देश के कुल कपड़ा उत्पादन में इसका 19 प्रतिशत का योगदान है।

सूती वस्त्र उद्योग की अवस्थिति : सूती वस्त्र उद्योग की अवस्थिति अनेक कारकों पर निर्भर करती है। इनमें से महत्वपूर्ण ये हैं–कच्चे माल की आपूर्ति, ईंधन (ऊर्जा), रसायन, मशीनें, श्रमिक, परिवहन और बाजार। इनमें से कोई भी कारक इस उद्योग की अवस्थिति निर्धारित कर सकते हैं। भारत में सूती मिल उद्योग के स्थानीकरण के तीन मुख्य कारक हैं : विशाल बाजार, प्रचुर कच्चा माल और विदेशों से मशीनों तथा पाटों के आयात में आसानी। विशाल जनसंख्या और उष्ण कटिबंध और उपोष्ण कटिबंध में स्थिति के कारण, भारत में सूती वस्त्रों का बहुत बड़ा बाजार है। कपास एक शुद्ध कच्चा माल है और कपास या तैयार वस्त्रों के परिवहन की लागत में कोई अंतर नहीं पड़ता। जहां कपास की भरपूर मात्रा उपलब्ध है वहां सूती वस्त्र उद्योग के विशाल केंद्र बन गए हैं। सूती कारखानों की स्थापना से पूर्व लगभग सारी कपास निर्यात के लिए मुंबई लाई जाती थी। इसलिए यहां स्थापित मिलों को कपास आसानी से मिल जाती थी। मुंबई को विदेशों से मशीनें और पाटों के आयात करने का भी लाभ था। आवश्यक पूंजी भी सहज ही मिल जाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक मुंबई में 82 मिलें हो गई थीं तथा भारत की कुल स्थापित क्षमता का आधे से अधिक यहीं पर था।

लेकिन 1921 के बाद से उद्योग में परिक्षिप्त प्रारंभ हुआ। प्रारंभिक परिक्षिप्त का मुख्य कारण प्रायद्वीपीय प्रदेश में रेलमार्गों का निर्माण था। उद्योग के नए केंद्र थे-कोयम्बटूर, मदुरै, बंगलौर, नागपुर, इंदौर, शोलापुर और वडोदरा। इन केंद्रों में पुराने मूल केंद्रों की तुलना में कच्चे माल, बाजार और श्रमिकों की अधिक सुविधा थी। सूती वस्त्र उद्योग वहां भी पहुंच गया जहां अतिरिक्त लाभ भी थे, जैसे कोयला क्षेत्रों से निकटता (नागपुर), उत्तम वित्तीय सुविधाएं (कानपुर) और पत्तन की सुविधा सहित विशाल बाजार का होना (कोलकाता)।

देश में जल विद्युत सुविधाओं के विकास ने भी वस्त्र उद्योग के छितराव में योगदान दिया। तमिलनाडु में विशेषरूप से कोयम्बटूर, मदुरै और तिरूनेलवेली में कताई मिलों के असाधारण रूप के विस्तार ने पाइकारा परियोजना के पूरे होने को प्रेरित किया था। इसमें से स्थानीय उद्योगपतियों को ऊर्जा के नए स्त्रोत का लाभ उठाने की तत्परता का भी योगदान था। यह उद्योग महंगे श्रमिक क्षेत्रों से सस्ते श्रमिक क्षेत्रों की ओर भी स्थानान्तरित हुआ। इसलिए 1933 में नई सूती मिलें, मदुरै, तिरूनेलवेली, कोयम्बटूर, उज्जैन, भरूच, आगरा, हाथरस, आदि में भी स्थापित की गईं।

सूती वस्त्र उद्योग का वितरण : यह उद्योग देश के सभी प्रमुख राज्यों में फैला है। सूती वस्त्र के प्रमुख केंद्र पंचभुज प्रदेश के अंतर्गत हैं। इस पंचभुज के पांच बिंदु हैं, अहमदाबाद, मुंबई, शोलापुर, नागपुर और इंदौर-उज्जैन। महाराष्ट्र, गुजरात और तमिलनाडु सूती वस्त्र के अग्रणी उत्पादक राज्य हैं। सूती वस्त्र उत्पादन के अन्य प्रमुख राज्य हैं : पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, राजस्थान और पंजाब। मुंबई, कोयम्बटूर, अहमदाबाद और कानपुर, इस उद्योग के प्रमुख केंद्र हैं (चित्र 11.2)।

119 मिलों के साथ महाराष्ट्र सूती वस्त्र उद्योग का अग्रणी राज्य रहा है। मुंबई भारत में सूती कपड़ों की राजधानी (Cottonpolis) है। यहां आजकल 57 मिलें उत्पादन में लगी हैं। शोलापुर, पुणे, नागपुर, जलगांव, वर्धा, अमरावती, अकोला, कोल्हापुर तथा सांगली सूती वस्त्र उद्योग के अन्य प्रमुख केंद्र हैं। गुजरात के अकेले अहमदाबाद में ही 67 सूती मिलें हैं। इस राज्य के अन्य महत्वपूर्ण केंद्र हैं–वडोदरा, सूरत, भरूच, भावनगर, राजकोट और पोरबंदर। उत्कृष्ट वस्त्रों का निर्माण करना महाराष्ट्र और गुजरात की अधिकतर मिलों की विशिष्टता है। मध्य प्रदेश की सूती मिलों का संकेंद्रण इंदौर, उज्जैन, देवास, रतलाम, बुरहानपुर, मंदसौर और ग्वालियर के कपास उत्पादक क्षेत्रों में है।

तमिलनाडु में सबसे अधिक मिलें (439) हैं, लेकिन इनमें से अधिकतर कताई मिलें (416) हैं, जो विभिन्न श्रेणियों का धागा बनाती हैं। बुनाई का अधिकतर काम, बिजली करघों और हथकरघों के द्वारा किया जाता है। इनमें से लगभग आधी (200) मिलें केवल कोयम्बटूर में ही स्थित हैं। इस उद्योग के अन्य महत्वपूर्ण केंद्र ये हैं–चेन्नई, मदुरै, तिरूनेलवेली, तूतीकोरिन, तंजावूर, रामनाथपुरम और सेलम। कर्नाटक के उत्तर पूर्वी कपास उत्पादक क्षेत्रों में सूती कारखानों के साथ बिजली करघा और हथकरघा उद्योग भी फल-फूल रहा है। दावणगेरे, हुबली, बेल्लारी, मैसूर और बंगलौर प्रमुख केंद्र हैं। आंध्र प्रदेश में सूती वस्त्र के कारखाने तेलंगाना के कपास उत्पादक क्षेत्रों में केंद्रित हैं। इनमें से अधिकतर कताई मिलें हैं। हैदराबाद, सिकन्दराबाद, वारंगल और गुंटूर यहां के प्रमुख केंद्र हैं।

उत्तर में यह उद्योग पश्चिमी उत्तर प्रदेश में संकेंद्रित हैं। 14 मिलों के साथ कानपुर सबसे बड़ा केंद्र है। मोदीनगर, मुरादाबाद, हाथरस, सहारनपुर, अलीगढ़, आगरा,
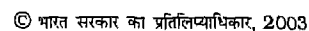
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जल-प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 11.2 भारत : सूती वस्त्र उद्योग

सारणी 11.1 — **भारत : सूती वस्त्रों के उत्पादन की क्षेत्रों के अनुसार प्रवृत्ति, 1950-2000**

वर्ष	सूत का उत्पादन (करोड़ कि.ग्रा. में)	वस्त्र उत्पादन (करोड़ मीटर में)		
		मिल क्षेत्र	विकेंद्रित क्षेत्र	कुल वस्त्र
1950-51	533	3401	814	4215
1960-61	788	4649	2089	6738
1970-71	929	4055	3547	7602
1980-81	1067	3434	4934	8368
1990-91	1510	1859	13572	15431
1999-00	2204	1105	17884	18989
2000-01*	2267	1106	18612	19718

स्रोत *: आर्थिक सर्वेक्षण 2001-02; * अनुमानित*

लखनऊ और वाराणसी उल्लेखनीय केंद्र हैं। पश्चिम बंगाल में सूती वस्त्र उद्योग हुगली क्षेत्र में संकेंद्रित हैं। हावड़ा, सेरामपुर, कोलकाता और श्यामनगर महत्वपूर्ण केंद्र हैं। यह प्रदेश हौजरी उद्योग के लिए विख्यात है।

सूती वस्त्रों का उत्पादन : शुद्ध सूती कपड़े का उत्पादन 1950-51 में 421.5 करोड़ वर्ग मीटर था, जो बढ़कर 1999-2000 में 1898.9 करोड़ वर्ग मीटर हो गया। इसी के साथ ही मिश्रित वस्त्रों और मानव निर्मित रेशों से बने वस्त्रों का उत्पादन भी बहुत तेजी से बढ़ा है। इसी के परिणामस्वरूप कुल वस्त्र उत्पादन में सूती वस्त्रों की भागीदारी घट गई है। 1980-81 में सूती वस्त्रों का उत्पादन 76.2 प्रतिशत था जो 1999-2000 में लगभग आधा (49.2 प्रतिशत) रह गया है। इसी अवधि के मिश्रित वस्त्रों और कृत्रिम वस्त्रों का अनुपात 11.6 प्रतिशत और 12.3 प्रतिशत से बढ़कर क्रमशः 15.3 प्रतिशत और 35.5 प्रतिशत हो गया है। क्षेत्रों के अनुसार सूती वस्त्रों का उत्पादन सारणी 11.1 में दिया गया है।

चीनी उद्योग

चीनी उद्योग देश का दूसरा सबसे बड़ा कृषि आधारित उद्योग है। भारत का संसार में गन्ने और चीनी दोनों के ही उत्पादन में प्रथम स्थान है। देश में संसार का एक-चौथाई गन्ने और आठ प्रतिशत चीनी का उत्पादन होता है। इसके अलावा खांडसारी और गुड़ भी गन्ने से बनाया जाता है। यह उद्योग प्रत्यक्ष रूप से 4 लाख लोगों को और अप्रत्यक्ष रूप से काफी बड़ी संख्या में किसानों को रोजगार देता है। गन्ने की पिराई की निश्चित अवधि होने के कारण, चीनी मिलें कुछ की महीनों तक चलती हैं।

चीनी उद्योग का विकास : भारत गन्ने का मूल स्थान है तथा गुड़ और खांड बनाने की कला का श्रेय हमारे देश को जाता है। आधुनिक ढंग के चीनी उद्योग का प्रारंभ सन् 1903 में हुआ, जब बिहार में पहली चीनी मिल लगाई गई। इसके बाद बिहार और उत्तर प्रदेश में अनेक चीनी मिलें स्थापित की गईं। सन् 1931 में चीनी मिलों की संख्या बढ़ते-बढ़ते 31 हो गई। इनमें से 14 उत्तर प्रदेश में, 12 बिहार में तथा 5 अन्य राज्यों में थीं। 1932 के बाद से इस उद्योग ने उल्लेखनीय प्रगति की तथा देश चीनी के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। युद्ध के दौरान चीनी के उत्पादन में वृद्धि हुई। 1950-51 में 139 कारखाने चीनी बना रहे थे तथा चीनी का कुल उत्पादन 11.34 लाख टन था। सन 2000-01 में चीनी मिलों की संख्या बढ़कर 506 तथा चीनी का उत्पादन 1.77 करोड़ टन हो गया (सारणी 11.2)।

सारणी 11.2 — **भारत : चीनी उद्योग की प्रगति 1950-2001**

वर्ष	1950-51	1970-71	1990-91	2000-01
कारखानों की संख्या	139	215	385	506
उत्पादन (लाख में)	11.3	37.4	120.5	177.0

चीनी उद्योग की अवस्थिति : गन्ना वजन घटने वाली फसल है। गन्ने के कुल वजन में से 9 से लेकर 12 प्रतिशत चीनी का उत्पादन होता है। चीनी की तुलना में गन्ने का परिवहन कठिन है। खेत से काट लेने के तुरंत बाद से ही गन्ने में चीनी का अंश घटने लगता है। काटने के 24 घंटों के भीतर ही पिराई कर लेने पर ही गन्ने से चीनी का अच्छा औसत प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त श्वेत चीनी की कुल लागत में 52 प्रतिशत गन्ने की कीमत होती है। इसलिए चीनी मिलों की स्थापना गन्ना उत्पादक प्रदेशों में ही की जाती है।

गन्ना उत्पादक क्षेत्र उत्तर के विशाल मैदानों और प्रायद्वीपीय भारत में हैं। गन्ने की खेती के लिए दक्षिणी राज्यों की जलवायु की दशाएं अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल हैं। महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक, गुजरात और आंध्र प्रदेश देश में गन्ने के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। इनमें प्रथम दो राज्य मिलकर देश को दो-तिहाई चीनी का उत्पादन करते हैं।

उत्तर भारत में चीनी उद्योग : चीनी के उत्पादन में उत्तर प्रदेश अब दूसरे स्थान पर है। देश के कुल उत्पादन में इसका अनुपात 1964-65 में 39.9 प्रतिशत था जो घटकर 2000-01 में 26.5 प्रतिशत रह गया है। चीनी मिलों का संकेंद्रण दो पट्टियों में है—एक गंगा-यमुना दोआब और तराई प्रदेश। गंगा-यमुना दोआब में सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, गाजियाबाद, बागपत, मुरादाबाद और बुलंदशहर प्रमुख चीनी उत्पादक जिले हैं। तराई प्रदेश के प्रमुख चीनी उत्पादक जिले ये हैं—गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, गोंडा, सीतापुर, बहराइच और फैजाबाद।

बिहार, पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश और गुजरात में भी चीनी मिलें स्थित हैं। बिहार का 1964-65 में चीनी के उत्पादन में 12 प्रतिशत का योगदान था, जो घटकर 2000-01 में केवल 1.6 प्रतिशत रह गया। सारन, चंपारण, मुजफ्फरपुर, सिवान, दरभंगा और गया प्रमुख चीनी उत्पादन जिले हैं। चीनी उत्पादन में पंजाब का सापेक्षिक महत्व भी घट गया है। गुरदासपुर, जालंधर, संगरूर, पटियाला और अमृतसर प्रमुख उत्पादक हैं। हरियाणा में चीनी मिलें करनाल, अंबाला, रोहतक, हिसार और गुड़गांवा जिलों में स्थित हैं। गुजरात के लिए चीनी उद्योग नया है। देश के कुल चीनी उत्पादन में इस राज्य की भागीदारी 1964-65 में 1.5 प्रतिशत थी जो 2000-01 में बढ़कर 5.9 प्रतिशत हो गई। इस राज्य के सूरत, जूनागढ़, राजकोट, अमरेली, वलसाड़ और भावनगर जिलों के गन्ना उत्पादक क्षेत्रों में 16 चीनी मिलें हैं।

दक्षिण भारत में चीनी उद्योग : महाराष्ट्र देश में चीनी का अग्रणी उत्पादक राज्य बन गया है। साथ ही तमिलनाडु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश की भागीदारी में भी वृद्धि हुई है। सन् 2000-01 में इन सबने मिलकर देश की 59.1 प्रतिशत चीनी का उत्पादन किया था, जबकि 1964-65 में यह केवल 40.5 प्रतिशत था। महाराष्ट्र देश की कुल चीनी उत्पादन का एक-तिहाई से अधिक का उत्पादन करता है। इस राज्य में उत्तर में मनमाड से लेकर दक्षिण में कोल्हापुर तक फैली एक संकरी पट्टी में चीनी की 119 मिलें हैं। इनमें से अधिकतर (87) मिलें सहकारी क्षेत्र में हैं। इस राज्य की देश के कुल चीनी उत्पादन में भागीदारी 1964-65 में केवल 19.7 प्रतिशत थी जो 2000-01 में लगभग 37 प्रतिशत हो गई है। यही नहीं यहां गन्ने में चीनी की प्रतिशत मात्रा (11.6 प्रतिशत) अपेक्षाकृत अधिक है तथा गन्ने की पिराई अवधि भी लंबी (162 दिन) है। कोल्हापुर, सांगली, अहमदनगर, शोलापुर, पुणे और मनमाड राज्य के प्रमुख चीनी उत्पादक जिले हैं।

तमिलनाडु में चीनी के कारखाने कोयम्बटूर उत्तर और दक्षिण अर्काट और तिरुचिरापल्ली जिलों में स्थित हैं। यह राज्य देश की 8.3 प्रतिशत चीनी का उत्पादन करता है। चीनी उत्पादन में कर्नाटक का योगदान 8.1 प्रतिशत का है। इस राज्य में चीनी मिलें मुख्यत: बेलगाम, बेल्लारी, मांडया, शिमोगा, बीजापुर और चित्रदुर्ग जिलों में हैं। इन राज्यों के विपरीत आंध्र प्रदेश का देश के कुल चीनी उत्पादन में योगदान घटा है। इस राज्य में 1964-65 में देश की कुल चीनी का 9.5 प्रतिशत उत्पादन होता था जो घटकर 2000-01 में 5.7 प्रतिशत रह गया है। यहां चीनी मिलों का स्थानीकरण तटीय प्रदेश में हुआ है, क्योंकि यहीं गन्ना उत्पादन के लिए जलवायु की उपयुक्त दशाएं हैं। पूर्व गोदावरी, पश्चिम गोदावरी, विशाखापत्तनम, निज़ामाबाद, कृष्णा, मेडक और चित्तूर इस राज्य के प्रमुख चीनी उत्पादक जिले हैं।

पैट्रोरसायन उद्योग

उद्योगों के इस वर्ग का भारत में बड़ी तेजी से विकास हो रहा है। इस वर्ग के उद्योगों में विविध प्रकार के उत्पाद

शामिल हैं। सन् 1960 में कार्बनिक रसायनों की मांग देश में इतनी तेजी से बढ़ी कि अल्कोहल, केल्सियम कार्बाइड और कोयले से तैयार किए रसायनों से उसे पूरा करना कठिन हो गया। इसी समय पेट्रोलियम परिष्करण उद्योग का विस्तार बड़ी तेजी से हुआ। कच्चे (क्रूड) पेट्रोलियम से अनेक वस्तुएं प्राप्त की जाती हैं, जिनका अनेक नए उद्योगों में कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है। इन सभी को सम्मिलित रूप में पेट्रोरसायन उद्योग कहा जाता है। इस वर्ग के उद्योगों को चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (1) बहुलक (पालिमर), (2) कृत्रिम रेशे, (3) प्रत्यास्थलक (इलेस्टोमर), और (4) पृष्ठ सक्रियक मध्यवर्ती (सरफैक्टैंट इंटरमीडिएट)। मुंबई पेट्रोकेमीकल उद्योगों का केंद्र है। भंजन (क्रेकर) कारखाने इन स्थानों पर लगाए गए हैं : औरैया (उत्तर प्रदेश), जामनगर, गांधार, हजीरा, (गुजरात) नागोथाने, रत्नागिरी (महाराष्ट्र), हल्दिया (प. बंगाल) और विशाखापत्तनम (आंध्र प्रदेश)।

रसायन एवं पेट्रोरसायन विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण में पेट्रोरसायन क्षेत्र के तीन संगठन कार्य कर रहे हैं। पहला है सार्वजनिक क्षेत्र का प्रतिष्ठावान इंडियन पेट्रोकेमिकल कारपोरेशन लिमिटेड। यह पालिमर्स, रसायन रेशों और रेशों के मध्यवर्ती जैसे विभिन्न प्रकार के पेट्रोकेमिकल्स के उत्पादन और वितरण का कार्य कर रहा है। दूसरा है पेट्रोफिल्स कोआपरेटिव लिमिटेड। यह भारत सरकार और बुनकर सहकारी समितियों का संयुक्त उद्यम है। यह पोलीएस्टर फिलामेंट धागा और नायलोन चिप्स का उत्पादन गुजरात के वडोदरा और नलधारी में स्थित कारखानों में करता है। तीसरा है–सैंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ प्लास्टिक इंजीनियरिंग एण्ड टैक्नोलॉजी। यह संस्थान इस क्षेत्र में प्रशिक्षण प्रदान करता है।

पालिमर्स का निर्माण एथलीन और प्रोपीलीन से होता है। ये पदार्थ कच्चे तेल के परिष्करण की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त होते हैं। प्लास्टिक उद्योग में पालिमर्स को कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं। पालिमर्स में पालिथिलीन व्यापक रूप में प्रयोग किया जाने वाला थर्मोप्लास्टिक है। प्लास्टिक को सबसे पहले चादरों, चूर्ण, रेजिन और गोलियों या गुटिकाओं में बदला जाता है। इसके बाद ही इसका उपयोग प्लास्टिक उत्पादों के निर्माण के लिए किया जाता है। प्लास्टिक उत्पादों को उनकी मजबूती, लचीलेपन, जल और रसायनिक प्रतिरोध और कम कीमत के कारण पसंद किया जाता है। 1950 के दशक के अंत में तथा 1960 के दशक के प्रारंभ में भारत में अन्य कार्बनिक रसायनों का उपयोग करके प्लास्टिक पालिमर्स के उत्पादन का प्रयत्न किया था। सन् 1961 में मफतलाल कंपनी द्वारा स्थापित नेशलन आर्गेनिक केमिकल इंडस्ट्रीज लिमिटेड ने मुंबई में पहला नैफ्था आधारित रसायन उद्योग स्थापित किया था। इस क्षेत्र में कई अनेक अन्य कंपनियां भी बनाई गईं। मुंबई, बरौनी, मैटूर, पिंपरी और रिसरा, प्लास्टिक पदार्थों के प्रमुख उत्पादक हैं। सन् 2000-01 में पालिमर्स का उत्पादन 34.41 लाख टन था।

देश में लगभग 19,000 छोटे बड़े कारखाने हैं, जो लगभग 35 लाख टन वर्जिन पालिमर्स का कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं। इनमें से लगभग तीन चौथाई कारखाने छोटे पैमाने के उद्योगों के वर्ग में आते हैं। ये कुल पालिमर्स उपभोग के 20–25 प्रतिशत तक का उपयोग करते हैं। यह उद्योग पुराने इस्तेमाल किए प्लास्टिक का भी कच्चे माल के रूप में उपयोग करता है तथा प्लास्टिक वस्तुओं के कुल उत्पादन में इसकी भागीदारी 30 प्रतिशत की है।

कृत्रिम रेशे : कृत्रिम रेशे मजबूत, टिकाऊ, प्रक्षालन योग्य तथा सिकुड़न प्रतिरोधी होते हैं। इसीलिए वस्त्र उत्पादन में इनका व्यापक उपयोग किया जाता है। ये वस्त्र गांवों और शहरों दोनों में ही समान रूप से लोकप्रिय हैं। यद्यपि नायलान उद्योग द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही विकसित हो गया था, लेकिन 1960 में पैट्रोलियम परिष्करण शालाओं से कच्चा माल प्राप्त होने पर इस उद्योग का बहुत तेजी से विकास हुआ। नायलॉन और पालिएस्टर के धागे बनाने के कारखाने कोटा, पिंपरी, मुंबई, मोदीनगर, पुणे, उज्जैन, नागपुर और उधना में लगाए गए हैं। एक्रिलिक स्टेपल रेशे कोटा और वडोदरा में बनाए जाते हैं। पोलीएस्टर स्टेपल रेशों के उत्पादन के लिए कारखाने ठाणे, गाजियाबाद, मनाली, कोटा और वडोदरा में लगाए गए हैं। कृत्रिम रेशों का उत्पादन 2000-01 में 15.67 लाख टन था। वर्धमान एक्रिलिक्स लिमिटेड ने 2000-01 में एक 16,500 टन का उत्पादन क्षमता वाला कारखाना लगाया और उसमें उत्पादन शुरू हो गया है।

फाइबर मध्यवर्ती बनाने वाले कारखानों ने भी उल्लेखनीय प्रगति की है। इन्होंने 2000-01 में 23.85 लाख टन का उत्पादन किया था। हल्दिया पेट्रोकेमिकल लिमिटेड ने अपने कारखानों की वर्तमान उत्पादन क्षमता में वृद्धि की है। इनमें प्रमुख उत्पादों के अलावा पेट्रोकेमिकल उद्योगों ने सन् 2000-01 में 77 टन प्रत्यास्थलक (इलैस्टोमर) और 359 टन कृत्रिम डिटर्जेंट का उत्पादन भी किया है।

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जल-प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

*चित्र **11.3** भारत : साफ्टवेयर प्रौद्योगिकी पार्क*

ज्ञान-आधारित उद्योग

सूचना प्रौद्योगिकी के विकास का देश की अर्थव्यवस्था तथा लोगों की जीवन शैली पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। सूचना प्रौद्योगिकी में हुई क्रांति ने आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों के द्वार खोल दिए हैं। भारतीय साफ्टवेयर उद्योग अर्थव्यवस्था का सबसे तेजी से बढ़ने वाले क्षेत्र के रूप में उभरा है। विगत दशक में इसकी मिश्रित वार्षिक वृद्धि दर 50 प्रतिशत से अधिक रही है। इस उद्योग का कुल व्यापार 1989-90 में 3.45 अरब रुपयों का था, जो बढ़कर सन् 2000-01 में 377.50 अरब रुपयों का हो गया है। इस प्रकार साफ्टवेयर उद्योग इलैक्ट्रोनिक्स हार्डवेयर के उत्पादन से आगे निकल गया है।

सूचना प्रौद्योगिकी साफ्टवेयर और सेवा उद्योग की भारत के सकल घरेलू उत्पाद में दो प्रतिशत की भागीदारी है तथा सन 2000-01 में भारत के कुल निर्यात में इस उद्योग का 12 प्रतिशत का योगदान था। भारत का साफ्टवेयर का निर्यात 1990-91 में 2.50 अरब रुपयों का था, जो बढ़कर सन् 2000-01 में 283.50 अरब रुपयों का हो गया। भारत में साफ्टवेयर व्यावसायिकों ने विश्व बाजार में अपने माल की गुणवत्ता की धाक जमा दी है। भारत के साफ्टवेयर उद्योग ने उत्कृष्ट कोटि के उत्पादन तैयार करने में उल्लेखनीय विशिष्टता प्राप्त कर ली है। अनेक भारतीय साफ्टवेयर कंपनियों को अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता प्रमाणपत्र मिले हैं। यही नहीं, सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काम करने वाली अधिकतर बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भारत में या तो साफ्टवेयर विकास केंद्र हैं या अनुसंधान विकास केंद्र हैं।

लेकिन हार्डवेयर क्षेत्र में भारत ने कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं की है। दक्षिण कोरिया, ताइवान और चीन जैसे देशों ने हार्डवेयर के क्षेत्र में बहुत प्रगति की है।

साफ्टवेयर के घरेलू बाजार में भी वृद्धि हो रही है लेकिन यह निर्यात बाजार के बराबर की नहीं है। घरेलू साफ्टवेयर बाजार में सन 1996-97 में 26.00 अरब रु. का राजस्व मिला जो बढ़कर 2000-01 में 94.00 अरब रुपयों का हो गया।

औद्योगिक समूहन

विनिर्माण उद्योगों का वितरण सर्वव्यापक नहीं है क्योंकि अवस्थिति को प्रभावित करने वाले कारक सर्वत्र एक जैसे नहीं हैं। इसके विपरीत उद्योगों में किसी निश्चित स्थान पर संकेंद्रण की प्रवृत्ति पाई जाती है। स्थानीकरण के अनुकूल कारकों के प्रभाव से उद्योगों के समूहन की पहचान के लिए अनेक मापदंडों का उपयोग किया जाता है। इनमें से प्रमुख ये हैं : (1) औद्योगिक इकाइयों की संख्या, (2) औद्योगिक कामगारों की संख्या, (3) औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाई गई ऊर्जा की मात्रा, (4) कुल औद्योगिक उत्पादन, तथा (5) विनिर्माण द्वारा वस्तुओं के मूल्य में परिवर्धन अर्थात् वस्तु की उपयोगिता बढ़ाकर उसे मूल्यवान बनाना।

देश के प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों का विवरण नीचे कुछ विस्तार से दिया गया है (चित्र 11.4)।

मुंबई-पुणे औद्योगिक प्रदेश : यह प्रदेश ठाणे से पुणे तथा नाशिक और शोलापुर के निकटवर्ती जिलों में विस्तृत है। इनके अलावा भी कोलाबा, अहमदनगर, सतारा, सांगली और जलगांव जिलों में भी औद्योगिक विकास बहुत तेजी से हुआ है। इस प्रदेश का विकास मुंबई में सूती वस्त्र उद्योगों की अवस्थिति के साथ ही प्रारंभ हुआ। मुंबई में सूती वस्त्र उद्योग के स्थानीकरण के लिए अनुकूल दशाएं थीं। 1869 में स्वेज नहर के खुल जाने के बाद मुंबई के

औद्योगिक प्रदेश और जिले

प्रमुख औद्योगिक प्रदेश (8) : *1. मुंबई-पुणे प्रदेश, 2. हुगली प्रदेश, 3. बंगलौर-तमिलनाडु प्रदेश, 4. गुजरात प्रदेश, 5. छोटा नागपुर प्रदेश और 6. विशाखापत्तनम-गुंटूर प्रदेश, 7. गुड़गांव-दिल्ली-मेरठ प्रदेश, 8. कोल्लम-तिरुवनन्तपुरम् प्रदेश।*

गौण औद्योगिक प्रदेश (13) : *1. अंबाला-अमृतसर, 2. सहारनपुर-मुजफ्फरनगर-बिजनौर, 3. इंदौर-देवास-उज्जैन, 4. जयपुर-अजमेर, 5. कोल्हापुर-दक्षिण कन्नड़, 6. उत्तरी मालाबार, 7. मध्य मालाबार, 8.आदिलाबाद-निजामाबाद, 9. इलाहाबाद-वाराणसी-मिर्जापुर, 10. भोजपुर-मुंगेर, 11. दुर्ग-रायपुर, 12. बिलासपुर-कोरबा और 13. ब्रह्मपुत्र घाटी।*

औद्योगिक जिले (15) : *1. कानपुर, 2. हैदराबाद, 3. आगरा, 4. नागपुर, 5. ग्वालियर, 6. भोपाल, 7. लखनऊ, 8. जलपाईगुड़ी, 9. कटक, 10. गोरखपुर, 11. अलीगढ़, 12. कोटा, 13. पूर्णिया, 14. जबलपुर और 15. बरेली।*

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जल-प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 11.4 भारत : प्रमुख औद्योगिक प्रदेश

पत्तन के विकास को प्रोत्साहन मिला। मशीनें और उद्योगों के लिए अन्य आवश्यक सामान इसी पत्तन के द्वारा आयात किया जाता था। इस उद्योग की आवश्यकता पूरी करने के लिए पश्चिमी घाट प्रदेश में जल विद्युत का विकास किया गया था।

सूती वस्त्र उद्योग के विकास के साथ ही, रसायन उद्योग भी विकसित हो गया। मुंबई हाई में पैट्रोलियम की खोज और उत्पादन शुरू होने से तथा परमाणु बिजली घर से अतिरिक्त बिजली की उपलब्धि से इस प्रदेश में उद्योगों के लिए और भी आकर्षण बढ़ गया। सूती वस्त्र उद्योग के अलावा यहां निम्नलिखित उद्योगों का संकेंद्रण है : इंजीनियरी का सामान, पैट्रोलियम परिष्करण, पैट्रोरसायन, चमड़ा, कृत्रिम तथा प्लास्टिक की वस्तुएं, रसायन, औषधियां, उर्वरक, बिजली का सामान, जलयान निर्माण, इलैक्ट्रोनिक्स, साफ्टवेयर, परिवहन उपकरण और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र ये हैं : मुंबई, कोलाबा, कल्याण, ठाणे, ट्रांबे, पुणे, पिंपरी, नासिक, मनमांड, शोलापुर, अहमदनगर, सतारा और सांगली।

हुगली औद्योगिक प्रदेश : यह हुगली नदी के दोनों किनारों पर उत्तर में बंसवेरिया से दक्षिण में बिड़ला नगर तक 100 कि. मी. की दूरी में विस्तृत है। इसके पश्चिम में मिदनापुर में भी उद्योग विकसित हो गए हैं। कोलकाता-हावड़ा इस प्रदेश का हृदय स्थल है। इसके विकास में ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों का बहुत बड़ा योगदान है। इसका विकास सत्रहवीं शताब्दी (1662-1694) के अंतिम भाग में हुगली पर नदीय पत्तन के विकास के साथ ही हुआ। कोलकाता देश के अग्रणी केंद्र के रूप में विकसित हो गया। आगे चलकर कोलकाता रेलमार्गों और सड़कों द्वारा आंतरिक भागों से भी जुड़ गया। इस औद्योगिक प्रदेश के विकास में निम्नलिखित कारक सहायक रहे हैं : (i) असम और पश्चिम बंगाल की उत्तरी पहाड़ियों पर चाय के बागानों का विकास, प्रारंभ में नील के प्रसंस्करण तथा बाद में जूट के सामान के निर्माण, दामोदर घाटी कोयला क्षेत्रों के तथा छोटा नागपुर पठार के लौह अयस्क के भंडारों की खोज। बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उड़ीसा के सघन बसे क्षेत्रों से सस्ते श्रमिकों की उपलब्धि ने भी इस प्रदेश के विकास में योगदान दिया है। अंग्रेजकालीन (1773-1912) भारत की प्रथम राजधानी होने के कारण कोलकाता में अंग्रेजी पूंजी के मिलने में बड़ी सुविधा थी। 1855 में रिशरा में जूट की पहली मिल के स्थापित होने के साथ ही इस प्रदेश में आधुनिक औद्योगिक समूहन के युग का सूत्रपात हुआ।

जूट उद्योग का प्रमुख संकेंद्रण हावड़ा और भाटपाड़ा में है। 1947 में देश के विभाजन का इस औद्योगिक प्रदेश पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। जूट उद्योग के साथ ही सूती वस्त्र उद्योग का भी विकास हुआ। इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग ये हैं : कागज इंजीनियरी, वस्त्र उद्योग की मशीनें, बिजली का सामान, रसायन, औषधियां, उर्वरक और पेट्रो रसायन। कोनानगर में हिंदुस्तान मोटर्स लिमिटेड का कारखाना तथा चितरंजन में रेल के डीजल इंजन बनाने का कारखाना इस प्रदेश के पहचान के प्रमुख चिह्न हैं। हल्दिया में पेट्रोलियम परिष्करणशाला की स्थापना से विविध प्रकार के उद्योगों के विकसित होने में सुविधा मिली है। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र ये हैं : कोलकाता, हावड़ा, हल्दिया, सीरामपुर, रिशरा, शिबपुर, नैहाटी, काकिनाड़ा, शामनगर, टीटागढ़, सादपुर, बजबज, बिड़लानगर, बंसबेरिया, बेलघरिया, त्रिवेणी, हुगली, बैलूर, आदि। अन्य प्रदेशों की तुलना में इस प्रदेश की औद्योगिक प्रगति धीमी पड़ गई है। जूट उद्योग में मंदी भी इसके लिए जिम्मेदार कारकों में से एक है।

बंगलौर-तमिलनाडु औद्योगिक प्रदेश : स्वतंत्रता के बाद की अवधि में इस प्रदेश का औद्योगिक विकास बहुत तीव्र गति से हुआ है। सन् 1960 तक उद्योग बंगलौर, सेलम और मदुरै जिलों तक ही सीमित थे। लेकिन वे अब विलूपुरम जिले को छोड़कर तमिलनाडु के सभी जिलों में फैल गए हैं। यह प्रदेश कोयला क्षेत्रों से दूर है, अतः इस प्रदेश का विकास 1932 में निर्मित पाइकारा जल विद्युत संयंत्र पर निर्भर है। कपास उत्पादक क्षेत्र होने के कारण सबसे पहले सूती वस्त्र उद्योग ने यहां अपनी जड़ें जमाईं। सूती वस्त्र कारखानों के साथ करघा उद्योग का प्रसार बड़ी तेजी से हुआ। अनेक भारी इंजीनियरी उद्योग बंगलौर में संकेंद्रित हो गए हैं। विमान, घड़ियां, मशीनी उपकरण, टेलीफोन और भारत इलैक्ट्रोनिक्स इस प्रदेश की प्रमुख पहचान हैं। इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग ये हैं : वस्त्र, रेल के डिब्बे, डीजल इंजन, मोटर, रेडियो, इंजीनियरी की हल्की वस्तुएं, रबड़ की वस्तुएं, दवाएं, अल्युमिनियम, चीनी, सीमेंट, कांच, कागज, रसायन, फिल्में, सिगरेट, माचिस, चमड़े का सामान, आदि। चेन्नई में पेट्रोलियम परिष्करणशाला, सेलम में लोहे और इस्पात का कारखाना तथा उर्वरक के कारखाने नवीनतम उद्योग हैं।

गुजरात औद्योगिक प्रदेश : इस प्रदेश का केंद्र अहमदाबाद और वडोदरा के मध्य में है, लेकिन इस प्रदेश का विस्तार दक्षिण में वलसाड और सूरत से लेकर पश्चिम में जामनगर तक है। इस प्रदेश का विकास भी सन् 1860 में सूती वस्त्र उद्योग के विकास के साथ जुड़ा है। मुंबई में सूती वस्त्र उद्योग की अवनति होने के बाद यह वस्त्र उत्पादन का महत्वपूर्ण प्रदेश बन गया है। इस प्रदेश के उद्योगों को दोहरा लाभ मिला है। एक तो एक कपास उत्पादक क्षेत्र में है। दूसरे यह घने आबाद गंगा के मैदान के विशाल बाजार की निकटता का लाभ उठाता है। तेल क्षेत्रों की खोज के बाद से यहां अंकलेश्वर, वडोदरा और जामनगर के आस-पास विविध प्रकार के पेट्रोरसायन उद्योग विकसित हो गए हैं। कांडला पत्तन से इस प्रदेश के तीव्र विकास में बहुत सहयोग मिला है। कोयाली में पेट्रोलियम परिष्करणशाला ने अनेक प्रकार के पेट्रोरसायन उद्योगों को कच्चा माल प्रदान किया है। इस प्रदेश में उद्योगों का विविधीकरण हो गया है। वस्त्र (सूती, रेशमी और कृत्रिम वस्त्र) उद्योग और पेट्रोरसायन उद्योग के अलावा इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग ये हैं : भारी और आधारभूत रसायन, मोटर, ट्रैक्टर, डीजल इंजन, वस्त्र उत्पादन की मशीनें, इंजीनियरी, दवाएं, चीनी, दुग्ध उत्पादन और खाद्य परिष्करण। अभी थोड़े समय पूर्व ही देश की सबसे बड़ी परिष्करणशाला ने जामनगर में उत्पादन शुरू कर दिया है। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र ये हैं : अहमदाबाद, वडोदरा, भरूच, कोयली, आनन्द, खेड़ा, सुरेंद्रनगर, राजकोट, सूरत, वलसाड और जामनगर।

छोटा नागपुर प्रदेश : यह प्रदेश झारखंड, उत्तरी उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में विस्तृत है तथा अपने भारी धातुकर्मी उद्योगों के लिए विख्यात है। इस प्रदेश के विकास का मुख्य कारण दामोदर घाटी में कोयले तथा झारखंड और उत्तरी उड़ीसा में धात्विक और अधात्विक खनिजों की खोज है। कोयले, लौह-अयस्क तथा अन्य खनिजों के पास-पास पाये जाने के कारण ही इस प्रदेश में भारी उद्योगों को लगाने में सुविधा हुई है। जमशेदपुर, बर्नपुर-कुल्टी, दुर्गापुर, बोकारो और राऊरकेला में लोहे और इस्पात के पांच बड़े एकीकृत कारखाने इसी प्रदेश में स्थित हैं। ऊर्जा की आवश्यकता को पूरी करने के लिए प्रदेश में ही ताप बिजली घर और जल विद्युत संयंत्र लगाए गए हैं। इस प्रदेश के आस-पास के सघन बसे क्षेत्र से सस्ते श्रमिक मिल जाते हैं। इस प्रदेश के लिए हुगली औद्योगिक प्रदेश एक विशाल बाजार के रूप में काम करता है। इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग ये हैं : भारी इंजीनियरी, मशीनी उपकरण, उर्वरक, सीमेंट, कागज, रेल के इंजन और बिजली का भारी सामान। रांची, धनबाद, चाईबासा, सिन्दरी, हजारीबाग, जमशेदपुर, बोकारो, राऊरकेला, दुर्गापुर, आसनसोल और डालमिया नगर इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र हैं।

विशाखापत्तनम-गुंटूर प्रदेश : यह औद्योगिक प्रदेश विशाखापत्तनम जिले से लेकर दक्षिण में कुर्नूल और प्रकाशम जिलों तक विस्तृत है। इस प्रदेश का औद्योगिक विकास मुख्यत: विशाखापत्तनम और मछलीपत्तनम के पत्तनों और इनके पृष्ठ प्रदेश की समृद्ध कृषि तथा खनिजों के विशाल भंडार पर आश्रित है। गोदावरी द्रोणी के कोयला क्षेत्र इस प्रदेश को शक्ति और ऊर्जा प्रदान करते हैं। 1941 में विशाखापत्तनम में जलयान निर्माण उद्योग लगाया गया था। पेट्रोलियम परिष्करणशाला आयातित कच्चे तेल पर आधारित है तथा इसने अनेक पेट्रोरसायन उद्योगों को जन्म दिया है। इस प्रदेश के प्रमुख उद्योग हैं–चीनी, वस्त्र, जूट, कागज, उर्वरक, सीमेंट, अल्युमिनियम और इंजीनियरी के हल्के सामान। गुंटूर जिले में एक सीसा-जस्ता प्रगलन संयंत्र भी चालू है। विशाखापत्तनम में स्थित लोहे और इस्पात का कारखाना बैलाडिला के लौह-अयस्क का उपयोग करता है। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र ये हैं : विशाखापत्तनम, विजयवाड़ा, विजयनगर, राजामुन्दरी, गुंटूर, एलुरू और कुर्नूल।

गुड़गांव-दिल्ली-मेरठ प्रदेश : विगत वर्षों में इस प्रदेश में स्थित उद्योगों ने बड़ी तेजी से प्रगति की है। यह प्रदेश खनिज और शक्ति के स्रोतों से दूर स्थित है। इसीलिए यहां हल्के और बाजारोन्मुख उद्योग लगाए गए हैं। इस प्रदेश के मुख्य उद्योग हैं इलैक्ट्रोनिक्स, इंजीनियरी के हल्के सामान, और बिजली का सामान। इनके अलावा बड़े पैमाने पर विकसित उद्योग ये हैं : सूती, ऊनी तथा कृत्रिम वस्त्र, हौजरी, चीनी, सीमेंट, मशीनी उपकरण, ट्रैक्टर, साइकिल, कृषीय उपकरण, रसायन और वनस्पति। साफ्टवेयर उद्योग अभी नया-नया ही शुरू हुआ है। इसके दक्षिण में मथुरा-आगरा औद्योगिक क्षेत्र हैं, कांच और चमड़े का सामान इस प्रदेश की विशिष्टता है। मथुरा में तेल परिष्करणशाला तथा पैट्रोरसायनों का संकुल है। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र ये हैं– गुड़गांव, दिल्ली, शाहदरा, फरीदाबाद, मेरठ, मोदीनगर, गाजियाबाद, अंबाला, आगरा और मथुरा।

कोल्लम-तिरुवनन्तपुरम प्रदेश : इस प्रदेश का विस्तार तिरुवनन्तपुरम, कोल्लम, अलप्पुजा, एर्णाकुलम, और त्रिशुर जिलों में हैं। रोपण कृषि और जलविद्युत ने इस प्रदेश को

औद्योगिक आधार प्रदान किया है। यह प्रदेश देश की खनिज पट्टी से दूर है। अत: यहां मुख्य रूप से कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण से संबंधित और बाजारोन्मुख हल्के उद्योग ही विकसित हुए हैं। इस प्रदेश के मुख्य उद्योग ये हैं : सूती वस्त्र, चीनी, रबड़, माचिस, कांच, रासायनिक उर्वरक, और मछली आधारित उद्योग। इनके अलावा खाद्य प्रसंस्करण, कागज, नारियल रेशे के उत्पाद, अल्युमिनियम और सीमेंट उद्योग भी उल्लेखनीय हैं। कोच्चि में तेल परिष्करणशाला ने इस प्रदेश के उद्योगों में एक नया आयाम जोड़ दिया है। इस प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक केंद्र ये हैं : कोल्लम्, तिरुवनन्तपुरम्, अलवाए, कोच्चि और अलप्पुजा।

नई औद्योगिक नीति का प्रभाव

नई औद्योगिक नीति की घोषणा सन् 1991 में की गई थी। इस नीति के द्वारा बहुत बड़े स्तर पर औद्योगिक अर्थव्यवस्था पर से अनेक प्रकार के नियंत्रण हटा दिए गए हैं।

नई औद्योगिक नीति के प्रमुख उद्देश्य ये हैं–जो लाभ मिल रहे हैं, उन्हें बनाए रखना, उद्योगों की कमियों या विकृतियों को सुधारना, उत्पादन वृद्धि में निरंतरता बनाए रखना, रोजगार के अधिक अवसर विकसित करना तथा उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में शामिल करने योग्य बनाना। इस नीति की तीन प्रमुख विशेषताएं हैं–उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (भूमंडलीकरण)।

उदारीकरण : उदारीकरण के प्रमुख घोषित उपाय ये हैं–(1) औद्योगिक लाइसेंसों को समाप्त करना, (2) विदेशी प्रौद्योगिकी का स्वतंत्र प्रवेश, (3) प्रत्यक्ष विदेश निवेश नीति, (4) पूंजी बाजार की सुलभता, (5) मुक्त व्यापार, (6) चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रमों की समाप्ति, और (7) औद्योगिक स्थानीकरण कार्यक्रमों में उदारता।

सुरक्षा, सामरिक और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील उद्योगों की सूची में शामिल छ: उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई है। साथ ही 1956 से सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर 4 कर दी गई है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योग वे ही हैं जो सुरक्षा और सामरिक दृष्टि से संवेदनशील हैं। ये उद्योग हैं: परमाणु ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा विभाग की सूची में दिखाए गए पदार्थ और रेल परिवहन। सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सरकारी शेयरों में से कुछ भाग वित्तीय संस्थानों, सामान्य जनता और कामगारों को देने का फैसला किया है। परिसंपत्तियों की प्रारंभिक सीमा खत्म कर दी गई है और अब लाइसेंस मुक्त किसी भी उद्योग में निवेश के लिए सरकार से पूर्व अनुमति लेनी नहीं पड़ती।

घरेलू निवेश की तरह, भारत में विदेशी निवेश पर भी परंपरा से नियंत्रण चला आ रहा था। भारतीय कंपनियों को विदेशी प्रौद्योगिकी तथा विदेशी निवेश के लिए समझौता अनुबंध करने से पूर्व प्रत्येक परियोजना के लिए विशिष्ट पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य था। लेकिन नई औद्योगिक नीति के अनुसार आर्थिक विकास की उच्च दर प्राप्त करने के लिए घरेलू पूंजी निवेश बढ़ाने में प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश से बड़ी मदद मिलती है। इससे न केवल घरेलू उद्योग लाभान्वित होता है, बल्कि उपभोक्ताओं को उन्नत प्रौद्योगिकी, विश्व में प्रचलित प्रबंधन कुशलता, मानव तथा प्राकृतिक संसाधनों के पूर्ण उपयोग का लाभ भी मिलता है। इसीलिए विदेशी निवेश को उदार बना दिया गया है और सरकार ने नकारात्मक सूची को छोड़कर अन्य सभी मामलों में स्वत: प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दे दी है। स्वत: विदेशी निवेश का सीधा सा अर्थ यह है कि विदेशी निवेशकों को निवेश करने के 30 दिनों के भीतर, साथ ही कोई शेयर जारी करने के भी 30 दिनों के भीतर, भारतीय रिजर्व बैंक को इस बारे में सूचित करना जरूरी है।

उद्योगों में स्थानीयता को लगातार बढ़ाने का चरणबद्ध उत्पादन कार्यक्रम समाप्त कर दिया गया है। सरकार ने वर्तमान औद्योगिक स्थानीकरण की नीति में भी परिवर्तन की घोषणा की है। केवल पर्यावरण संबंधी कारणों से बड़े शहरों में उद्योगों की स्थापना को हतोत्साहित किया जाता है। नई औद्योगिक नीति के अनुसार निम्नलिखित मामलों में औद्योगिक लाइसेंस की आवश्यकता होती है : (1) जब परियोजना के अंतर्गत ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाना हो, जो अनिवार्य लाइसेंस वाले उद्योगों की सूची में शामिल हैं, (2) बड़े नगरों वाला प्रतिबंध जो 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में उद्योगों की स्थापना करने पर लागू होता है, और (3) जब लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित वस्तु का उत्पादन किसी अन्य क्षेत्र की इकाई द्वारा किया जाना हो। अन्य परियोजनाओं के लिए एक निर्धारित प्रपत्र में एक ज्ञापन देना पर्याप्त होगा।

निजीकरण : निजीकरण 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र को अत्यधिक महत्व दिया गया था। 1951 में पांच केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम थे और

इनमें 29 करोड़ रुपयों का निवेश था। 31 मार्च 2000 को उद्यमों की संख्या बढ़ते-बढ़ते 240 हो गई तथा निवेश बढ़कर 2,52,554 करोड़ रुपये का हो गया। लेकिन नई नीति में पुरानी नीति को उलटने पर बल दिया गया है तथा औद्योगिक विकास में निजी क्षेत्र को महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गई है। इसी के अनुसार सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सुधारों की प्रक्रिया शुरू कर दी है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में सरकारी नीति के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं :

1. सार्वजनिक क्षेत्र के सभी गैर सामरिक उद्यमों में सरकारी शेयरों (वित्तीय भागीदारी) को 26 प्रतिशत या उससे भी कम करना।
2. भविष्य में सफल हो सकने वाले उद्यमों की पुनर्संरचना और पुनर्जीवन।
3. बीमार उद्यमों को बंद करना।
4. कामगारों के हितों की पूरी-पूरी रक्षा करना।

निजीकरण की दिशा में पहला कदम था उन उद्योगों की मान्यता समाप्त करना जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सूचीबद्ध था। 1956 के औद्योगिक प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 17 उद्योगों को सुरक्षित कर दिया गया था। लेकिन अब केवल चार श्रेणी के उद्योगों को ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखा गया है। अन्य उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है। यही नहीं अब तो सैनिक साजो-सामान बनाने वाले उद्योगों को भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है। इनमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 26 प्रतिशत तक हो सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों में विवेक के आधार पर भागीदारी के लिए निजी क्षेत्र को आमंत्रित किया जा सकता है। यही नहीं नियंत्रण की मात्रा को कम करने तथा उत्तरदायित्व की गुणवत्ता को बढ़ाने के उद्देश्य से सन् 1988 में समझौते के ज्ञापन संकल्पना को लागू किया गया है। यह सार्वजनिक उद्यमों को निजी क्षेत्र की तरह चलाने के लिए पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि घरेलू और बहुराष्ट्रीय निगमों के निवेशकों को आकर्षित करने के लिए औद्योगिक नीति को उदार बनाया गया है। नए क्षेत्र जैसे खनन, बैंक, दूरसंचार, महामार्ग निर्माण और प्रबंधन को निजी कंपनियों के लिए खोल दिया गया है। इतनी सारी छूट देने के बावजूद भी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सीमित ही रहा है। स्वीकृत और वास्तविक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के बीच काफी बड़ा अंतर रहा है। फिर भी विदेशी सहयोग की संख्या और मात्रा दोनों में ही वृद्धि हो रही है। इस निवेश का अधिकतर भाग घरेलू उपकरण, वित्त, सेवाएं, इलैक्ट्रोनिक्स और बिजली के उपकरण तथा खाद्य और दुग्ध उत्पादों से संबंधित उद्योगों में हुआ है।

निवेश में वृद्धि के साथ-साथ बहुराष्ट्रीय निगमों के अनेक अवांछनीय लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं। भारतीय कंपनियों का विदेशी कंपनियों के साथ संयुक्त उद्यम सदैव लाभकारी नहीं रहा है। भारतीय बाजार में पैठ बनाने के बाद विदेशी कंपनियों ने भारतीय साझेदारों को अलग करने के प्रयत्न किए हैं। यही नहीं विदेशी कंपनियां तो शत-प्रतिशत अपनी गौण कंपनी स्थापित करना चाहती हैं। इससे उन्हें प्रौद्योगिकियों और उत्पादों पर मालिकाना नियंत्रण रखने में मदद मिलती है।

वैश्वीकरण (भूमंडलीकरण) : वैश्वीकरण का अर्थ है देश की अर्थव्यवस्था को संसार की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना। इस प्रक्रिया में, पूंजी के साथ-साथ वस्तुएं और सेवाएं, श्रमिक और संसाधन एक देश से दूसरे देश में स्वतंत्रतापूर्वक आ जा सकते हैं। वैश्वीकरण का मुख्य जोर घरेलू और विदेशी प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने पर रहता है। यह विपणन तंत्र के विस्तृत अनुप्रयोग तथा विदेशी निवेशकों और प्रौद्योगिकी प्रदान करने वालों के साथ गतिशील संबंध बनाने की सुविधा देकर किया जा सकता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में उपरोक्त तथ्य को इस प्रकार से समझा जा सकता है : (1) अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए विदेशी कंपनियों को सुविधाएं देना ताकि वे भारत के विभिन्न आर्थिक क्रियाकलापों में निवेश कर सकें, (2) भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश में आने वाली बाधाओं और प्रतिबंधों को हटाना, (3) भारतीय कंपनियों को भारत में विदेशी सहयोग की अनुमति देना तथा उन्हें विदेशों में संयुक्त उद्यम स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करना, (4) प्रभावशाली उदार आयात कार्यक्रमों को लागू करना, इसके लिए सबसे पहले मात्रात्मक प्रतिबंधों के स्थान पर प्रशुल्क (टैरिफ) पद्धति लागू करना तथा इसके बाद आयात शुल्क को काफी हद तक घटाना, और (5) निर्यात-प्रोत्साहनों के स्थान पर निर्यात बढ़ाने के लिए विनिमय दरों के समायोजन को स्वीकार करना।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया तो 80 के दशक में ही शुरू हो गई थी, जब विदेशी निवेशकों को अनेक छूटें दी जाने लगी थीं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को प्रतिरक्षा सहित अनेक ऐसे क्षेत्रों में निवेश की स्वीकृति दी जाने लगी जो पहले

विदेशियों के लिए प्रतिबंधित थे। कुछ क्षेत्रों को छोड़कर सभी क्षेत्रों के लिए लाइसेंस पद्धति समाप्त कर दी गई, आयात को बहुत उदार बना दिया गया। लेकिन वैश्वीकरण की प्रक्रिया को वास्तविक प्रोत्साहन तब मिला जब भारत सरकार ने जुलाई 1991 को नई आर्थिक नीति लागू की। तब से लेकर वैश्वीकरण की दिशा में कुछ निश्चित कदम उठाए गए हैं। भारतीय रूपए को चालू खाते पर पूरी तरह से परिवर्तनीय बना दिया गया है।

विश्व बैंक के प्रस्तावों के अनुसार भारत की आयात नीति नकारात्मक सूची को छोड़कर, सभी वस्तुओं के शुल्क मुक्त आयात की अनुमति प्रदान करती है। विदेशी निवेशकों को और अनिवासी भारतीयों को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए अनेक प्रोत्साहन और सुविधाएं दी जा रही हैं।

विदेशी सहयोग के अनुमोदनों पर अलग-अलग करके विचार करने पर पता चलता है कि निवेश का मुख्य भाग मुख्य और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में ही लगाया गया है तथा संरचनात्मक क्षेत्र को छुआ तक नहीं गया है। यही नहीं विकसित और विकासशील राज्यों के बीच अंतर बहुत बढ़ता जा रहा है। घरेलू निवेश और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश दोनों का मुख्य हिस्सा पहले से विकसित राज्यों को मिला है। उदाहरण के लिए 1991-2000 की अवधि में औद्योगिक उद्यमियों द्वारा प्रस्तावित निवेश का लगभग एक चौथाई (23 प्रतिशत) भाग औद्योगिक रूप से विकसित महाराष्ट्र राज्य के लिए था। शेष प्रमुख राज्यों का हिस्सा इस प्रकार था : गुजरात 17 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश 7 प्रतिशत, तमिलनाडु के लिए लगभग 6 प्रतिशत था जबकि सबसे अधिक जनसंख्या वाले राज्य उत्तर प्रदेश का हिस्सा केवल 8 प्रतिशत ही था। अनेक छूटों के बावजूद उत्तर पूर्वी सात राज्य इस प्रस्तावित निवेश में बड़ी कठिनाई से 1 प्रतिशत से भी कम पा सके। इसी समय स्वीकृत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में महाराष्ट्र को 17 प्रतिशत, दिल्ली को 13 प्रतिशत, कर्नाटक को 8 प्रतिशत, तमिलनाडु को 7.7 प्रतिशत हिस्सा मिला। इसके विपरीत उत्तर प्रदेश को केवल 1.63 प्रतिशत, बिहार को 0.29 प्रतिशत और झारखंड को 0.06 प्रतिशत भाग ही मिल पाया। वास्तव में आर्थिक दृष्टि से कमजोर राज्य, विकसित राज्यों के साथ प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते हैं। मुक्त बाजार में ये राज्य औद्योगिक निवेश प्रस्तावों को आकर्षित करने में असमर्थ रहते हैं तथा इन प्रक्रियाओं से उनकी परेशानियां और बढ़ जाती हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के उत्तर संक्षेप में दीजिए :
   (i) आजादी के पहले भारत के औद्योगिक विकास के तीन लक्षण बताइए।
   (ii) आजादी के बाद भारत के औद्योगिक विकास के तीन लक्षण बताइए।
   (iii) कच्चे माल के आधार पर वर्गीकृत उद्योगों के नाम बताइए।
   (iv) उद्यमशीलता के आधार पर वर्गीकृत उद्योगों के नाम बताइए।
   (v) उद्योगों की अवस्थिति को नियंत्रित करने वाले पांच कारकों के नाम बताइए।
   (vi) भारत के लोहे और इस्पात के कारखानों के नाम बताइए।
   (vii) भारत में सूती वस्त्र उद्योग के वितरण की पांच विशेषताएं बताइए।
   (viii) औद्योगिक समूहन की पहचान के लिए उपयोग में लाए गए चार सूचकों के नाम बताइए।
2. भारत में चीनी उद्योग के वितरण को नियंत्रित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन कीजिए।
3. मुंबई-पुणे औद्योगिक प्रदेश की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।
4. भारत में औद्योगिक विकास पर उदारीकरण के प्रभाव का वर्णन कीजिए।
5. भारत में लोहे और इस्पात के सभी कारखाने प्रायद्वीपीय पठारों पर क्यों स्थित हैं?
6. भारत में सूती वस्त्र उद्योग के वितरण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
7. निम्नलिखित का अर्थ समझाइए :
   (i) ज्ञान आधारित उद्योग (ii) निजीकरण (iii) वैश्वीकरण।

परियोजना कार्य

8. (क) भारत के रेखा मानचित्र पर सूती वस्त्र उद्योग के प्रमुख केंद्रों का वितरण दिखाइए।
   (ख) विभिन्न प्रदेशों में सूती वस्त्र उद्योग के केंद्रों की अवस्थिति के कारणों का पता लगाइए।

12 अध्याय

विकास नियोजन

भारत में नियोजन

भारत में नियोजन के उद्देश्य और सामाजिक वायदे/लक्ष्य संविधान में उल्लिखित नीति निर्देशक सिद्धांतों के आधार पर निश्चित किए जाते हैं। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों को एक-दूसरे का पूरक समझा जाता है।

नियोजन, क्रियाओं के क्रम/अनुक्रम को विकसित करने की प्रक्रिया है, जिसे भविष्य की समस्याओं के समाधान के लिए बनाया जाता है। नियोजन के लिए चुनी गई समस्याएं बदलती रहती हैं पर यह मुख्य रूप में आर्थिक और सामाजिक ही होती हैं। नियोजन के प्रकार और स्तर के अनुसार नियोजन की अवधि में भी अंतर होता है। लेकिन सभी प्रकार के नियोजन में एक क्रमिक प्रक्रिया होती है, जिसकी कुछ अवस्थाओं के रूप में संकल्पना की जाती है।

भारत में नियोजन अभी तक केंद्रीकृत ही है। राष्ट्रीय विकास परिषद् नियोजन की नीति तय करती है। इस परिषद् में केंद्रीय मंत्रिमंडल, योजना आयोग के सदस्य, राज्यों के मुख्यमंत्री तथा केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री/प्रशासक शामिल होते हैं। राष्ट्रीय महत्व के विषय जैसे–रक्षा, संचार, रेलें आदि केंद्रीय सरकार के अधीन होते हैं जबकि ग्रामीण विकास की महत्वपूर्ण सेवाएं, लघु उद्योग और सड़कों का विकास व परिवहन राज्य सरकार के नियंत्रण में होते हैं। अधिकतर मामलों में योजना आयोग ही, कार्य-नीतियां, नीतियां और कार्यक्रम बनाता है तथा राज्यों को केवल उन्हें क्रियान्वित करने के लिए कहा जाता है।

राज्यों में भी नियोजन की प्रक्रिया कोई बहुत भिन्न नहीं होती है। राष्ट्रीय योजना संकल्पनात्मक और सैद्धान्तिक पक्षों पर विचार करती है। सभी आवश्यकताओं और संभावनाओं पर बल देती है, कौन से लक्ष्य पूरे करने हैं तथा कौन-सी विधियां अपनानी हैं, इन पर विचार करती है। जबकि योजनाओं को पूरा करने का दायित्व राज्यों का होता है। इसीलिए इनका स्वरूप/प्रकृति भौतिक माना जाता है। क्षेत्रीय योजना का प्रादेशिक विभाजन राज्य स्तर पर किया जाता है। संविधान के संशोधनों के द्वारा नियोजन को स्थानीय स्तर के विकास का अनिवार्य अंग बना लिया गया है। अब विभिन्न अभिकरण जिलों, खंडों, नगरों और गांवों के लिए योजनाएं बनाती हैं।

नियोजन का इतिहास

स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद ही भारत ने योजना आयोग की नियुक्ति करके राज्य प्रेरित नियोजित विकास की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी थी। इससे भी पूर्व सन् 1936 में एम. विश्वेश्वरैया ने दस-वर्षीय योजना प्रकाशित की थी। राष्ट्रीय कांग्रेस ने संपूर्ण भारत के लिए एक योजना की संभावनाएं तलाशने हेतु एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की थी। इस समिति का नाम राष्ट्रीय नियोजन समिति रखा गया था। समिति योजना तो पूरी नहीं बना सकी, लेकिन विकास के लिए कुछ नीतियां और संदर्भ तय कर दिये थे। सन् 1944 में टाटा और बिड़ला ने बंबई योजना बनाई। इसके बाद एस.एन. अग्रवाल ने गांधी योजना तैयार की। इसके मुख्य उद्देश्य कृषि और ग्रामीण उद्योग का विकास था। स्वतंत्रता के बाद योजना आयोग ने 1952 में एक योजना तैयार की। यह 1951-56 की अवधि की प्रथम पंचवर्षीय योजना थी। योजना आयोग अब तक नौ योजनाएं बना कर क्रियान्वित कर चुका है। दसवीं योजना को भी अंतिम रूप दे दिया गया है और इसका क्रियान्वयन जारी है। भारतीय योजनाएं बहु-उद्देशीय थीं। ये विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय पर भी बल देती थीं। उत्तरोत्तर योजनाओं के अनुभवों के आधार पर विधियों को जांचा-परखा गया। उद्देश्यों, कार्य नीतियों और विधियों का संक्षिप्त सार नीचे दिया गया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) : विकास की प्रक्रिया प्रारंभ करने की दृष्टि से प्रथम पंचवर्षीय योजना में मुख्य बल समग्र विकास पर दिया गया था। इसमें ग्रामीण समुदायों पर विशेष ध्यान दिया गया था। इसके सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किए गए थे। राष्ट्रीय प्रसार-सेवा द्वारा ग्रामवासियों को निवेश, सेवाओं, वित्त और तकनीकी जानकारी दी गई थी। विकास के बहुपक्षीय सिद्धांत के आधार पर इसे बहु-उद्देशीय उपागम कहा गया था।

प्रथम योजना में कृषि सहित सिंचाई तथा बिजली को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी। टेनेसी वैली अथार्टी (स.रा. अमेरिका) के आदर्श पर बाढ़ नियंत्रण, भूमि की सिंचाई, बिजली उत्पादन, मृदा अपरदन के नियंत्रण और मछली-पालन को प्रोत्साहन देने के लिए योजनाएं प्रारंभ की गई थीं। इन योजनाओं में पंजाब और हरियाणा के लिए भाकड़ा-नांगल, बिहार के लिए कोसी, झारखंड और पश्चिमी बंगाल के लिए दामोदर घाटी परियोजना तथा उड़ीसा के लिए हीराकुड योजनाएं शुरू की गई थीं। सिंदरी (झारखंड) में उर्वरक बनाने का पहला कारखाना लगाया गया था। इस सबके बावजूद बहु-उद्देशीय विधि को अधिक सफलता नहीं मिली तथा बाद की योजनाओं में इसके स्थान पर क्षेत्रीय विधि को अपनाया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) : इस योजना में विकास के एक ऐसे प्रतिरूप को प्रोत्साहित किया गया, जिससे भारत में समाजवादी समाज की स्थापना हो सके। इसके मुख्य उद्देश्य थे–(i) राष्ट्रीय आय में 25% की वृद्धि, (ii) आधारभूत तथा भारी उद्योगों के विकास पर विशेष जोर देते हुए तीव्र औद्योगीकरण, (iii) रोजगार के अवसरों का विस्तार और (iv) असमानताओं में कमी। इस योजना में आधारभूत और भारी उद्योगों के विकास पर विशेष बल दिया गया। यही नहीं, इसी योजना में देश के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को भी परिभाषित किया गया। सार्वजनिक क्षेत्र में भिलाई, राऊरकेला और दुर्गापुर में नए समन्वित इस्पात कारखाने चालू किए गए। बिजली के भारी उपकरण बनाने का एक संयंत्र भोपाल में लगाया गया। सिंदरी उर्वरक कारखाने के विस्तार के साथ नांगल और राऊरकेला में उर्वरक बनाने के कारखाने खोले गए। कृषि-क्षेत्र पर उचित ध्यान नहीं दिया गया।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) : इस योजना के मुख्य उद्देश्य थे–(i) राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि करना, (ii) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना तथा कृषीय उत्पादन बढ़ाना, (iii) आधारभूत उद्योगों का विस्तार करना, (iv) रोजगार के अवसरों का विस्तार करना, (v) आय और संपत्ति में वैयक्तिक तथा प्रादेशिक विषमता को घटाना। तीसरी योजना की उपलब्धियां बहुत निराशाजनक थीं। योजना के उद्देश्य पूरे न हो सकने के कारण ये थे : मानसूनी वर्षा में देरी, 1965 का भयंकर सूखा, 1962 में चीन के साथ तथा 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध, विदेशी ऋण की अनुपलब्धता और कठोर प्रशासनिक नियम तथा कार्य प्रणालियां। 1964-65 में खाद्यान्नों का उत्पादन 8.9 करोड़ टन था जो एक रिकार्ड था। लेकिन दूसरे ही वर्ष यह उत्पादन घटकर केवल 7.23 करोड़ टन ही रह गया। केवल औद्योगिक क्षेत्र में ही तीसरी योजना की महत्वपूर्ण उपलब्धियां थीं। दूसरी योजना की तुलना में इस योजना की उपलब्धियां अच्छी नहीं थीं।

वार्षिक योजनाएं (1966-69) : चौथी पंचवर्षीय योजना के बजाय 1966 और 1969 के मध्य तीन वार्षिक योजनाएं बनाई गई थीं। इन योजनाओं में पैकेज कार्यक्रमों को अपनाया गया। पैकेज कार्यक्रमों में सुनिश्चित वर्षा और सिंचाई वाले चयनित क्षेत्रों में अधिक उपज देने वाले बीज, उर्वरक, पीड़कनाशी और ऋण की सुविधाएं उपलब्ध कराई गईं। इसे गहन कृषीय जिला कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है। इस पैकेज कार्यक्रम के द्वारा ही तथाकथित हरित क्रांति का सूत्रपात हुआ। परिणामस्वरूप कृषीय उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होने लगी। औद्योगिक विकास में भी मामूली सा परिवर्तन हुआ। 1968-69 में औद्योगिक उत्पादन में पुनः वृद्धि होनी शुरू हुई।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) : इस योजना के प्रमुख उद्देश्य थे–(i) विकास की गति को तेज करना, (ii) कृषीय उत्पादन में उतार-चढ़ाव को घटाना, (iii) विदेशी सहायता की अनिश्चितताओं के प्रभाव को कम करना, (iv) कमजोर तथा कम विकसित क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था को उत्प्रेरित करने के लिए उद्योगों को सारे देश में फैलाया गया। सामाजिक न्याय के साथ विकास को प्रोत्साहित करने वाले कार्यक्रम तैयार किए गए। योजना में, शिक्षा और रोजगार के द्वारा साधनहीन और कमजोर वर्ग के लोगों की दशा सुधारने पर विशेष बल दिया गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-79) : इस योजना में चौथी योजना के दौरान शुरू किए गए उपायों का विस्तार किया गया। इससे गरीबी के उन्मूलन पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में प्रादेशिक/क्षेत्रीय विकास के नियोजन में निदेशक नीतियों/कार्यक्रमों के प्रमुख घटक थे। पिछड़े हुए क्षेत्रों में अंतः प्रादेशिक आबंटन नीति, औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में प्रोत्साहन नीति, कुछ विशिष्ट समस्याओं वाले क्षेत्रों में उप-योजना विधि, तथा सामाजिक न्याय।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना का प्रमुख लक्षण था देश के चुने हुए जनजातीय क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों और सूखा प्रबल क्षेत्रों के लिए उप-योजनाएं तैयार करना। उप-योजना विधि में सामान्य विकास के क्रम को जारी रखना था। इसके लिए राज्य की योजना राशियों में से विशेष केंद्रीय सहायता का प्रावधान किया गया। इस योजना में समानता और बराबरी की पूर्वनिर्धारित कसौटी पर आधारित एक राष्ट्रीय कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम में विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों के समुदाय की न्यूनतम आवश्यकता को पूरा करने के उपाय किये गए। यह विशेषरूप से ग्रामोन्मुख कार्यक्रम था। इसे समुदाय/समाज के कमजोर वर्गों की सामाजिक-आर्थिक दशाएं सुधारने के लिए बनाया गया था।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) : गरीबी हटाना इस योजना का सबसे बड़ा लक्ष्य था। योजना की कार्य नीति बुनियादी तौर पर यह थी कि कृषि और उद्योग दोनों की ही अवसंरचना को एक साथ मजबूत किया जाए। स्थानीय स्तर पर विशिष्ट लोगों का सहयोग लिया गया। राष्ट्रीय आय में अपेक्षाकृत गरीबों की भागीदारी बढ़ाने के लिए विभिन्न पुनर्वितरण उपायों की सिफारिश की गई।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) : इस योजना के मूल सिद्धांत ये थे—विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय। इन्हीं सिद्धांतों को ध्यान में रखकर खाद्यान्नों का उत्पादन, उत्पादकता और रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए नीतियां और कार्यक्रम तथा रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए नीतियां और कार्यक्रम बनाए गए। उत्पादक रोजगार के अवसर बढ़ाने को अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया।

वार्षिक योजनाएं (1990-92) : तत्कालीन राजनीतिक दबावों के तहत सातवीं योजना के बाद दो वार्षिक योजनाएं शुरू की गईं। सामाजिक परिवर्तन और रोजगार के अधिक से अधिक अवसर जुटाने के लिए इन वार्षिक योजनाओं में विशेष जोर दिया गया था।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) : 1991 में नई आर्थिक नीति विशेषरूप से नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई। इन्हीं नीतियों को ध्यान में रखकर यह योजना तैयार की गई थी। इनमें ढांचागत समायोजन नीतियां बहुत महत्वपूर्ण थीं। उदारीकरण के अनेक उपायों की घोषणा की गई। निजी क्षेत्र के विकास में, विशेषरूप से औद्योगिक विकास में, महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी तेजी से प्रगति हुई। आयात और निर्यात में भी भरपूर वृद्धि हुई तथा व्यापार घाटे में कमी भी दर्ज की गई।

नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) : इस योजना के उद्देश्य थे : अर्थव्यवस्था और समाज का सतत पोषकीय (टिकाऊ) विकास, सभी के लिए भोजन और पोषण, मूलभूत न्यूनतम सेवाएं सुनिश्चित करना, जनसंख्या की वृद्धि को रोकना, स्त्रियों और सामाजिक दृष्टि से सुविधा वंचित वर्ग का सशक्तिकरण तथा पंचायती राज जैसी संस्थाओं को प्रोत्साहित करना। नौवीं योजना के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि दर योजना के निर्धारित लक्ष्य से नीचे रही।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007) : इस योजना में 8 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रावधान है। आर्थिक विकास के अलावा इस योजना में मानव विकास के प्रमुख संकेतकों की निगरानी के लिए कुछ लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। ये लक्ष्य हैं योजना की अवधि में 2007 तक गरीबी के अनुपात में 5 प्रतिशत अंकों की कमी करना, श्रमशक्ति को लाभकारी रोजगार के अवसर जुटाना, 2003 तक सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करना, तथा साक्षरता दर को 75 प्रतिशत तक बढ़ाना।

योजना में विकास के लिए अपनाई गई कार्यनीति में निम्नलिखित को शामिल किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की भूमिका को और अधिक बढ़ाना, अवसंरचनाओं में वृद्धि का प्रावधान करना, वित्तीय और मौद्रिक नीतियों में और अधिक लचीलापन लाना। इस योजना में सभी राज्यों के संतुलित विकास पर बल दिया गया है। इस योजना में राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप प्रत्येक राज्य के लिए विकास दर और सामाजिक विकास के

अलग-अलग लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। इस योजना में ये भी शामिल हैं–समानता, सामाजिक न्याय, चालू योजनाओं को पूरा करना, सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण विशेष रूप से उनका जो क्षमता से कम उत्पादन कर रहे हैं।

योजना का क्रियान्वयन

भारत में नियोजन की वास्तविक समस्याएं, योजना निर्माण से नहीं अपितु उनके क्रियान्वयन से जुड़ी हैं। केंद्रीय स्तर पर योजना बनाने का दायित्व योजना आयोग का है। लेकिन क्रियान्वयन केंद्र और राज्य सरकारों के विभागों द्वारा किया जाता है।

राज्य नियोजन के कार्य करने के लिए तैयार नहीं हैं। कृषि के विकास और संबंधित क्रियाकलापों, ग्रामीण और नगरीय विकास, परिवार नियोजन, परिवहन नियोजन तथा औद्योगिक विकास से जुड़ी नियोजन की समस्याएं जटिल होती हैं तथा इनके समाधान के लिए इनसे संबंधित विशेषज्ञता की जरूरत होती है। राज्य स्तर पर योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन के लिए राज्य में विशेषज्ञ नहीं मिलते। इसीलिए राज्य स्तर पर योजना संबंधित विभागों की क्षेत्रीय जरूरतों को पूरा करने के लिए वितरण संस्था का कार्य करती है।

उपलब्धियां

राष्ट्रीय उत्पादों में शुद्ध वृद्धि : विगत 50 वर्षों में (1950-51 से 2000-01) नियोजित व्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था ने बहुत प्रगति की है। इसी के परिणामस्वरूप शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में 7.6 गुनी वृद्धि हुई है, अर्थात् प्रतिवर्ष 4.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। इसी अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 2.8 गुनी वृद्धि हुई अर्थात् प्रतिवर्ष 2.1 प्रतिशत की चक्रवृद्धि दर अंकित की गई है। लेकिन विभिन्न योजनाओं में वार्षिक वृद्धि दरों में व्यापक अंतर रहे हैं।

प्रति वर्ष चक्रवृद्धि दर के संदर्भ में प्रथम योजना सफल थी। इस योजना में देश खाद्यान्नों के मामले में आत्म-निर्भर बनाया गया था। दूसरी योजना ने भी न केवल कृषि अपितु उद्योगों में भी प्रगति की। तीसरी योजना और तीन वार्षिक योजनाओं की अवधि में विकास ठहर-सा गया था। इस अवधि में शुद्ध घरेलू उत्पाद में निम्नतम वृद्धि हुई थी। निम्न वृद्धि के मुख्य कारण थे–युद्ध, सूखा, और भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन। चौथी योजना में भी स्थिति में कुछ विशेष सुधार नहीं हुआ। 1979-80 के सूखे के बावजूद पांचवीं योजना की अवधि में पर्याप्त प्रगति हुई। छठी और सातवीं योजनाओं के दौरान मिली उपलब्धियां उल्लेखनीय थीं। इस अवधि में शुद्ध घरेलू उत्पादों की वार्षिक चक्रवृद्धि दर 5.0 प्रतिशत से अधिक थी। राजनीतिक स्थिरता के कारण 1990-92 की वार्षिक योजनाओं में वृद्धि दर को गंभीर झटका लगा था। आठवीं योजना में 6.7 प्रतिशत की सबसे अधिक वृद्धि दर नौवीं योजना काल में पुन: धीमी हो गई थी।

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में वृद्धि : शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादों और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर मुख्य रूप से कृषि की उपलब्धियों पर आश्रित थी। मानसून की सनक के कारण विशेषरूप से सूखे के वर्षों में, कृषि का उत्पादन और उत्पादकता काफी घट गई थी। इसके विपरीत कृषि की तुलना में औद्योगिक वृद्धि दर निरंतर ऊंची बनी रही। अर्थव्यवस्था में विकास के साथ देश की औद्योगिक संरचना में विविधता आ गई। परिणामस्वरूप, इस अवधि में औद्योगिक उत्पादन में 5.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई, जबकि कृषि उत्पादन केवल 3.0 प्रतिशत की दर से बढ़ा। यह जनसंख्या की 2.2 प्रतिशत की वृद्धि दर से अधिक थी। चतुर्थक क्षेत्र के उत्पादन में बहुत तेज वृद्धि हुई। व्यापार और परिवहन तथा वित्तीय सेवाओं में से प्रत्येक का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 16 गुना बढ़ा तथा इसी अवधि में सार्वजनिक प्रशासन और सेवाओं के योगदान में 12 गुनी वृद्धि हुई। नियोजित प्रयत्नों के फलस्वरूप देश की अर्थव्यवस्था का विविधीकरण हुआ और गैर-प्राथमिक क्षेत्रों में वृद्धि हुई। 1950-51 में सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 59.2 प्रतिशत था, लेकिन 2000-01 में यह केवल 26.6 प्रतिशत ही रह गया। दूसरी ओर इसी अवधि में द्वितीयक क्षेत्र की भागीदारी 13.3 प्रतिशत से 25.0 प्रतिशत तथा तृतीयक क्षेत्र की 27.5 से बढ़कर 48.4 प्रतिशत हो गई। द्वितीयक क्षेत्र में विनिर्माण, बिजली, गैस और जल की आपूर्ति में तेजी से विस्तार हुआ। इसी प्रकार तृतीयक क्षेत्र में व्यापार, परिवहन, लोक प्रशासन की रक्षा में बहुत अधिक वृद्धि हुई। ये सभी भारतीय अर्थव्यवस्था की बढ़ती परिपक्वता के परिचायक हैं।

इसके विपरीत, कामगारों की संरचना में कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। 1951 में कार्यशील जनसंख्या का 72.0 प्रतिशत भाग प्राथमिक क्षेत्र में लगा था, जो 1991 में 67.5 प्रतिशत रह गया। अन्य प्राथमिक क्रियाकलापों को यदि छोड़ भी दें तो भी कृषीय क्रियाकलापों में कुल कामगारों का 58.4 प्रतिशत भाग लगा हुआ था। जब इसी तथ्य पर, सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र की भागीदारी में तेज गिरावट के परिप्रेक्ष्य में विचार करते हैं तो प्राथमिक क्षेत्र में द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रों की तुलना में प्रतिव्यक्ति आय में सापेक्षिक गिरावट स्वतः स्पष्ट हो जाती है। यह तथ्य प्राथमिक क्षेत्र के तथा उल्लेखनीय विषमता की ओर संकेत को भी उजागर करता है। इतना सब होते हुए भी, योजनाओं की उपलब्धियां आकांक्षाओं और लक्ष्यों से बहुत नीचे रहीं। इसके लिए दो कारणों को जिम्मेदार माना जाता है—एक तो जनसंख्या में निरंतर बेरोक-टोक वृद्धि तथा सार्वजनिक क्षेत्र का घटिया निष्पादन। 1991 में लागू की गई नई आर्थिक नीति का बाजार की शक्तियों पर अधिक भरोसा है, सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका पर कम।

उपभोग की स्थिति में सुधार : उपभोग के संकेत में कुछ सुधार उन्नति को प्रदर्शित करते हैं। अनाजों और दालों की प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन की उपलब्धता 1951 में 394 ग्राम थी जो 2001 में बढ़ कर 417 ग्राम हो गईं यद्यपि इसी अवधि में दालों की उपलब्धता 61 ग्राम से घटकर 26 ग्राम ही रह गई। खाद्य तेलों की प्रतिव्यक्ति शुद्ध उपलब्धता तीन गुनी और वृद्धि हुई है। यह 1955-56 में 2.5 कि. ग्रा. से बढ़कर 2000-01 में 8.0 कि. ग्रा. हो गई। घरेलू उपयोग के लिए बिजली की उपलब्धता में वृद्धि भी प्रभावशाली है। यहां 1955-56 में 2.4 किलोवाट घंटे थी जो बढ़कर 1999-2000 में 69.2 किलोवाट घंटे हो गई। लेकिन ये आंकड़े लाभों के वितरण को स्थानिक (प्रादेशिक) और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रदर्शित नहीं करते हैं।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की सफलता : गरीबी उन्मूलन देश की आर्थिक विकास की कार्यनीति का अभिन्न अंग रहा है। योजना आयोग, गरीबी के विस्तार का आकलन राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर करता रहा है। गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त गरीबी के विस्तार में निरंतर कमी दिखाई पड़ती है। 1973-74 में यह 55 प्रतिशत था जो 1999-2000 में 26 प्रतिशत रह गया। गरीबी का अनुपात तो घट गया, लेकिन गरीबों की कुल संख्या आज भी 26 करोड़ बनी हुई है।

रोजगार की स्थिति : रोजगार जनन भी नियोजन की प्राथमिकताओं में से एक रही है। कुल संख्या में कहें तो रोजगार 1983 में 30.3 करोड़ थे, जो बढ़कर 2000 में 39.7 करोड़ हो गए। रोजगार के अवसरों में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप से कम हुई है। समग्र रोजगार की औसत वार्षिक वृद्धि दर 1972-78 की अवधि में 2.73 प्रतिशत थी, जो घटकर 1983-88 में 1.54 तथा 1993-2000 में 1.03 प्रतिशत रह गयी। रोजगार के संगठित क्षेत्र में वार्षिक वृद्धि दर में बहुत तेज गिरावट आई। सन् 2000 में यह गिरावट 0.17 प्रतिशत पर पहुंच गई। सार्वजनिक क्षेत्र में विकास की धीमी गति ही, इसके लिए जिम्मेदार है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षित बेरोजगारों की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। 1996-97 में रोजगार ढूंढ़ने वाले 3.7 करोड़ लोगों के नाम रोजगार के दफ्तरों में पंजीकृत थे।

प्रादेशिक विषमता

देश में विकास के स्तर में प्रादेशिक विषमता स्पष्ट झलकती है। उदाहरण के लिए बिहार में प्रति व्यक्ति आय 1999-2000 में 6328 रु. तथा दिल्ली में 35705 रु. थी। इस प्रकार राज्यों में न्यूनतम और अधिकतम आय में अनुपात 1 : 5 : 6 था। 29 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में से केवल 14 में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आय 15,000 रु. से अधिक थी। इसी प्रकार गरीबी की रेखा के नीचे की जनसंख्या के अनुपात में भी अंतर पाया जाता है। सन 1999–2000 में जम्मू और कश्मीर में यह 3.48 प्रतिशत तथा उड़ीसा में 47.95 प्रतिशत थी। इस प्रकार अनुपात के न्यूनतम और अधिकतम मानों के बीच अनुपात 1:3.5 था। नगरीकरण विकास का अन्य संकेतक है। राज्यों में नगरीय जनसंख्या के अनुपात में भी पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ता है। अरुणाचल प्रदेश में यह अनुपात 5.50 प्रतिशत तथा गोवा में 49.77 प्रतिशत था। विकास के इस पक्ष के अनुपात में 1 : 9 का भारी अंतर दिखाई पड़ता है। यही नहीं, 6 वर्ष से अधिक आयु की कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग निरक्षर है। स्त्री

साक्षरता में तो स्थिति और भी खराब है। सन् 2001 में आधे से थोड़ी ही अधिक (54.2 प्रतिशत) स्त्रियां साक्षर थीं। यह अनुपात बिहार के 33.6 प्रतिशत और केरल के 87.9 प्रतिशत के बीच घटता बढ़ता है। पूर्व चर्चित मानव विकास सूचकांक देश के प्रमुख राज्यों में बिहार में बहुत नीचा अर्थात् 0.367 है तथा केरल में बहुत ऊंचा अर्थात् 0.638 है। प्रादेशिक विषमताएं संक्षेप में इस प्रकार हैं :

1. आंतरिक भागों की तुलना में तटीय क्षेत्र अधिक विकसित हैं।
2. व्यापारिक कृषि के क्षेत्र में विकास अधिक व्यापक हैं, पंजाब और केरल के ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में विषमता कम है।
3. जनजातीय क्षेत्र अभी भी कम विकसित हैं।
4. भौतिक बाधाओं जैसे शुष्क जलवायु, उबड़-खाबड़ पर्वतीय या पठारी भूमि, और प्राय: आने वाली बाढ़ों से पीड़ित क्षेत्रों तथा अलगाव के कारण उन्नत प्रौद्योगिकी से वंचित क्षेत्र पिछड़े (अविकसित) ही रह गए हैं।

आज की तरह नियोजन के प्रारंभिक अवस्थाओं में प्रादेशिक विकास की समस्याओं और मुद्दों पर इतने रूप में विचार नहीं किया जाता था। पचास और साठ के दशकों के दौरान प्रादेशिक विकास की नीतियां क्षेत्रीय (Sectoral) विकास को प्रोत्साहित करती थीं ताकि विनिवेश से अधिकतम लाभ कमाया जा सके। राष्ट्रीय योजनाओं के प्रादेशिक पृथक्करण का प्रयास नहीं किया जाता था। दामोदर घाटी जैसे समस्याग्रस्त प्रदेशों के विकास के लिए योजनाएं बनाना एक अपवाद था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में केंद्रोमुखी बिंदुओं के रूप में कुछ विशाल औद्योगिक केंद्र स्थापित किए गए थे। इनके कारण आर्थिक विकास में अंत: प्रादेशिक अंतर बढ़ गए थे। यद्यपि प्रथम दो योजनाओं में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि तो हुई, लेकिन इससे प्रादेशिक असंतुलन पैदा हो गए थे। फिर भी इस अवधि में सरकार ने पिछड़े हुए प्रदेशों के विकास के लिए कुछ कार्यक्रम शुरू किए थे। साठ के दशक के मध्य प्रादेशिक विषमताओं को कम करने के लिए प्रयत्न किए गए। इन प्रयत्नों की कुछ सकारात्मक प्रवृत्तियां दिखाई भी पड़ीं। लेकिन बाद के वर्षों में प्रवृत्ति की दिशा उलट गई। इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास में गिरावट आ गई, इससे पिछड़े क्षेत्रों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। यही नहीं, हरित क्रांति केवल देश के सिंचित क्षेत्रों तक ही सीमित रही। अस्सी के दशक में जब समग्र विकास की गति पुन: थोड़ी तेज हुई तो प्रादेशिक विषमता में थोड़ी सी घटोतरी में हरित क्रांति का प्रसार अन्य प्रदेशों में भी हो गया।

उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (भूमंडलीकरण) से संबंधित नई आर्थिक नीति के द्वारा विकास की गति अधिक सुविधायुक्त क्षेत्रों में ही तेजी से हो रही है। इससे प्रादेशिक विषमता में वृद्धि हो रही है। विदेशी निवेशकों का रवैया पक्षपातपूर्ण है। वे तटीय राज्यों और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में ही निवेश कर रहे हैं। फिर भी पंचायती राज के उदय होने से सूक्ष्म स्तर पर भी विकास की संभावनाएं बढ़ गई हैं। इससे प्रादेशिक विषमताओं के कम होने की आशा है।

प्रादेशिक विषमताएं घटाने के कार्यक्रम

प्रादेशिक विषमताएं घटाने के लिए तैयार किए गए कार्यक्रमों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

1. समन्वित क्षेत्र विधि तथा स्थानीय नियोजन, और
2. क्षेत्रीय योजनाओं में स्थानिक समन्वय।

समन्वित क्षेत्र विधि और स्थानीय नियोजन : भारत में महत्वपूर्ण उपाय चुने हुए क्षेत्रों के लिए समन्वित योजना तैयार करके तथा जिलों के लिए योजना बनाने से जुड़े हैं। इनमें से प्रादेशिक विषमता घटाने के महत्वपूर्ण उपाय सूखा प्रवण क्षेत्रों, जनजातीय क्षेत्रों तथा सीमान्त और समन्वित योजनाएं उल्लेख के योग्य हैं।

पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम : उत्तरांचल, असम के पहाड़ी क्षेत्रों, पश्चिमी बंगाल के दार्जिलिंग जिले और तमिलनाडु के नीलगिरि जिले में विशिष्ट पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम शुरू किए गए थे। इन कार्यक्रमों में पहाड़ी क्षेत्रों के स्थानीय संसाधनों के दोहन पर विशेष बल दिया गया। संसाधनों के दोहन और विकास के लिए ये कार्यक्रम शुरू किए गए– उद्यान, पौध रोपण, कृषि, पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, वन मृदा संरक्षण और उपयुक्त ग्राम उद्योग।

जनजातीय विकास कार्यक्रम : ये कार्यक्रम उन्हीं क्षेत्रों के लिए तैयार किए गए जिनकी कुल जनसंख्या में 50 प्रतिशत या उससे अधिक संख्या में जनजाति के लोग रहते हैं। उपयोजना क्षेत्र के मुख्य दीर्घावधि उद्देश्य ये थे : जनजातीय और अन्य लोगों के विकास के स्तरों के अंतर

को कम करना, तथा जनजातीय समुदायों की जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना। इस कार्यक्रम के लिए चुने गए क्षेत्र इन राज्यों में स्थित थे : मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र प्रदेश, झारखंड और राजस्थान। इस कार्यक्रम के लिए अधिकतर अनुदान राज्य की योजनाओं की निधि से दिए गए थे। केंद्रीय क्षेत्र (Sector) से भी कुछ विशिष्ट आबंटन किया गया था।

ऐसे कार्यक्रम आम आदमी के लाभ, विशेष रूप से सबसे कमजोर वर्ग के लिए बनाए गए थे। ये कार्यक्रम शीघ्र परिणाम (लाभ) देने वाले तथा जनजाति के आम आदमी के आसानी से पहुंच में थे। ये कार्यक्रम क्षेत्र की विशेष समस्याओं को सुलझाने के लिए बनाए गए थे। प्रमुख समस्याएं ये थीं–स्थानान्तरी कृषि, बंधुआ मजदूरी, भूमि का हस्तांतरण। कुछ कार्यक्रम ऋण, विपणन, वानिकी और सड़कों से भी संबंधित थे।

सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम : इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य थे–अपर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों वाले सूखा प्रवण क्षेत्रों में गांवों की गरीबी को कम करने के लिए उत्पादक परिसंपत्तियों का निर्माण करना। इस कार्यक्रम के द्वारा अभावग्रस्त लोगों के लिए काम के अवसर जुटाए गए थे। इसके लिए पहले से योजना बनाई गई थी। इस कार्यक्रम में भूमि और मजदूर की उत्पादकता बढ़ाने के लिए विकासात्मक कार्य शुरू किए गए थे। इस कार्यक्रम में क्षेत्र के समन्वित विकास पर जोर दिया गया था। कार्यक्रम निम्नलिखित से संबंधित थे– सिंचाई परियोजनाएं, भूमि विकास कार्यक्रम, वनरोपण/वनीकरण, घासभूमि विकास, ग्रामीण विद्युतीकरण और अवसंरचनात्मक विकास कार्यक्रम। इस कार्यक्रम में राज्य के सामान्य प्रयत्नों के अलावा केंद्र सरकार की सहायता भी उपलब्ध कराई गई थी।

महानगरीय प्रादेशिक नियोजन : विशाल महानगरीय केंद्रों को औद्योगिक विकास के केंद्र माना गया। परिणामस्वरूप नगर-आधारित बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण के साथ ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर श्रमिक आ गए। नगरों, विशेषरूप से राजधानियों और पत्तनों में, बड़ी संख्या में श्रमिकों के आ जाने से अनेक समस्याएं पैदा हो गईं। इसलिए, तीव्र नगरीकरण से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए नगरीय मास्टर प्लान/महायोजनाएं बनाई गईं। दिल्ली के लिए 1995 में महायोजना बनी। दिल्ली की निरंतर बढ़ती जनसंख्या को दिल्ली से बाहर बसाने के लिए मुद्रिका नगरों को विकसित करने का प्रस्ताव किया गया। गाजियाबाद, फरीदाबाद, बल्लभगढ़, गुड़गांव और लोनी को मुद्रिका नगरों के रूप में विकसित किया गया। कोलकाता, मुंबई, हैदराबाद आदि महानगरों ने दिल्ली का अनुसरण किया।

क्षेत्रीय (Sectorial) योजनाओं में स्थानिक समन्वय : भिन्न-भिन्न योजनाओं के दौरान, संतुलित प्रादेशिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए, विशेष रूप से तैयार किए गए कार्यक्रमों का समन्वय किया गया।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम : यह कार्यक्रम प्रथम पंचवर्षीय योजना में शुरू किया गया। इसके लिए पूरे देश को खंडों (Blocks) में विभाजित किया गया। राष्ट्रीय प्रसार सेवा के द्वारा गांवों में निवेश, सेवाओं, वित्त और तकनीकी जानकारी पहचानने का प्रयत्न किया गया। विकास के बहुपक्षीय सिद्धांतों पर आधारित इस कार्यक्रम को बहुउद्देशीय विधि का नाम दिया गया। बहुक्षेत्रीय घटकयुक्त यह विधि, संसाधनों की कमी से जूझती रही और इसके द्वारा कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी।

औद्योगिक अवस्थिति और प्रादेशिक विकास : इन कार्यक्रमों का उद्देश्य औद्योगीकरण का विकेंद्रीकरण था। इन कार्यक्रमों ने पिछड़े प्रदेशों में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। इसके लिए निम्नलिखित सुविधाएं जुटाई गईं : वित्त में छूट, औद्योगिक परिसरों (Estates) का निर्माण, सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों की स्थापना तथा लाइसेंस। औद्योगिक परिसरों में उद्योग लगाने के लिए अवसंरचनात्मक सुविधाएं प्रदान की गईं। प्रथम चरण में, नगरीय केंद्रों के निकट ही परिसर बनाए गए लेकिन बाद में इनकी स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में भी की गई। 60 के दशक के दौरान ये औद्योगिक परिसर तेजी से विकसित हुए, लेकिन संतुलित विकास के उद्देश्य को पूरा नहीं कर सके।

गहन कृषीय विकास कार्यक्रम : इसे तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान लागू किया गया। इस नीति के अुनसार कुछ ऐसे जिलों को चुनना था, जिनमें कृषि के विकास की प्रबल संभावनाएं थीं। चयनित जिलों में सिंचाई की सुनिश्चित सुविधाएं थीं। इन जिलों में किसानों को पूरी पैकेज सेवाएं (सेवाओं को पूरा पैकेज) प्रदान की गईं। सुविधाएं ये थीं :

उन्नत बीज, उर्वरक, फसल सुरक्षा, तथा अल्पावधि उधार। निवेश की अधिक लागत और अधिक जोखिम के कारण यह कार्यक्रम सीमित क्षेत्रों में कुछ निश्चित वर्ग के किसानों तक ही सीमित होकर रह गया।

भारत के नियोजित विकास के परिणामों की कहानी सफलताओं और असफलताओं की मिली-जुली कहानी है। सफलता के पक्ष में इन उपलब्धियों पर गर्व किया जा सकता है। खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता, उद्योगों का विस्तार, विविधीकरण और फैलाव, मुद्रास्फीति की दर पर नियंत्रण, आंतरिक स्रोतों से पूंजी-निर्माण की उच्च दर और प्रादेशिक विषमता के साथ-साथ गरीबी के अनुपात में कमी। विकास की असफलता को दिखाने के लिए ये उदाहरण दिए जा सकते हैं। आय की वृद्धि दर लक्ष्य से नीची रही, कृषि की उपलब्धियां बहुत अच्छी नहीं थीं और औद्योगिक प्रगति काफी पिछड़ती गई। देश समानता के आधार पर विकास के उद्देश्य लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका। राज्यों, ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों और पुरुषों तथा स्त्रियों के मध्य दिखाई पड़ने वाली विषमताओं को कम करने के लिए आज़ भी सतत प्रयत्नों की अनिवार्यता बनी हुई है।

टिकाऊ विकास की आवश्यकता

विकास का मुख्य उद्देश्य है—लाभों के समान वितरण के साथ आर्थिक प्रगति तथा परितंत्र को कम से कम हानि। इस उद्देश्य को टिकाऊ विकास की विधि से प्राप्त किया जा सकता है। टिकाऊपन और टिकाऊ विकास को परिभाषित करने के अनेक प्रयास किए गए हैं। इस संकल्पना का सिद्धांत है—पर्यावरणी संसाधनों का उनकी पुनर्भरण की क्षमता के अनुसार उपयोग, ताकि उनकी निरंतर आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके। विकास के अनेक प्रकार पर्यावरण के उन्हीं संसाधनों का ह्रास करते हैं जिन पर वे आधारित होते हैं। परिणामस्वरूप आर्थिक विकास में बाधा पड़ती है और भविष्य की संभावनाएं कम हो जाती हैं। इसलिए टिकाऊ विकास पारितंत्र के स्थायित्व का सदैव ध्यान रख सकता है।

टिकाऊपन को सामाजिक संदर्भ में भी समझा जा सकता है। इसका तात्पर्य है उत्पादक संरचनाओं और संबंधों के साथ अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवसाय में प्रगति। इससे आय के न्यायपूर्ण वितरण शक्ति और अवसरों का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित होते हैं जो सामाजिक शान्ति के लिए आधार प्रदान करता है। वास्तव में ये जनोन्मुख तथा प्रकृति-उन्मुख विकास की संकल्पना है। इसमें सामाजिक न्याय, कल्याण, जीवन की गुणवत्ता और पर्यावरणीय संरक्षण को आर्थिक विकास के बराबरी का दर्जा दिया जाता है। यही नहीं इसमें विकास का नियोजन इस प्रकार किया जाता है ताकि स्थानीय जनसंख्या, संसाधनों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और क्षमताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा जा सके। विकास की नीतियों को न्याय संगत बनाने और उचित नीतियों को लागू करने के लिए बहुस्तरीय नियोजन की आवश्यकता पड़ती है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :

(i) नियोजन किसे कहते हैं?

(ii) किसी देश के विकास के लिए नियोजन क्यों आवश्यक है?

(iii) दूसरी पंचवर्षीय योजना के क्या उद्देश्य थे?

(iv) 1966-69 के दौरान वार्षिक योजनाओं के विशिष्ट लक्षण कौन-कौन से थे?

(v) भारत में रोजगार की क्या स्थिति है?

(vi) उन क्षेत्रों के नाम बताइए जहां जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम शुरू किए गए थे?

(vii) सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रमों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(viii) गहन कृषीय विकास कार्यक्रम कब लागू किया गया?

2. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए :
    (i) चौथी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य।
    (ii) टिकाऊ विकास की आवश्यकता।
3. भारत की पंचवर्षीय योजनाओं की प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
4. भारतीय अर्थव्यवस्था के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हुए विकास का वर्णन कीजिए?
5. भारत के विकास में प्रादेशिक विषमताओं की प्रमुख विशेषताओं का विवरण लिखिए।

परियोजना कार्य

6. भारत के रेखा मानचित्र में निम्नलिखित को दिखाइए :
    (i) जनजातीय विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत क्षेत्र।
    (ii) सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रमों के अंतर्गत क्षेत्र।
    (iii) महानगरीय प्रादेशिक नियोजन के अंतर्गत क्षेत्र।

13 अध्याय

परिवहन और संचार के जाल

लोगों के आवागमन और सामान के परिवहन को सुविधाजनक बनाने के लिए परिवहन के जाल की स्थापना की जाती है। यह मनुष्यों और उनके लिए आवश्यक और उपयोगी वस्तुओं को एक स्थान पर लाने का साधन है। यह सभी क्षेत्रीय स्तरों, भूमंडलीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक और स्थानीय, पर स्थानिक अर्थव्यवस्था की जीवनरेखा के रूप में कार्य करता है। परिवहन तंत्र में चार तत्व शामिल हैं–उद्गम, गंतव्य, मार्ग और वाहक। उद्गम वह बिंदु है, जहां से यातायात शुरू होता है; गंतव्य वह बिंदु है, जहां यह समाप्त होता है; मार्ग वह तल है जिस पर आवागमन होता है तथा वाहक वह वाहन है; जो यात्रियों को और सामान को ढोता है। परिवहन का एक सुगठित और समन्वित तंत्र देश के सतत पोषणीय आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संचार का जाल एक स्थान से दूसरे स्थान को सूचनाएं भेजता या प्राप्त करता है। इसके तीन रूप हैं भौतिक जैसे डाक सेवाएं, तार द्वारा जैसे टेलीग्राफ और टेलीफोन और वायु तरंगों द्वारा जैसे रेडियो और टेलीविजन। कुछ संचार तंत्र परिवहन के सहयोग से कार्य करते हैं, जैसे डाक सेवाएं लेकिन कुछ संचार के साधन परिवहन तंत्र से अलग स्वतंत्र रूप में कार्य करते हैं; जैसे–रेडियो।

परिवहन के प्रकार

परिवहन के आधुनिक प्रकारों में सड़कों, रेलमार्ग, जलमार्गों और वायुमार्गों का महत्व है। पाइपलाइनों का उपयोग तरल पदार्थ और गैस के परिवहन के लिए किया जाता है। भारत में परिवहन की दृष्टि से एक क्रमिक परिवर्तन आया है। विगत कुछ दशकों में हमारा परिवहन पहले रेल प्रधान था और अब धीरे-धीरे सड़क प्रधान हो गया है। 1980-81 में रेलों की कुल यात्रा किलोमीटर में भागीदारी 36 थी, जो सन् 1993-94 में घटकर लगभग 16 रह गई है। इसी प्रकार कुल माल परिवहन (टन कि.मी.) में रेलों की भागीदारी 62 से घटकर 42 रह गई है। घरेलू वायु परिवहन का विकास हुआ है, लेकिन यात्री परिवहन में इसकी भागीदारी 1993-94 में 0.2 प्रतिशत तथा माल परिवहन में 0.1 प्रतिशत ही थी।

भारत में रेल परिवहन की तुलना में सड़क परिवहन के निरंतर विकास के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी हैं :

1. रेलमार्गों की तुलना में सड़कों की निर्माण लागत काफी कम है।
2. सड़कें अपेक्षाकृत अधिक ऊबड़-खाबड़ और ढलुआ भूमि पर बनाई जा सकती है।
3. अपेक्षाकृत कम यात्रियों और माल का परिवहन सड़क द्वारा सस्ता पड़ता है।
4. द्वार से द्वार तक सेवा प्रदान करने के कारण सड़क परिवहन में माल चढ़ाने-उतारने में भी कम लागत आती है।
5. सड़क परिवहन, परिवहन के अन्य प्रकारों का पूरक है। यह रेलवे स्टेशनों, विमान पत्तनों और जलयान पत्तनों को उनके पृष्ठ प्रदेशों से जोड़ता है।

> ***परिवहन तंत्र की एकताकारी भूमि***
>
> *एकीकृत और समन्वित परिवहन का जाल सामाजिक दूरियों, राजनीतिक विखंडन और आर्थिक अलगाव को कम करता है। यह समाज, राज्यतंत्र और अर्थव्यवस्था की अभिकेंद्री शक्तियों को मजबूत करता है और अपकेंद्री शक्तियों को कमजोर करने में सहायता करता है।*

सड़क परिवहन

भारत में संसार का एक बड़ा सड़क जाल है और इस समय यहां सड़कों की कुल लंबाई 33 लाख कि.मी. है। 1950-51 में सड़कों की कुल लंबाई 4,00,000 कि.मी. थी, जो बढ़कर 1996-97 में 24.66 लाख कि.मी. (जवाहर रोजगार योजना की सड़कों के अतिरिक्त) हो गई थी। इनमें से केवल 43.5 प्रतिशत सड़कें ही पक्की हैं।

महत्व की दृष्टि से इन सड़कों को छ: वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–1. स्वर्ण चतुष्कोण परम राजमार्ग; 2. राष्ट्रीय महामार्ग; 3. राज्य महामार्ग; 4. सीमावर्ती सड़कें; 5. जिले की प्रमुख सड़कें तथा 6. ग्रामीण सड़कें; गांव और जिले की अन्य सड़कों सहित।

स्वर्ण चतुष्कोण परम राजमार्ग : सरकार ने सड़कों के विकास की एक मुख्य परियोजना शुरू की है। इसके द्वारा दिल्ली कोलकाता, चेन्नई-मुंबई और दिल्ली को छ: गलियों वाले परम राजमार्गों द्वारा जोड़ा जा रहा है। श्रीनगर (जम्मू और कश्मीर) को कन्याकुमारी (तमिलनाडु) से जोड़ने वाला उत्तर-दक्षिण गलियारा तथा सिलचर (असम) को पोरबंदर (गुजरात) से जोड़ने वाला पूर्व-पश्चिम गलियारा इसी परियोजना के अंग हैं (चित्र 13.1)। इन राजमार्गों पर बड़ी तेजी से काम चल रहा है तथा ये 2003 के अंत तक उपयोग के योग्य हो जाएंगे।

इन परम राजमार्गों के बन जाने से भारत के महानगरों के बीच समय-दूरी काफी घट जाएगी (यात्रा में कम समय लगेगा)। इन राजमार्ग परियोजनाओं के निर्माण का दायित्व भारत के राष्ट्रीय महामार्ग प्राधिकरण का है।

राष्ट्रीय महामार्ग : यह देश का प्रमुख सड़क तंत्र है। इसके निर्माण और मरम्मत की जिम्मेदारी केंद्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग की है। 1950-51 में राष्ट्रीय महामार्गों की कुल लंबाई 19,800 कि.मी. थी, जो बढ़कर सन् 1999-2000 में 57,700 कि.मी. हो गई। राष्ट्रीय महामार्गों की लंबाई देश की सड़कों की कुल लंबाई का केवल दो प्रतिशत ही है, लेकिन यातायात में इसकी भागीदारी 40 प्रतिशत की है। ऊपर चर्चित परम-राजमार्ग परियोजना भी राष्ट्रीय महामार्ग विकास कार्यक्रम का अंग है।

राष्ट्रीय महामार्ग देश के एक छोर को दूसरे छोर से जोड़ते हैं। अनेक प्रमुख महामार्ग उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम दिशाओं में विस्तृत हैं। ऐतिहासिक शेरशाह सूरी मार्ग को **राष्ट्रीय महामार्ग-1** कहते हैं। यह दिल्ली और अमृतसर के मध्य है। **राष्ट्रीय महामार्ग-2** दिल्ली और कोलकाता के बीच है। **राष्ट्रीय महामार्ग-3** ग्वालियर, इंदौर, नासिक होकर आगरा को मुंबई से जोड़ता है। **राष्ट्रीय महामार्ग-4** चेन्नई को ठाणे (मुंबई के निकट) से जोड़ता है। **राष्ट्रीय महामार्ग-5** पूर्वी तट के साथ बहाराघोरा और चेन्नई के बीच है। **राष्ट्रीय महामार्ग-6** देश का दूसरा सबसे लंबा (1949 कि.मी.) महामार्ग है और यह संबलपुर, रायपुर, नागपुर से होता हुआ कोलकाता से धुले तक जाता है। **राष्ट्रीय महामार्ग-7** सबसे लंबा (2369 कि.मी.) है। यह जबलपुर, नागपुर, हैदराबाद, बंगलौर और मदुरै होता हुआ वाराणसी से कन्याकुमारी तक जाता है। दिल्ली और मुंबई को **राष्ट्रीय महामार्ग-8** जोड़ता है। **राष्ट्रीय महामार्ग-15** राजस्थान के मरुस्थल से होकर गुजरता है (चित्र 13.2)।

राज्य सड़कें : इन सड़कों का निर्माण और मरम्मत राज्य सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा किया जाता है। राज्य की राजधानी को जिला मुख्यालयों से जोड़ने वाली सड़कों को राज्य महामार्ग कहते हैं। 1996-97 में राज्य महामार्गों की कुल लंबाई 1,37,100 कि.मी. थी। इन सड़कों की लंबाई देश की कुल सड़कों की लंबाई का 5.6 प्रतिशत है।

अन्य सड़कें : अन्य सड़कों को ग्रामीण सड़कों के वर्ग में रखा जाता है। ये ग्रामीण क्षेत्रों को आपस में तथा गांवों को नगरों से जोड़ती हैं। 93 प्रतिशत से अधिक सड़कें इसी वर्ग में आती हैं। इनमें से लगभग आधी (53.4 प्रतिशत) पक्की हैं और शेष कच्ची या धूल भरे मार्ग हैं।

सीमावर्ती सड़कें : सीमा सड़क संगठन सन् 1960 में बनाया गया था। इसको उत्तरी और उत्तर पूर्वी सीमांत क्षेत्रों में सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण सड़कों के विकास का काम सौंपा गया था। अपने प्रारंभ से मार्च 2002 तक इसने 30,028 कि.मी. लंबी सड़कों का निर्माण कार्य पूरा किया है तथा 35,577 कि.मी. लंबी सड़कों को पक्का किया है तथा स्थायी पुलों का निर्माण भी किया है। इन सड़कों ने दुर्गम क्षेत्रों में आवागमन सुगम बना दिया है। इससे आर्थिक विकास में भी मदद मिली है।

यात्रियों और माल के परिवहन में सड़कों की भागीदारी निरंतर बढ़ रही है। इस वृद्धि का मुख्य कारण सड़कों के अपने अंतर्निहित लाभ हैं। 1993-94 में सड़कों की 1500 अरब यात्री कि.मी. की भागीदारी थी जो रेलों से चार गुनी अधिक थी (यात्री कि.मी. वह गुणनफल है, जिसे यात्रियों की कुल संख्या और उनके द्वारा तय की गई कि.मी. दूरी को गुणा करके प्राप्त किया जाता है)। सड़क परिवहन लचीला है तथा दुर्गम क्षेत्रों को भी जोड़ता है। अतः इसकी भागीदारी यात्री परिवहन में 83 प्रतिशत तथा माल परिवहन में 57 प्रतिशत थी। यात्रियों की संख्या और माल के भार

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र से भारत का जल प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।

इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।

इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 13.1 भारत : राष्ट्रीय महामार्ग विकास परियोजना
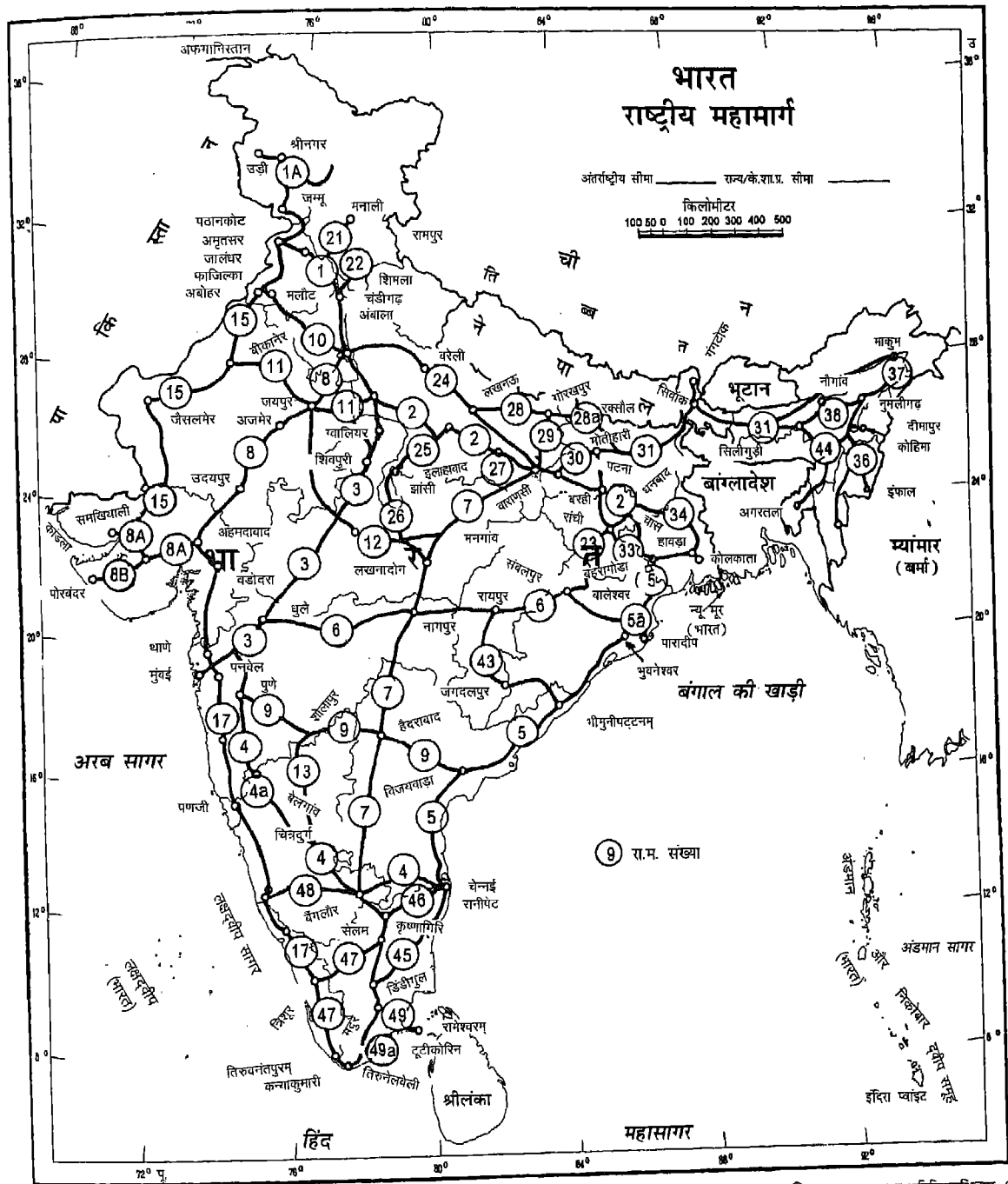
भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जल-प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई है।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 13.2 भारत : राष्ट्रीय महामार्ग

में वृद्धि के अनुपात में वाहनों की संख्या भी बढ़ रही हैं। 1950-51 और 1996-97 के मध्य यात्री बसों की संख्या 15 गुनी बढ़ गई है। ट्रकों की संख्या में भी उसी असाधारण दर से वृद्धि हुई है। 1950-51 से लेकर सड़क परिवहन की प्रगति को सारणी 13.1 में दिखाया गया है।

सारणी 13.1 — भारत : नियोजन अवधि में सड़क परिवहन की प्रगति

	1950-51	1980-81	1996-97
सड़कों की लंबाई (000 किमी) सभी प्रकार की सड़कें	400	1419	2465.9
पक्की सड़कें	157.0	684.0	1394.1
राष्ट्रीय महामार्ग	19.8	31.7	34.8
राज्य महामार्ग	अनुपलब्ध	94.4	137.1
कुल पंजीकृत वाहन (000)	306	5391	37231
मालवाहक वाहन (000)	82	554	2260
बसें	34	162	488

देश में सड़कों का वितरण समान नहीं है। सड़कों के घनत्व में प्रादेशिक अंतर बहुत है। सड़कों के घनत्व का अर्थ है : प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में सड़कों की लंबाई, जम्मू और कश्मीर में सड़कों का घनत्व 10 कि.मी. है, जबकि केरल में 375 कि.मी.। सड़कों का राष्ट्रीय घनत्व 75 कि.मी. (1996-97) है। लगभग सभी उत्तरी राज्यों और प्रमुख दक्षिणी राज्यों में सड़कों का घनत्व अधिक है। यह हिमालयी प्रदेश, उत्तर-पूर्वी राज्यों, मध्य प्रदेश और राजस्थान में कम है। भूमि का स्वरूप और आर्थिक विकास का स्तर, सड़कों के घनत्व के मुख्य निर्धारक हैं। समतल मैदानी क्षेत्र में सड़कों का निर्माण आसान और सस्ता होता है, जबकि पहाड़ी और अत्याधिक ऊबड़-खाबड़ क्षेत्रों में सड़कें बनाना महंगा और कठिन होता है। इसीलिए मैदानी क्षेत्रों में सड़कों का घनत्व और गुणवत्ता दोनों ही ऊंचे होते हैं। दुर्गम भूमियां लगभग सड़क विहीन होती हैं। जनसंख्या के उच्च घनत्व से भी सड़कों के निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है।

पक्की सड़कों के घनत्व में और भी अधिक अंतर पाया जाता है। देश के प्रति 100 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में औसतन 42.4 कि.मी. लंबी सड़कें हैं (1996-97)। गोवा में पक्की सड़कों का घनत्व सबसे अधिक है (153.8 कि. मी.)। इसके विपरीत जम्मू और कश्मीर में सबसे कम घनत्व (3.5 कि.मी.) है। अरुणाचल प्रदेश में पक्की सड़कों का घनत्व कुछ अधिक अर्थात् 4.8 कि.मी. है। सड़कों के उच्चतर घनत्व वाले राज्यों में ही पक्की सड़कों का भी घनत्व अधिक है। असम और नागालैंड इसके अपवाद हैं।

रेल परिवहन

भारतीय रेलों का जाल एशिया में प्रथम लेकिन विश्व में चौथा सबसे बड़ा जाल है। यात्रियों और माल के आंतरिक परिवहन के लिए यह सस्ता साधन है। यह देश के दूर-दूर क्षेत्रों से यात्रियों को एक साथ ले आता है तथा वस्तुओं के उत्पादन के केंद्रों से मांग के क्षेत्रों में वितरण को संभव बनाता है। ये वस्तुएं खाद्य पदार्थों, रेशों, कच्चे माल और तैयार माल से संबंधित हो सकती हैं। विगत 150 वर्षों में रेलें प्रमुख एकताकारी ताकत रही हैं। 1853 में रेलों की एक मामूली-सी शुरुआत थी, जब मुंबई से थाने के मध्य 34 कि.मी. की दूरी पर पहली रेल चली। इसके बाद से रेलों का एक विशाल जाल विकसित हो गया है। रेल मार्गों की कुल लंबाई 62,759 कि.मी. है, जिस पर 6867 स्टेशनों के मध्य प्रतिदिन 12670 रेलगाड़ियां चलती हैं। भारतीय रेलमार्गों के तीन गेज हैं :

(क) ब्राड गेज या बड़ी लाइन (दो पटरियों के बीच दूरी 1.676 मी.): रेल मार्ग की कुल लंबाई 44383 कि.मी. (70.7 प्रतिशत)।

(ख) मीटर गेज या छोटी लाइन (1 मीटर) रेलमार्ग की कुल लंबाई 15013 कि.मी. (23.9 प्रतिशत)।

(ग) नैरो गेज या संकरी लाइन (0.762 मीटर और 0.610 मीटर) रेलमार्ग की कुल लंबाई 3363 कि. मी. (5.4 प्रतिशत)।

भारतीय रेलों में तीन प्रकार के इंजनों का उपयोग होता है–डीजल, बिजली तथा भाप चालित इंजन। लगभग 23 प्रतिशत रेलमार्ग विद्युतीकृत हैं। रेल जाल को 14 क्षेत्रों में तथा पुनः मंडलों में उपविभाजित किया गया है।

भारत में रेल जाल वितरण प्रतिरूप अनेक कारकों से प्रभावित हुआ है। स्वतंत्रता से पूर्व रेलमार्ग पत्तनों को बड़े

केंद्रों से जोड़ने के लिए बनाए गए थे, ताकि कच्चे माल का आसानी से निर्यात किया जा सके तथा तैयार माल आयात किया जा सके। लेकिन अब रेलों को देश के समग्र विकास का साधन माना जाता है। इसलिए रेल परिवहन का विकास, प्रादेशिक विकास के सिद्धांतों से नियंत्रित होता है।

रेलों का घनत्व, भूमि के भौतिक स्वरूप और जनसंख्या के घनत्व से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। उत्तरी विशाल मैदानों की समतल भूमि, जनसंख्या का उच्च घनत्व तथा समृद्ध कृषि रेलों के विकास के लिए अत्यंत उपयुक्त दशाएं हैं (चित्र 13.3)। इस मैदान में अनेक बड़ी नदियां हैं, जिन पर लंबे-लंबे पुल बनाना ही एकमात्र बाधा है। लेकिन प्रायद्वीपीय भारत की पहाड़ी भूमि पर दो स्थानों के मध्य सीधे रेलमार्ग बनाना संभव नहीं है। इसीलिए रेलमार्ग नीची पहाड़ियों, दर्रों या सुरंगों से होकर बनाए जाते हैं। इसी प्रकार ऊंची पहाड़ियों और ऊंचे पर्वतों, बहुत विरल जनसंख्या तथा निर्यात योग्य प्राकृतिक संसाधनों के अभाव के कारण हिमालयी पर्वत प्रदेश रेलों के निर्माण के लिए अनुपयुक्त था। कुछ रेलमार्ग गिरिपद पहाड़ियों पर बसे जम्मू, कोटद्वार, हरिद्वार, काठगोदाम आदि नगरों तक ही बनाए गए थे।

इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थान के बलुई मैदान में भी रेलें बनाना कठिन कार्य था। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और झारखंड के पहाड़ी और वनाच्छादित प्रदेश और गुजरात तथा पश्चिमी बंगाल के दलदली प्रदेश रेलों के विकास के लिए अनुपयुक्त रहे हैं। अविच्छिन्न सहयाद्रि को केवल दर्रों से होकर ही पार किया जा सकता है।

लोग रेलों द्वारा इसलिए यात्रा करना पसंद करते हैं कि यह सस्ती और ठीक समय पर चलती हैं। रेल यात्रियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। 1950-51 में यह संख्या 12.84 करोड़ थी जो बढ़कर 1999-2000 में 45.85 करोड़ हो गई थी। भारतीय रेल विभाग द्वारा यात्रियों की सेवा के लिए पांच प्रकार की रेलगाड़ियां चलाई जा रही हैं। साधारण यात्री रेलगाड़ियां, एक्सप्रेस/मेल रेलगाड़ियां, सुपरफास्ट रेलगाड़ियां, राजधानी एक्सप्रेस, शताब्दी और जन शताब्दी रेलगाड़ियां। यही नहीं अब रेलों में आरक्षण कंप्यूटर द्वारा होने लगा है। अब भारत में किसी भी रेल आरक्षण केंद्र से किन्हीं भी दो स्टेशनों के बीच तत्काल आरक्षण करवाया जा सकता है। औसतन 1.3 करोड़ व्यक्ति प्रतिदिन रेलों से यात्रा करते हैं।

यात्रियों की संख्या के साथ ही माल के परिवहन में भी भारी वृद्धि हुई है। औद्योगिक और कृषीय क्षेत्रों में विकास के कारण रेल परिवहन की मांग बहुत बढ़ गई है। रेलों द्वारा ढोई गई प्रमुख वस्तुएं हैं–कोयला, लोहा और इस्पात, अयस्क, पैट्रोलियम उत्पाद तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं जैसे खाद्यान्न, उर्वरक, सीमेंट, चीनी, नमक, खाद्य तेल आदि (सारणी 13.2)। इसी के परिणामस्वरूप ढोए गए माल की मात्रा में वृद्धि हुई है। 1950-51 में रेलों ने 7.32

सारणी 13.2 — भारत : रेलों द्वारा ढोए गए माल की प्रवृत्ति 1950-2001
(दस लाख टनों में)

वस्तु	1950-51	1970-71	1990-91	2000-01
कोयला	20.2	47.9	135.16	222.75
इस्पात कारखानों के लिए कच्चा माल	अनुपलब्ध	16.1	25.9	38.75
कच्चा लोहा और परिष्कृत इस्पात	अनुपलब्ध	6.2	10.01	11.51
लौह-अयस्क	अनुपलब्ध	9.8	13.14	14.58
सीमेंट	2.5	11.0	28.88	42.84
खाद्यान्न	7.8	15.1	25.25	26.65
उर्वरक	अनुपलब्ध	4.7	18.36	36.22
पैट्रोलियम	2.7	8.9	24.99	36.22
अन्य वस्तुएँ	40.0	48.2	36.61	52.81
कुल माल	73.2	167.9	318.40	473.25

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जल-प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 13.3 भारत : रेलमार्ग

करोड़ टन माल ढोया था जिसकी मात्रा बढ़कर 2000-01 में लगभग 47.34 करोड़ टन हो गई।

भारतीय रेलें उपकरणों के निर्माण के लिए छः कारखाने चलाती हैं। ये हैं–(1) चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, चितरंजन; (2) डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी; (3) इंटीग्रल कोच फैक्ट्री, पेराम्बूर; (4) रेल कोच फैक्ट्री, कपूरथला; (5) व्हील एंड एक्सेल प्लांट, बंगलौर और (6) डीजल कंपोनेंट वर्क्स, पटियाला।

जल परिवहन

भारत में जलमार्ग यात्रियों और माल के परिवहन के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है। इसमें आंतरिक जलमार्ग और समुद्री मार्ग शामिल हैं।

आंतरिक जलमार्ग : जल परिवहन, परिवहन का सबसे सस्ता साधन है। इसीलिए यह भारी भरकम सामान के परिवहन के लिए बहुत उपयुक्त है। यह परिवहन ईंधन, क्षम और पर्यावरण हितैषी साधन है। भारत की परिवहन प्रणाली में आंतरिक जल परिवहन की भागीदारी केवल एक प्रतिशत की है। भारत में लगभग 14,500 कि.मी. लंबे नाव्य जलमार्ग हैं। इनमें नदियां, नहरें, पश्चजल, निवेशिकाएं आदि शामिल हैं। इस समय प्रमुख नदियों के केवल 3,700 कि.मी. लंबे भाग सपाट तल वाली यंत्र चालित नौका द्वारा नाव्य हैं। इसमें से भी केवल 2000 कि.मी. का ही उपयोग हो रहा है। इसी प्रकार 4,300 कि.मी. लंबी नाव्य नहरों में से केवल 900 कि.मी. में ही यांत्रिक नौकाएं चलाई जा सकती हैं।

देश में राष्ट्रीय जलमार्गों के विकास, रख-रखाव और नियमन के लिए 1986 में भारतीय आंतरिक जलमार्ग प्राधिकरण का गठन किया गया था। इस समय देश में तीन राष्ट्रीय जलमार्ग हैं। 10 अन्य जलमार्गों को भी राष्ट्रीय जलमार्गों का दर्जा देने पर विचार किया जा रहा है। तीन राष्ट्रीय जलमार्ग ये हैं : **राष्ट्रीय जलमार्ग-1** : *गंगा-भागीरथी-*हुगली नदी तंत्र का इलाहाबाद और हल्दिया के बीच का मार्ग (1620 कि.मी.); **राष्ट्रीय जलमार्ग-2** : ब्रह्मपुत्र नदी का सदिया-धूबरी भाग (891 कि.मी.) और **राष्ट्रीय जलमार्ग-3** : पश्चिम तट नहर का कोटापुरम में कोल्लम खंड तथा उद्योग मंडल और चंपाकर नहरें (205 कि.मी.)।

राष्ट्रीय जलमार्गों के अलावा गोदावरी, कृष्णा और महानदी के डेल्टाई प्रदेशों, बराक नदी, गोवा की मांडावी और जुआरी नदियों तथा केरल के पश्चजलों का भी आंतरिक जल परिवहन के लिए उपयोग किया जा रहा है। आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु की बकिंघम नहर तथा कंबेरजुआ नहर कभी महत्वपूर्ण नाव्य नहरें थीं। नदियों और नहरों की नाव्यता उचित गहराई के साथ नियमित जल प्रवाह पर निर्भर करती हैं, जिसमें नावें आसानी से चलाई जा सकती हैं। लेकिन आंतरिक जल परिवहन की कुछ समस्याएं हैं। इनमें से प्रमुख समस्याएं ये हैं–जल में)तुनिष्ठ घट-बढ़, उथलापन, ऊबड़-खाबड़ नदी तल तथा उनमें गाद भरना तथा सिंचाई के लिए नहरें निकालने से जलस्तर में कमी।

समुद्री मार्ग : भारत की 7,516 कि.मी. की बहुत लंबी तट रेखा और 20 लाख वर्ग कि.मी. से अधिक का समुद्री आर्थिक क्षेत्र है। इस विशाल तटीय भाग में नौ परिवहन ही परिवहन का मुख्य साधन है। संपूर्ण तटरेखा पर 12 प्रमुख पत्तन तथा 184 लघु और मध्यम पत्तन हैं। लगभग 98 प्रतिशत विदेशी व्यापार समुद्री मार्गों के द्वारा होता है। तटीय नौ परिवहन द्वारा घरेलू माल ढोया जाता है।

विकासशील देशों में भारत का व्यापारिक जहाजी बेड़ा सबसे बड़ा है तथा संसार में व्यापारिक जहाजरानी बेड़े की दृष्टि से भारत का 17वां स्थान है। सन् 2001 में भारत के जहाजी बेड़े में 546 जहाज थे जिनकी सकल पंजीकृत क्षमता 68 लाख टन थी। 1993-94 में भारतीय जहाजों ने समुद्री व्यापार के कुल आयात में 3.7 करोड़ टन माल तथा कुल निर्यात का 90 लाख टन माल ढोया। देश के विदेशी व्यापार में भारतीय जहाजों की भागीदारी कुल मिलाकर 31.5 प्रतिशत है। ढोए गए कुल माल में सबसे अधिक मात्रा कोयले और पैट्रोलियम की है। सन् 1994 में भारत की मुख्य भूमि और अंडमान और निकोबार द्वीप के मध्य 1.3 लाख यात्रियों ने तटीय नौ परिवहन में लगे जहाजों द्वारा यात्रा की।

परिवहन जाल तथा भारतीय अर्थव्यवस्था

परिवहन जाल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण भूमिका राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को एकीकृत करने में रही है। हमारे देश में स्थानीय स्तरों पर उत्पादन की विशिष्टताएं हैं। इन विशिष्ट उत्पादों के लिए स्थानीय बाजार हैं। उत्पादन तथा साथ ही साथ उपभोग की ये विशिष्टताएं हमारे परिधानों, भोजन और कलाकृतियों में झलकती हैं। परिवहन जाल ने इन स्थानीय बाजारों को राष्ट्रीय बाजार के साथ जोड़ने का बहुत बड़ा काम किया है। इस एकीकरण का विस्तार और आगे अंतर्राष्ट्रीय बाजार के साथ भी हुआ है।

वायु परिवहन

वायु परिवहन, परिवहन का सबसे तेज और सबसे महंगा साधन है। विशाल आकार और नियोजित आर्थिक विकास के कारण परिवहन का यह साधन भारत के लिए बहुत महत्वपूर्ण बन गया है। बड़े-बड़े औद्योगिक और व्यापारिक केंद्र एक-दूसरे से काफी दूरी पर स्थित हैं। अत: इनमें आपस में संपर्क बनाने के लिए तेज परिवहन की आवश्यकता है। यही नहीं अन्य देशों से भारत को जोड़ने के लिए वायु परिवहन अत्यावश्यक है। भारतीय वायु सीमा में सुरक्षित सक्षम वायु यातायात तथा वैमानिक संचार सेवाएं प्रदान करने का दायित्व भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण का है। प्राधिकरण 11 अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तनों, 112 घरेलू विमानपत्तनों तथा 28 सैनिक विमान टर्मिनलों का प्रबंध कर रहा है।

भारत में वायु सेवाएं दो प्रकार की हैं–अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू। एयर इंडिया, यात्रियों और माल के परिवहन के लिए अंतर्राष्ट्रीय वायु सेवाएं प्रदान करती है। इसके द्वारा चार प्रमुख विमानपत्तनों दिल्ली, मुंबई, चेन्नई और कोलकाता से 35 देशों के लिए विमान सेवाएं उपलब्ध हैं। सन् 2000-01 में एयर इंडिया के द्वारा 38.3 लाख यात्रियों ने यात्रा की। प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय वायु मार्ग ये हैं : दिल्ली-रोम-फ्रैंकफुर्ट, दिल्ली-मास्को, कोलकाता-टोकियो, कोलकाता-पर्थ, मुंबई-लंदन-न्यूयार्क।

एयर इंडिया के अलावा अनेक विदेशी विमान कंपनियां भारत के दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और चेन्नई विमानपत्तनों के द्वारा विमान सेवा प्रदान करती हैं।

इंडियन एयरलाइंस, अलायंस एयर (इंडियन एयरलाइंस की सहायक), निजी नियमित वायु सेवाएं और एयर टैक्सियां घरेलू वायु सेवाएं प्रदान करती हैं। इंडियन एयरलाइंस दक्षिण पूर्व-एशिया और पश्चिम एशिया के पड़ौसी देशों को भी वायु सेवाएं प्रदान करती है। इस समय दो निजी कंपनियां नियमित घरेलू वायु सेवा प्रदान करती हैं। 38 निजी कंपनियों के पास अनियमिता एयर-टैक्सी चलाने के परमिट हैं। निजी वायु सेवा कंपनियों की घरेलू वायु यातायात में इस समय 52.8 प्रतिशत की भागीदारी है। उदारीकरण की नीति के लागू होने के बाद वायु सेवा के क्षेत्र में निजी कंपनियों की भागीदारी बहुत तेजी से बढ़ी है।

तेल और गैस पाइपलाइन

तरल पदार्थों और गैस की लंबी दूरियों के परिवहन के लिए पाइपलाइन परिवहन का सबसे सुविधाजनक साधन है। परंपरा से जल आपूर्ति के लिए प्रयुक्त पाइपलाइनें अब पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पादों तथा गैस का लंबी दूरियों तक परिवहन करती हैं। ठोस पदार्थों का भी गाद (स्लरी) के रूप में पाइपलाइनों द्वारा परिवहन होता है।

परिवहन के अन्य साधनों की तुलना में पाइपलाइन परिवहन को ये सुविधाएं प्राप्त हैं–(1) पाइपलाइन ऊबड़-खाबड़ भूमि और पानी के नीचे भी बिछाई जा सकती है, (2) इनके संचालन और रखरखाव की लागत कम होती हैं और (3) ऊर्जा, क्षम और पर्यावरण हितैषी है।

आयल इंडिया लिमिटेड कंपनी ने असम के नहरकटिया तेल क्षेत्र से बिहार की बरौनी तेल परिष्करणशाला तल नूनमती होकर सबसे पहली 1152 कि.मी. लंबी पाइपलाइन सन् 1962-68 में बनाई थी। पैट्रोलियम उत्पादों के परिवहन के लिए 1966 में हल्दिया-बरौनी-कानपुर पाइपलाइन बिछाई गई थी। इसके बाद हल्दिया-मौरीग्राम-राजबंध पाइपलाइन बनी।

गुजरात प्रदेश में पाइपलाइनों का एक विस्तृत जाल बिछाया गया है। अंकलेश्वर तेल क्षेत्र को कोयली परिष्करणशाला से जोड़ने वाली पहली पाइपलाइन सन् 1965 में बनाई गई। इसके बाद कलोल-साबरमती कच्चे तेल की पाइपलाइन, नवगांव-कलोल-कोयली पाइपलाइन और मुंबई हाई-कोयली पाइपलाइन बिछाई गईं। पैट्रोलियम उत्पादों के परिवहन के लिए अहमदाबाद को पाइपलाइन द्वारा कोयली से जोड़ा गया है। खंभात और धुवरन के मध्य अंकलेश्वर और उत्तरण तथा अंकलेश्वर और वडोदरा के मध्य गैस पाइपलाइनें भी बिछाई गई हैं। भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड देश में 4200 कि.मी. पाइपलाइनों का संचालन करता है तथा बिजली घरों को गैस की आपूर्ति करता है। 1750 कि. मी. लम्बी हजीरा-विजयपुर-जगदीशपुर गैस पाइपलाइन काफी पहले बन चुकी हैं। अब इस पाइपलाइन का बीजापुर से उत्तर प्रदेश में दादरी तक विस्तार कर दिया गया है। भारतीय गैस प्राधिकरण लिमिटेड आजकल रसोई गैस (एल.पी.जी.) के परिवहन के लिए 1246 कि.मी. लंबी पाइपलाइन गुजरात में कांडला-जामनगर से लेकर दिल्ली से होते हुए उत्तर प्रदेश में लोनी तक बना रहा है।

मथुरा तेल परिष्करणशाला को कच्चा तेल पाइपलाइन द्वारा मुंबई हाई से भेजा जाता है। यह पाइपलाइन कच्छ की खाड़ी पर स्थित सलाया और मथुरा के बीच बनाई गई है। पैट्रोलियम पदार्थों के परिवहन के लिए मथुरा से दिल्ली और अंबाला होकर जालंधर तक एक पाइपलाइन बनाई गई है। इसके अतिरिक्त मुंबई और पुणे के बीच भी पैट्रोलियम उत्पादों के परिवहन के लिए पाइपलाइन बनाई गई है।

राष्ट्रीय विद्युत् ग्रिड

यह एक सच्चाई है कि बिजली का न तो भंडारण किया जा सकता है और न ही इसका अन्य देशों से आयात किया जा सकता है (पड़ौसी देशों को छोड़कर)। ऊर्जा की राष्ट्रीय मांग को पूरा करने के लिए घरेलू उत्पादन क्षमता का विकास बहुत जरूरी है। दुर्भाग्य से देश में बिजली की कमी एक नियमित लक्षण है। उत्पादन क्षमता में कमी तथा राष्ट्रीय ग्रिड का न होना ही इसके मुख्य कारण हैं। राष्ट्रीय ग्रिड के बन जाने पर आपातकाल और अत्याधिक मांग के समय बिजली को अधिशेष क्षेत्रों से कमी वाले क्षेत्रों में अंतरण किया जा सकता है।

इस समस्या के एक सीमा तक समाधान के लिए केंद्र सरकार ने 1980 में सिद्धांत रूप से अपने स्वामित्व और नियंत्रण में राष्ट्रीय पावर (विद्युत्) ग्रिड की स्थापना को मंजूरी दी थी। भारतीय पावर ग्रिड निगम को चरणबद्ध तरीके से राष्ट्रीय पावर ग्रिड के विकास का दायित्व सौंपा गया है। प्रारंभ में प्रादेशिक पावर ग्रिड को आपस में जोड़ने की योजना बनाई गई है। देश में पांच प्रादेशिक बिजली ग्रिड हैं–उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी, पूर्वी और उत्तर पूर्वी। इन प्रादेशिक ग्रिडों का संचालन वास्तविक एकीकृत रूप में न होकर अंतः संबंधित राज्य बिजली बोर्ड तंत्र के रूप में हो रहा है। प्रत्येक राज्य बिजली बोर्ड को यह भय लगा रहता है कि उसकी बिजली का कहीं दूसरे क्षेत्र में उपयोग होने लगेगा। इस भय को दूर करने के लिए कुछ तकनीकी उपाय किए गए हैं। हाई-वोल्टेज डाइरेक्ट करैंट अंतः संपर्क इनमें से एक उपाय है। इस तरह के संपर्क एक राज्य के बिजली बोर्ड की बिजली को दूसरे राज्य में नहीं जाने देते। अब तक पूर्वी और उत्तरपूर्वी प्रदेशों को ए.सी. लाइनों द्वारा आपस में जोड़ दिया गया है। अब अन्य प्रदेशों को आपस में जोड़ना शेष है। इनमें से कुछ अंशतः आपस में जुड़ भी गए हैं।

संचार तंत्र

संचार के साधनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–(1) व्यक्तिगत संचार तंत्र; तथा (2) जनसंचार तंत्र। व्यक्तिगत संचार डाक सेवा द्वारा तथा कंप्यूटर समर्थित दूरसंचार द्वारा संपन्न होता है। यह आधुनिक संचार प्रौद्योगिकी भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के तीव्र विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इस तंत्र के द्वारा इंटरनेट और 'ई मेल' के माध्यम से सारे संसार से अपेक्षाकृत कम लागत पर सूचनाएं (ज्ञान) प्राप्त की जा सकती हैं। कंप्यूटर द्वारा दस्तावेज़ों को तीव्रगति और सस्ते में भेजा और प्राप्त किया जा सकता है।

जनसंचार के लिए मुद्रण माध्यम (अखबार और पत्र-पत्रिकाएं) तथा इलैक्ट्रोनिक माध्यम, (रेडियो और दूरदर्शन) का उपयोग किया जाता है। भारत जैसे राष्ट्र में जनसंचार तंत्र सूचना और शिक्षा प्रदान करके लोगों में राष्ट्रीय नीति और कार्यक्रमों के विषय में जागरूकता पैदा करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सूचना और प्रसारण मंत्रालय देश में सूचना और प्रसारण के विकास तथा नियमन के लिए जिम्मेदार है। प्रसार भारती, भारत का स्वायत्त प्रसारण निगम है। इसका गठन 1997 में किया गया था। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन इसके दो घटक हैं। यह निगम अब देश में संचार के इलैक्ट्रोनिक माध्यम का नियंत्रण करता है।

आकाशवाणी : देश में रेडियो जनसंचार का सशक्त माध्यम है। भारत में सन् 1927 मे रेडियो प्रसारण का प्रारंभ हुआ। इसके लिए मुंबई और कोलकाता में दो निजी ट्रांसमीटर लगाए गए थे। 1936 में इसे आल इंडिया रेडियो (ए.आई.आर.) नाम दिया गया। इसे आकाशवाणी भी कहते हैं। स्वतंत्रता के समय छः रेडियो स्टेशन थे। इस समय आकाशवाणी के 208 स्टेशन तथा 327 प्रसारण केंद्र हैं। ये स्टेशन और प्रसारण केंद्र देश की 99 प्रतिशत जनसंख्या तथा देश के 90 प्रतिशत क्षेत्र को प्रसारण सेवाएं प्रदान करते हैं। निजी क्षेत्र में 100 एफ.एम. रेडियो स्टेशन स्थापित किए गए हैं। आकाशवाणी सूचना, शिक्षा और मनोरंजन से संबंधित विविध प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित

करता है। सूचना का प्रसारण विभिन्न रूपों में होता है। आकाशवाणी की समाचार सेवा भारतीय और विदेशी श्रोताओं के लिए समाचार और समीक्षाओं का प्रसारण करती है। विशिष्ट अवसरों जैसे संसद या राज्य विधान सभाओं के अधिवेशनों पर विशेष समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते हैं। आकाशवाणी की विदेश सेवा प्रभाग अपने विविध प्रकार के कार्यक्रमों के द्वारा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर भारतीय दृष्टिकोण को विशेष महत्व देकर प्रसारित करती है।

आकाशवाणी ने व्यावसायिक कार्यक्रम भी प्रारंभ किए हैं। विविध भारती के चैनलों से व्यावसायिक प्रसारण किए जाते हैं। विविध भारती के अलावा अन्य चैनल और स्थानीय स्टेशन भी व्यावसायिक सेवाएं प्रदान करते हैं। ग्रामीण श्रोताओं के लिए नियमित रूप से अनेक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इसी प्रकार स्वास्थ्य और परिवार कल्याण कार्यक्रम भी प्रतिदिन प्रसारित किए जाते हैं। संगीत और नाटक प्रसारण सूची के प्रमुख घटक हैं। आकाशवाणी ने 1988 मे राष्ट्रीय चैनल शुरू किया था। यह रात्रिकालीन सेवा है। इसका प्रसारण शाम को शुरू होकर अगले दिन प्रात:काल तक चलता है।

दूरदर्शन : दूरदर्शन भारत का राष्ट्रीय टेलीविजन है। यह संसार के सबसे बड़े क्षेत्रीय प्रसारण संगठनों में से एक है। इसने गांवों और नगरों दोनों में ही लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को बदल दिया है। दूरदर्शन-1 (डी.डी.-1) 1042 स्थल ट्रांसमीटरों के द्वारा देश की 87 प्रतिशत जनसंख्या तक पहुंचता है। यही नहीं 65 अतिरिक्त ट्रांसमीटर भी हैं, जो अन्य चैनलों को स्थानीय सहायता प्रदान करते हैं।

दूरदर्शन का पहला कार्यक्रम 15 सितम्बर 1959 को प्रसारित किया गया था। यह कार्यक्रम केवल दिल्ली में ही देखा जा सकता था। इसकी नियमित सेवा समाचार बुलेटिनों सहित 1965 में शुरू की गई। 1975 तक दूरदर्शन केवल कुछ नगरों तक ही सीमित था। भारत में उपग्रह प्रौद्योगिकी से संबंधित पहला प्रयोग 1975-76 में सैटेलाइट इंस्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्स्पेरिमेंट (साइट) कार्यक्रम के अंतर्गत किया गया था। देश में राष्ट्रीय कार्यक्रम और रंगीन टेलीविजन की शुरुआत 1992 में ही हो सकी। इसके बाद दूरदर्शन की सुविधाओं में बड़ी तेजी से विस्तार हुआ।

दूरदर्शन की तीन स्तरों वाली बुनियादी कार्यक्रम प्रसारण सेवाएं हैं : राष्ट्रीय, प्रादेशिक और स्थानीय। राष्ट्रीय कार्यक्रम में उन घटनाओं और मुद्दों पर जोर दिया जाता है, जिसमें समूचे राष्ट्र की दिलचस्पी होती है। प्रादेशिक कार्यक्रम राज्यों की राजधानियों में बनाए जाते हैं तथा राज्य में स्थापित ट्रांसमीटरों से प्रसारित किए जाते हैं। स्थानीय कार्यक्रम किसी स्थान विशेष से संबंधित होते हैं और इनमें स्थानीय विषयों और स्थानीय लोगों को शामिल किया जाता है।

दूरदर्शन से प्रसारित कार्यक्रमों में समाचार, सामयिक विषय, विज्ञान, सांस्कृतिक पत्रिकाएं, वृत्तचित्र, संगीत, नृत्य नाटक, सीरियल और फीचर फिल्में शामिल होती हैं। सरकारी नीतियों, विकास कार्यक्रमों और सामयिक विषयों का नियमित प्रसारण किया जाता है। दूरदर्शन अपने दर्शकों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक कार्यक्रम सीधे प्रसारण द्वारा दिखाता है। यह स्कूलों और विश्वविद्यालयों के लिए भी शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित करता है। विविध प्रकार के कार्यक्रमों के प्रसारण के लिए विभिन्न चैनलों का उपयोग किया जाता है।

उपग्रह : कृत्रिम उपग्रहों के विकास और उपयोग के द्वारा संसार और भारत के संचार तंत्र में एक क्रांति आ गई है। रूस ने पहला कृत्रिम उपग्रह छोड़ा था। उपग्रहों, प्रेक्षपण यानों और संबंधित स्थलीय प्रणालियों का विकास देश के अंतरिक्ष कार्यक्रमों का अंग है।

आकृति और उद्देश्यों के आधार पर भारत की उपग्रह प्रणालियों को दो वर्गों में रखा जा सकता है–भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली (इंसैट) तथा भारतीय सुदूर संवेदन उपग्रह प्रणाली (आई.आर.एस.)। इंसैट, दूरसंचार, मौसम विज्ञान संबंधी प्रेक्षण और अन्य विविध आंकड़ों तथा कार्यक्रमों के लिए एक बहु-उद्देश्यी उपग्रह प्रणाली है। इंसैट प्रणाली की स्थापना सन् 1983 में की गई थी। इस समय इसरो द्वारा निर्मित उपग्रह इस प्रणाली को सेवा प्रदान करते हैं। उपग्रहों के द्वारा व्यक्तिगत और जनसंचार दोनों में ही क्रांति आ गई है।

भारतीय सुदूर संवेदन (आई.आर.एस.) उपग्रह प्रणाली का प्रारंभ मार्च 1988 में हुआ जब पहला आई.आर.एस.-1ए अंतरिक्ष में छोड़ा गया। तब से लेकर अब तक दो शृंखलाओं के उपग्रह अंतरिक्ष में स्थापित किए जा चुके हैं। भारत ने

अपने प्रक्षेपण यानों का निर्माण कर लिया है। ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पी.एस.एल.वी.) ऐसा ही प्रक्षेपण यान है। ये उपग्रह अनेक स्पैक्ट्रल बैंडों में आंकड़े एकत्र करते हैं तथा विभिन्न उपयोगों के लिए स्थलीय स्टेशनों को उनका प्रसारण करते हैं। भारतीय सुदूर संवेदन एजेंसी हैदराबाद में स्थित है। यह आंकड़ों के अर्जन और इनके प्रसंस्करण की सुविधाएं प्रदान करती है। प्रकृति के संसाधनों के प्रबंधन में ये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

कंप्यूटर : कंप्यूटरों का अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। हमारे समाज में आज इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। मूलतः कंप्यूटर चार प्रकार के कार्य करते हैं :

(अ) ये निवेश के रूप में आंकड़ों को स्वीकार करते हैं।

(ब) यह आंकड़ों का भंडारण करता है, स्मृति में संरक्षित रखता है और आवश्यकता पड़ने पर प्रत्यावर्तन करता है।

(स) यह अभीष्ट सूचना के लिए निर्देशानुसार आंकड़ों का प्रसंस्करण करता है।

(द) यह सूचना को निर्गम के रूप में संचारित करता है।

अपनी विशिष्ट क्षमताओं के कारण कंप्यूटर का विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक उपयोग किया जाता है। कंप्यूटर की विशिष्ट क्षमताएं हैं : गति, शुद्धता, संगति, भंडारण क्षमता और स्वचालन। शिक्षा और ज्ञान के प्रसार में कंप्यूटर की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   - (i) परिवहन भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए क्यों महत्वपूर्ण है ?
   - (ii) भारत में पविहन के प्रमुख साधन कौन-से हैं ?
   - (iii) सड़क परिवहन के क्या लाभ हैं ?
   - (iv) सड़क परिवहन की क्या असुविधाएं हैं ?
   - (v) स्वर्ण चतुष्कोण (चतुर्भुज) किसे कहते हैं ?
   - (vi) चार राष्ट्रीय महामार्गों के नाम उनके टर्मिनल सहित बताइए।
   - (vii) भारतीय रेल के विभिन्न गेजों के नाम बताइए।
   - (viii) दो राष्ट्रीय जलमार्गों के नाम बताइए।
   - (ix) पाइपलाइन परिवहन के दो लाभ बताइए।
2. भारत में सड़कों के घनत्व में प्रादेशिक भिन्नता का वर्णन कीजिए।
3. भारत में रेलों के वितरण प्रतिरूप का विवरण लिखिए।
4. जनसंचार में रेडियो और टेलीविजन के महत्व की विवेचना कीजिए।
5. आधुनिक जीवन में उपग्रहों और कंप्यूटर के उपयोगों का वर्णन कीजिए।
6. अंतर स्पष्ट कीजिए :
   - (i) परिवहन और संचार
   - (ii) राष्ट्रीय महामार्ग और राज्य महामार्ग
   - (iii) व्यक्तिगत संचार और जन संचार।

परियोजना कार्य

7. (i) भारत में भारतीय रेलों द्वारा यात्रियों को दी जाने वाली सुविधाओं का पता लगाइए।
   (ii) आधुनिक युग में कंप्यूटर के विभिन्न उपयोगों का पता लगाइए।

14 अध्याय

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार

विकसित देशों से तुलना करने पर भारत के व्यापार की मात्रा थोड़ी दिखाई पड़ती है, फिर भी भारत एक महत्वपूर्ण व्यापारिक राष्ट्र है। भारत के आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार ने निर्णायक भूमिका निभाई है। इसीलिए समय के साथ इसमें व्यापक परिवर्तन हुए हैं। 1950-51 में भारत का कुल विदेशी व्यापार 12.14 अरब रुपयों का था। तब से इसमें निरंतर वृद्धि हो रही है। 2000-01 के दौरान भारत के विदेशी व्यापार का कुल मूल्य 4292.46 अरब रुपयों का हो गया था। 1950-51 और 2000-01 के अवधि में यह 353 गुनी वृद्धि थी। निर्यात की तुलना में (336 गुनी) आयात में वृद्धि अधिक तेज (380 गुनी) थी। आयात का मूल्य 6.08 अरब रुपयों से बढ़कर 2308.73 अरब रुपयों का हो गया तथा निर्यात 6.06 अरब रुपयों से बढ़कर 2035.71 अरब रुपयों का ही हुआ। परिणामस्वरूप आयात और निर्यात के मूल्य में अंतर बहुत बढ़ गया है। यह अंतर व्यापार के असंतुलन के रूप में दिखाई पड़ता है। व्यापार में असंतुलन के दो प्रमुख कारण हैं–पहला है विश्वस्तर पर मूल्यों में वृद्धि तथा दूसरा है विश्व बाजार में भारतीय रुपए का अवमूल्यन। उत्पादन में धीमी प्रगति, घरेलू उपभोग में बढ़ोत्तरी तथा विश्व बाजार में कड़ी प्रतिस्पर्धा, निर्यात में धीमी वृद्धि के अन्य कारण हैं। इसी के परिणामस्वरूप विश्व के कुल निर्यात व्यापार में भारत की भागीदारी 2.1 प्रतिशत (1950) से घटकर 1960 में 1.2 प्रतिशत तथा 2000-01 में मात्र 0.6 प्रतिशत ही रह गई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में आयात तथा निर्यात में बहुत अधिक अंतर नहीं था, लेकिन द्वितीय योजना से यह अंतर बढ़ना शुरू हो गया था। 2000-01 की अवधि में आयात का कुल मूल्य 2308.73 अरब रुपए तथा निर्यात का मूल्य 2035.71 अरब रुपए था। इस प्रकार व्यापार का घाटा 273.02 अरब रुपयों का हो गया।

व्यापार का संघटन

भारत के विदेशी व्यापार के संघटन में बहुत विविधता पाई जाती है। 7,500 से भी अधिक वस्तुओं का निर्यात तथा लगभग 6,000 वस्तुओं का आयात किया जाता है। निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में बहुत विविधता पाई जाती है। कृषि क्षेत्र से लेकर औद्योगिक क्षेत्रों की वस्तुओं के साथ-साथ हथकरघों और कुटीर उद्योगों में निर्मित वस्तुएं और हस्तशिल्प की वस्तुएं निर्यात की जाती हैं। योजना निर्यात जिसमें परामर्श भी शामिल है, भवन-निर्माण के ठेकों आदि में हाल ही में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। कंप्यूटर साफ्टवेयर के निर्यात में भी असाधारण वृद्धि दर्ज की गई है। लेकिन आयात में भी बहुत अधिक वृद्धि हुई है। सबसे अधिक आयात पैट्रोलियम, पैट्रोलियम उत्पादों, उर्वरकों, बहुमूल्य और अल्प मूल्य रत्नों और पूंजीगत वस्तुओं का होता है। इस प्रकार आयात और निर्यात की परंपरागत वस्तुओं के स्थान पर अनेक नई वस्तुओं का आयात और निर्यात होने लगा है।

आयात का संघटन

आयात एक ओर तो घरेलू उपभोग की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। दूसरी ओर निर्यात की वस्तुओं में विनिवेश उत्पादन और निवेश के लिए भी किया जाता है। भारत के आयात व्यापार में वस्तुओं के दो समूहों की प्रधानता है। ये समूह हैं–(क) ईंधन और (ख) कच्चा माल और खनिज। देश के कुल आयात में इन दो समूहों की 63 प्रतिशत की भागीदारी है। सन् 2000-01 में देश के कुल आयात में पैट्रोलियम और इसके उत्पादों की एक तिहाई (31.0 प्रतिशत)की भागीदारी थी। इसमें कोयले का हिस्सा केवल 2.2 प्रतिशत था। दूसरे समूह में मोती, बहुमूल्य और अल्प मूल्य रत्न (9.6 प्रतिशत), सोना और चांदी (9.3 प्रतिशत) प्रमुख वस्तुएं थीं। विविध प्रकार के रसायनों का भी भारी मात्रा (6.7 प्रतिशत) में आयात किया जाता है। इसी समूह की अन्य वस्तुएं हैं लोहा और इस्पात, अलौह धातुएं तथा व्यावसायिक उपकरण और प्रकाशिक वस्तुएं।

समूह के रूप में पूंजीगत वस्तुओं का तीसरा स्थान है। यह कुल आयात का 11.0 प्रतिशत भाग है। इनमें गैर

विद्युत् मशीनें, मशीनी उपकरणों सहित यंत्र और उपस्कर बहुत महत्वपूर्ण हैं। आयात के कुल मूल्य में इनकी 5.4 प्रतिशत की भागीदारी है। अन्य पूंजीगत सामान में परिवहन उपकरण, विद्युत् मशीनें और उपकरण तथा योजना संबंधित वस्तुओं की महत्ता है। कुल आयात मूल्य में खाद्य वस्तुओं की भागीदारी केवल 3.7 प्रतिशत की है। इनमें खाद्य तेल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस समूह में इनकी दो तिहाई की भागीदारी है। काजू और दालें अन्य महत्वपूर्ण आयातित वस्तुएं हैं–उर्वरक और अखबारी कागज, गत्ता, लुग्दी और रद्दी कागज, इस समूह की अन्य वस्तुएं हैं जिनकी भागीदारी क्रमश: 1.5 और 0.9 प्रतिशत की है। अंतिम समूह विविध वस्तुओं का समूह है। इनमें चिकित्सीय और औषध भेषजीय उत्पाद, कपास, रंगाई, चमड़ा रंगाई और रंगाई की सामग्री, कच्चा रबड़, ऊन रेशा, कृत्रिम रेशे और कृत्रिम राल आदि वस्तुएं उल्लेखनीय हैं।

आयात संघटन में परिवर्तन : विगत चार दशकों की अवधि में भारत के आयात व्यापार के संघटन में काफी परिवर्तन हुए हैं। सबसे बड़ा सकारात्मक परिवर्तन पैट्रोलियम और पैट्रोलियम उत्पादों के समूह में हुआ है। इस समूह ने 1960-61 व 2000-01 की अवधि में 23.8 प्रतिशत अंक अर्जित किए हैं। 1960-61 में कुल आयात मूल्य में इन वस्तुओं की भागीदारी मात्र 6.2 प्रतिशत की थी। लेकिन यह बढ़कर 1973-74 में 19.2 प्रतिशत तथा 2000-01 में 31.0 प्रतिशत पर पहुंच गई। यह तीव्र वृद्धि कीमतों में बढ़ोत्तरी के कारण हुई न कि मात्रा में वृद्धि के कारण। सन् 1974 में तेल उत्पादक और निर्यातक देशों ने कच्चे पैट्रोलियम के मूल्य में कई गुनी वृद्धि के परिणामस्वरूप पैट्रोलियम का बिल बहुत भारी हो गया। रसायनों और उर्वरकों के आयात में भी काफी वृद्धि हुई। रसायनों और रसायनों के यौगिकों की 1960-61 में भागीदारी 3.5 प्रतिशत की थी जो 2000-01 में बढ़कर 6.7 प्रतिशत हो गई। उर्वरकों का आयात भी इस अवधि में 0.9 प्रतिशत से बढ़कर 1.5 प्रतिशत हो गया। आयात में मशीनों, विद्युत् और गैर विद्युत् उपकरणों, यंत्रों और मशीनी उपकरणों की भागीदारी में भी वृद्धि हुई। इसके विपरीत खाद्य और संबंधित उत्पादों जैसे अनाजों, दालों, दुग्ध उत्पादों, फलों और सब्जियों का आयात तेजी से घट गया। इसी अवधि में, निर्मित वस्तुओं का महत्व भी बहुत कम हो गया। जूट वस्त्र, सूती वस्त्र, चमड़े का सामान, लोहे तथा इस्पात ऐसे ही उत्पाद हैं। कच्चे माल के समूह की वस्तुओं के आयात में उल्लेखनीय कमी दिखाई पड़ी। इस समूह में कच्चा रबड़, लकड़ी, इमारती लकड़ी, वस्त्रों के लिए धागे और लौह खनिज के आयात में सबसे अधिक कमी हुई है। इन वस्तुओं के घरेलू उत्पादन में वृद्धि ही इसका मुख्य कारण है। आयात व्यापार के संघटन में होने वाले परिवर्तनों को सारणी 14.1 में प्रदर्शित किया गया है।

_सारणी 14.1_ — भारत : आयात की वस्तुओं के संघटन में परिवर्तन 1960-61 और 2000-01

वस्तु समूह	*1960-61 %*	*2000-01 %*	*प्रतिशत अंक परिवर्तन*
खाद्य तथा संबद्ध उत्पाद	*19.1*	*3.7*	*-15.4*
अनाज	16.1	बहुत कम	-16.1
दालें	अनुपलब्ध	0.2	—
काजू	अनुपलब्ध	0.4	+0.4
खाद्य तेल	0.4	2.6	+2.2
ईंधन		33.2	++
कोयला		2.2	—
पैट्रोलियम, तेल स्नेहक	6.2	31.0	+24.8
उर्वरक	*0.9*	*1.5*	*+0.6*
गत्ता, अखबारी कागज	*1.7*	*0.9*	*-0.8*
पूंजीगत वस्तुएं	*31.8*	*11.0*	*-20.8*
बिजली मशीनी	18.1	5.4	-12.7
इलैक्ट्रोनिक सामान को छोड़कर			
बिजली संबंधी मशीनरी	5.1	1.0	-4.1
परिवहन उपकरण	6.4	1.9	-4.5
परियोजना वस्तुएं	अनुपलब्ध	1.5	—
अन्य	*अनुपलब्ध*	*29.8*	—
रसायन	3.5	6.7	+3.2
मोती, बहुमूल्य, अल्प			
मूल्य रत्न	बहुत कम	9.6	+9.6
लोहा और इस्पात	10.9	1.4	-9.5
अलौह धातुएं	4.2	1.1	-3.1
व्यावसायिक उपकरण		1.7	—
प्रकाशीय वस्तुएं			
सोना और चांदी	*अनुपलब्ध*	*9.3*	—
अवर्गीकृत वस्तुएं	*अनुपलब्ध*	*19.9*	—
योग	100.0	100.0	—

निर्यात का संघटन

भारत के निर्यात व्यापार में विनिर्मित वस्तुओं और कृषीय वस्तुओं की प्रधानता है। सन् 2000-01 में निर्यात के कुल मूल्य में निर्मित वस्तुओं की भागीदारी 78.0 प्रतिशत की थी, जबकि इसी वर्ष कृषीय उत्पादों का हिस्सा केवल 13.5 प्रतिशत का था। इस प्रकार इन दो समूहों की भारत के कुल निर्यात मूल्य में भागीदारी कुल मिलाकर 91.5 प्रतिशत थी। यहां यह याद कर लेना भी उचित है कि इन दो समूहों की आयात में भी भागीदारी बहुत कम नहीं। विनिर्मित वस्तुओं में रत्न और आभूषण और सिले-सिलाए वस्त्रों का असाधारण महत्व है। निर्यात के कुल मूल्य में इनकी भागीदारी क्रमशः 16.6 तथा 12.5 प्रतिशत की थी। सूती धागे और वस्त्र, मशीनें, औषध और दवाइयां, सूक्ष्म रसायन और उपकरण, धातुओं के उत्पाद, चमड़ा और चमड़े का सामान, परिवहन उपकरण, बिजली का सामान, हस्तशिल्प, प्राथमिक और अर्धनिर्मित लोहा और इस्पात, निर्यात की अन्य प्रमुख विनिर्मित वस्तुएं हैं। रंगों, अर्धनिर्मित उत्पादों, कोलतार रसायनों और चमड़े के जूतों का भी निर्यात में महत्वपूर्ण स्थान है।

कृषीय उत्पादों में, सामुद्रिक उत्पाद, मछलियों और उनके उत्पाद निर्यात की प्रमुख वस्तुएं हैं। भारत के निर्यात के कुल मूल्य में इनकी भागीदारी 3.1 प्रतिशत की है। महत्व की दृष्टि से इनके बाद, अनाज, चाय, खली, काजू, मसाले, फल और सब्जियां, कहवा और तंबाकू का स्थान है। थोड़ी-सी मात्रा में कपास का भी निर्यात किया जाता है। पैट्रोलियम शोधन की क्षमता में वृद्धि के परिणामस्वरूप पैट्रोलियम उत्पादों का निर्यात भी काफी बढ़ा है। यह कुल निर्यात मूल्य का 4.2 प्रतिशत है। प्रारंभ में भारत खनिज अयस्क और कच्चे माल के निर्यातक के रूप में जाना जाता था। आजकल अयस्कों और खनिजों का कुल निर्यात में केवल 2.6 प्रतिशत का योगदान है।

निर्यात संघटन में परिवर्तन : राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की संरचना के साथ-साथ, भारतीय निर्यात व्यापार में भी बहुत बड़ा परिवर्तन और विविधता आई है। 1960-61 में पेय और तंबाकू सहित कृषि उत्पाद और खनिज अयस्कों के कुल निर्यात मूल्य में आधे से अधिक (52.7) प्रतिशत का योगदान था, लेकिन सन् 2000-01 में उनका हिस्सा घटकर 16.1 प्रतिशत रह गया है। सभी कृषीय वस्तुओं के निर्यात में भारी कटौती हुई है। चाय निर्यात की प्रधान वस्तु हुआ करती थी। 1960-61 के कुल निर्यात मूल्य में इसकी 19.6 प्रतिशत की भागीदारी थी। लेकिन अब इसका महत्व घट गया है। चाय का निर्यात दो लाख टन पर स्थिर बना हुआ है। 1960-61 में यह 1.992 लाख टन तथा 2000-01 में 2.023 लाख टन था। कुल निर्यात मूल्य में इसका हिस्सा भी घटकर केवल एक प्रतिशत रह गया है। इसी अवधि में कपास का निर्यात भी 32.2 हजार टन से घटकर 30.2 हजार टन रह गया है। यद्यपि अन्य कृषीय वस्तुओं के निर्यात में वृद्धि हुई है, लेकिन निर्मित वस्तुओं की तुलना में यह वृद्धि धीमी है। परिणामस्वरूप सभी का महत्व बहुत अधिक घट गया है। केवल सामुद्रिक उत्पादों के निर्यात की मात्रा और प्रतिशत भागीदारी में वृद्धि हुई है।

इसी प्रकार खनिज क्षेत्र ने भी अपना निर्यात बाजार खो दिया है। उदाहरण के लिए, लौह-अयस्क की मात्रा 32 लाख टन से बढ़कर 2.02 करोड़ टन हो जाने के बावजूद इसकी हिस्सेदारी 6.2 प्रतिशत से घटकर 0.8 प्रतिशत रह गई है।

इसके विपरीत विनिर्मित वस्तुओं का निर्यात जो 1960-61 में 44.1 प्रतिशत था, बढ़कर 2000-01 में 78.0 प्रतिशत हो गया है। इस समूह में भी, जूट उत्पादों, चमड़े के जूतों सहित चमड़े और उसके अन्य उत्पादों, चमड़े के वस्त्रों और प्राथमिक और अर्धनिर्मित लोहे और इस्पात की भी निर्यात में भागीदारी तेजी से घटी है। 1960-61 में जूट उत्पादों की कुल निर्यात में 20.0 प्रतिशत से अधिक की भागीदारी थी, लेकिन अब यह केवल 0.46 प्रतिशत रह गई है। इसका मुख्य कारण आयातक देशों द्वारा जूट के स्थान पर अन्य पदार्थों का उपयोग ही है। पैकिंग के कामों में जूट के बजाय कृत्रिम धागों से निर्मित वस्त्रों का उपयोग किया जाता है। प्राथमिक और अर्धनिर्मित लोहे और इस्पात का प्रतिशतांक भी 13.4 घट गया है। यह 15.4 प्रतिशत से घटकर केवल 2.0 प्रतिशत रह गया है। प्राथमिक लोहे और इस्पात के बजाय इनके उत्पादों का निर्यात किया जा रहा है। इसी प्रकार सूती वस्त्रों के स्थान पर निर्यात में सिले-सिलाए वस्त्र और हस्तशिल्प को वरीयता दी जा रही है। इसीलिए इस अवधि में इनका महत्व बढ़ गया है।

इंजीनियरी का सामान, विशेष रूप से मशीनें और उपकरण, परिवहन उपकरण, इलैक्ट्रोनिक सामान, रसायन और दवाइयां, औषधि आदि का निर्यात में नगण्य स्थान था,

सारणी 14.2 — भारत : निर्यात की वस्तुओं के संघटन में परिवर्तन 1960-61 और 2000-01

वस्तु	भागीदारी (प्रतिशत में)		प्रतिशत अंक परिवर्तन
	1960-61	2000-01	
कृषि	**31.3**	**13.5**	**-17.8**
चाय	19.9	1.0	-18.9
काफी	1.1	1.0	-0.1
अनाज	अनुपलब्ध	1.7	—
तंबाकू	2.5	0.3	-2.2
मसाले	2.6	0.8	-1.8
काजू	3.0	0.9	-2.1
खली	2.3	1.0	-1.3
फल-सब्जियां	0.9	0.6	-0.3
सामुद्रिक उत्पाद	0.7	3.1	+2.6
कपास	3.4	0.1	-3.3
चीनी	0.5	0.3	-0.2
अयस्क और खनिज	**44.1**	**78.0**	**+33.9**
चमड़े का सामान	4.0	3.8	-0.2
रत्न और आभूषण	बहुत कम	16.6	+16.6
रसायन आदि	1.1	11.1	+10.0
धातु उत्पादन	अनुपलब्ध	3.7	—
मशीनरी और परिवहन उपकरण	0.6	6.1	+5.5
लोहा और इस्पात	**15.4**	**2.0**	**-13.4**
इलेक्ट्रॉनिक वस्तुएं	अनुपलब्ध	2.4	+2.4
सूती वस्त्र	9.0	7.9	-1.1
सिले-सिलाए वस्त्र	बहुत कम	12.5	+12.5
जूट वस्त्र	20.0	0.5	-19.5
हस्तशिल्प	बहुत कम	3.1	+3.1
पैट्रोलियम और इसके उत्पाद	अनुपलब्ध	4.2	—
अवर्गीकृत वस्तुएं	अनुपलब्ध	1.7	—
योग	**100.0**	**100.0**	—

जो अब निर्यात की प्रधान वस्तुएं बन गई हैं। इस प्रकार निर्यात का देश के वर्तमान संघटन विगत चार दशकों में हुए औद्योगिक विकास का प्रतिबिंब है। अब कच्चे माल के स्थान पर उनसे निर्मित वस्तुओं का निर्यात हो रहा है। निर्यात संघटन में हुए परिवर्तन सारणी 14.2 से स्पष्ट हैं। हस्तशिल्प की वस्तुएं, रत्न और आभूषण अब निर्यात की ख्याति प्राप्त वस्तुएं बन गई हैं। यद्यपि भारत कच्चे पैट्रोलियम का आयातक है, लेकिन यह पैट्रोलियम उत्पादों का भारी मात्रा में निर्यात भी करता है। इसका कारण यह है कि भारत ने 18 तेल परिस्करणशालाएं लगाकर पैट्रोलियम शोधन की क्षमता बढ़ा ली है। इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का निर्यात में नया प्रवेश है। कंप्यूटर साफ्टवेयर के निर्यात में भी वृद्धि हुई है।

व्यापार संतुलन के घाटे को कम करने के लिए सरकार ने निर्यात को बढ़ाने के लिए अनेक कदम उठाए हैं। सौदों

की लागत घटाने के लिए कार्य प्रणालियों और औपचारिकताओं का विकेंद्रीकरण और सरलीकरण किया गया है। बहुपक्षीय और द्विपक्षीय पहल, प्रधान क्षेत्रों की पहचान और विशिष्ट सुविधा प्राप्त प्रदेशों के द्वारा निर्यात को प्रोत्साहित करने की योजनाएं बनाई गई हैं।

व्यापार की दिशा

संसार के लगभग सभी देशों से भारत के व्यापारिक संबंध हैं। पारंपरिक व्यापार-सहयोगियों के अलावा भी भारत ने संसार के अधिकतर विकासशील देशों के साथ द्विपक्षीय व्यापार का विस्तार किया है। फिर भी पश्चिमी यूरोप, आंग्ल-अमेरिका, और पैट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन (ओपेक) अब भी देश के प्रमुख व्यापारिक भागीदार हैं, लेकिन इनकी हिस्सेदारी घट रही है। इसके विपरीत आयात और निर्यात दोनों में विकासशील देशों की भागीदारी में वृद्धि हुई है। सन् 2000-01 की अवधि में भारत के कुल निर्यात में एशिया और ओशेनिया की भागीदारी 37.48 प्रतिशत की थी। इनके बाद पश्चिम यूरोप (25.35 प्रतिशत) तथा अमेरीका (24.73 प्रतिशत) का स्थान था। भारत ने सबसे अधिक (27.50 प्रतिशत) आयात एशिया और ओशेनिया से किया। इनके बाद पश्चिम यूरोप (27.09 प्रतिशत) और आग्ंल अमेरीका (7.88 प्रतिशत) का स्थान था। राष्ट्रों के संदर्भ में, संयुक्त राज्य अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। महत्व के क्रम में अन्य देश ये हैं– यूनाइटेड किंगडम, बेल्जियम, जर्मनी, स्विटजरलैंड और जापान।

आंग्ल अमेरिका : संयुक्त राज्य अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है। 2000-01 की अवधि में भारत का संयुक्त राज्य अमेरिका को 424.04 अरब रुपए मूल्य का निर्यात (कुल निर्यात का 20.9 प्रतिशत) तथा संयुक्त राज्य अमेरिका से 128.12 अरब रुपए मूल्य (कुल आयात का 6.0 प्रतिशत) का आयात किया गया था। 1990 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका को हुए निर्यात में काफी वृद्धि हुई, लेकिन आयात में क्रमशः कमी आई। भारत मुख्यत: रत्न और आभूषण, सिले-सिलाए वस्त्र, सूती धागा और वस्त्र, धातु निर्मित वस्तुएं, हस्तशिल्प आदि का निर्यात करता है तथा इलेक्ट्रॉनिक सामान, मशीनों, व्यावसायिक उपकरणों, रसायनों और बहुमूल्य रत्नों का सं. रा.अमेरिका से आयात करता है। कनाडा के साथ भारत का व्यापार साधारण है।

पश्चिम यूरोप : पश्चिम यूरोप भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक प्रदेश है। सन् 2000-01 की अवधि में कुल आयात 27 प्रतिशत तथा कुल निर्यात में 25 प्रतिशत की भागीदारी थी। भारत के निर्यात का मुख्य भाग इस प्रदेश के इन आठों देशों–जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम, बेल्जियम, इटली, फ्रांस, नीदरलैंड, स्पेन और स्विटजरलैंड को जाता है। अत: इस प्रदेश के अन्य देशों को निर्यात बढ़ाने की बहुत संभावनाएं हैं। इन देशों को निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं ये हैं–रत्न और आभूषण, सिले सिलाए वस्त्र, चमड़ा और चमड़े का सामान, मशीनें, दवाइयां, औषधि, हस्तशिल्प, प्लास्टिक उत्पाद, कालीन आदि। इस प्रदेश से आयात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं हैं–बहुमूल्य और अल्प मूल्य रत्न, चांदी, सोना, मशीनें, उपकरण, औषधीय उत्पाद आदि।

पूर्वी यूरोप : मध्य और पूर्वी यूरोप के साथ भारत के पारंपरिक तौर पर निकट के तथा बहु-आयामी संबंध रहे हैं। लेकिन विगत दशक में इस प्रदेश के अधिकतर देशों में राजनीतिक उथल-पुथल हुई है। इसी कारण भारत और मध्य तथा पूर्वी यूरोप के बीच द्विपक्षीय व्यापारिक संबंधों में कमी आई है। सन् 2000-01 में भारत के कुल निर्यात का केवल 2.4 प्रतिशत तथा कुल आयात का 1.6 प्रतिशत की भागीदारी इस प्रदेश के साथ रही। पूर्वी यूरोप के देशों के साथ कुल व्यापार की दृष्टि से पोलैंड आज भी प्रथम स्थान पर बना हुआ है तथा इसके बाद चैक गणतंत्र और हंगरी का स्थान है।

स्वतंत्र राज्यों के परिसंघ और बाल्टिक देश : पूर्व सोवियत संघ के विघटन के बाद ही स्वतंत्र राज्य परिसंघ के देश अस्तित्व में आए। भारत का सन् 1990-91 में पूर्व सोवियत संघ के साथ 78.03 अरब रुपयों का व्यापार हुआ था, जबकि इस प्रदेश के देशों के साथ भारत का कुल व्यापार 80.61 अरब रुपयों का हुआ था। इस प्रदेश में रूस ही भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है। सन् 2000-01 में कुल निर्यात में रूस की भागीदारी 2.0 प्रतिशत की तथा कुल आयात में भागीदारी 1.0 प्रतिशत की थी।

सारणी 14.3 — भारत : विदेशी व्यापार के प्रमुख भागीदार 1960-61 और 2000-01

प्रदेश/देश	कुल आयात का प्रतिशत		कुल निर्यात का प्रतिशत	
	1960-61	2000-01	1960-61	2000-01
आर्थिक सहयोग और विकास संगठन	**78.0**	**39.9**	**66.1**	**52.7**
बेल्जियम	1.4	5.7	0.8	3.3
फ्रांस	1.9	1.3	1.4	2.3
जर्मनी	11.2	3.5	3.1	4.3
नीदरलैंड	0.9	0.9	1.3	2.0
यूनाइटेड किंगडम	19.4	6.3	26.9	5.2
आंग्ल अमेरिका	**31.0**	**6.8**	**18.7**	**22.4**
कनाडा	1.8	0.8	2.7	1.5
संयुक्त राज्य अमेरिका	29.2	6.0	16.0	20.9
आस्ट्रेलिया	1.6	2.1	3.5	0.9
जापान	4.6	5.1	4.1	10.9
ईरान	2.6	0.2	0.8	0.5
ईराक	2.0	0.2	0.5	0.2
कुवैत	0.0	0.2	0.5	0.4
सऊदी अरब	1.3	1.2	0.5	1.8
पूर्वी यूरोप	**3.4**	**1.6**	**7.0**	**2.4**
कम विकसित देश	**11.8**	**17.5**	**14.8**	**26.7**
अफ्रीका	5.6	1.7	6.3	3.32
एशिया	5.7	14.4	6.9	21.4
लैटिन अमेरिका और कैरेबियन देश	0.4	1.5	1.6	2.1
अन्य	**2.2**	**36.2**	**8.0**	**7.3**

पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका : पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के लगभग सभी देशों के साथ व्यापारिक समझौते हैं। इन देशों के साथ भारत का व्यापार बड़ी तेजी से बढ़ा है, लेकिन व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में नहीं रहा है। इसका मुख्य कारण इस प्रदेश से भारी मात्रा में कच्चे तेल का आयात है। यह प्रदेश कुछ महत्वपूर्ण कृषीय औद्योगिक निवेश जैसे–उर्वरक, शैल फास्फेट, कपास आदि की भी आपूर्ति करता है। इस प्रदेश के लिए भारत से निर्यात को बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। इस प्रदेश को भारत से मुख्यतः प्रसंस्कृत खाद्य, दवाइयां और औषधि तथा रत्न और आभूषण निर्यात किए जा सकते हैं।

पूर्वी एशिया : दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ तथा पूर्वी एशियाई देशों के साथ भारत का व्यापार महत्वपूर्ण है। इनके साथ भारत के व्यापारिक समझौते हैं। जापान, द.पू. एशियाई देशों, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की भारत के कुल व्यापार में एक चौथाई की भागीदारी है। भारत से इस प्रदेश के देशों को निर्यात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं ये हैं– खली, रत्न और आभूषण, इलेक्ट्रॉनिक सामान, कपास और सूती वस्त्र, सिले-सिलाए वस्त्र, मशीनें और उपकरण, लोहा और इस्पात, दवाइयां तथा औषधि, मांस उत्पाद तथा सामुद्रिक उत्पाद। इस प्रदेश से आयात की जाने वाली प्रमुख वस्तुएं ये हैं–कोकिंग कोयला, मशीनें, बिजली की मशीनें, लकड़ी और लकड़ी के उत्पाद, अलौह धातुएं, ऊन, दालें आदि।

अफ्रीका : इस प्रदेश में भारत का व्यापार मुख्य रूप से द. अफ्रीका, नाइजीरिया, मारीशस, कोटे-डि-आइवोयर (आइवरी कोस्ट), तंजानिया, कीनिया , बैनिन, घाना, इथोपिया और

सेनेगल के साथ है। सन् 2000-01 में भारत के कुल भूमंडलीय व्यापार में इस प्रदेश की लगभग 4.1 प्रतिशत की भागीदारी थी। इस प्रदेश को मानव निर्मित सूती धागों और वस्त्रों, सिले-सिलाए वस्त्रों, दवाइयों तथा औषधियों, रसायनों, धातुओं के उत्पादों, परिवहन उपकरणों, लोहा और इस्पात, प्लास्टिक, पैट्रोलियम उत्पाद रसायनों आदि का निर्यात किया जाता है।

लैटिन अमेरिका : हाल के वर्षों में इस प्रदेश के साथ भारत के व्यापार में वृद्धि हुई है। 2000-01 में इस प्रदेश के साथ भारत के कुल निर्यात का 2.1 प्रतिशत व्यापार हुआ। भारत के कुल आयात में इस प्रदेश की भागीदारी 1.5 प्रतिशत की थी। इस प्रदेश को निर्यात की जाने वाली वस्तुएं ये हैं : विकसित वस्तुएं जैसे वस्त्र और परिधान, दवाइयां और औषधियां, इंजीनियरी का सामान, मोटर वाहन, डीजल इंजन, चमड़े का सामान आदि। भारत यहां से कच्चे खनिज, लोहा और इस्पात तथा इनके उत्पाद, अलौह धातुएं, वनस्पति तेल, लुगदी और रद्दी कागज, ऊन आदि का आयात करता है।

समुद्री पत्तन

पत्तन भारत के विदेशी व्यापार के केंद्र बिंदु के रूप में कार्य कर रहे हैं। एक ओर तो ये अपने पृष्ठ प्रदेश से विदेशों को भेजी जाने वाली वस्तुओं के संकलन केंद्र हैं तथा दूसरी ओर भारत आने वाली वस्तुओं को प्राप्त करके, देश के आंतरिक भागों में उनका वितरण करने वाले केंद्रों के रूप में भी कार्य करते हैं। पत्तन तट पर स्थित वह स्थान है, जहां गोदियां, जहाज घाट और लंगर डालने की सुविधाएं होती हैं। यहां समुद्री मार्गों से भारी मात्रा में माल आता है, जिसको पृष्ठ प्रदेश में वितरण किया जाता है। इसके विपरीत पृष्ठ प्रदेश का माल यहां आता है और विदेशों को भेजा जाता है। पोताश्रय और पत्तन में अंतर होता है। पोताश्रय समुद्र का आंशिक रूप से घिरा भाग होता है। यह जहाजों को सुरक्षित आश्रय प्रदान करता है। दंतुरित तट रेखाओं पर ही प्राकृतिक पोताश्रय होते हैं।

भारत में 12 प्रमुख पत्तन हैं, छ: पूर्वी तट पर तथा छ: पश्चिमी तट पर। इनके अलावा 184 अन्य पत्तन हैं। मुंबई, जवाहरलाल नेहरू (न्हावा-शेवा), कांडला, मौर्मुगाओ, नया मंगलौर तथा कोच्चि पश्चिमी तट पर, और कोलकाता/हल्दिया, पारादीप, विशाखापत्तनम, चेन्नई, इन्नोर और तूतीकोरन पूर्वी तट पर हैं (चित्र 14.1)। प्रमुख पत्तन केंद्र सरकार के नियंत्रण में हैं, जबकि अन्य पत्तन, जिन्हें छोटे और मध्यम दर्जे के पत्तन भी कहते हैं, संबंधित राज्य सरकारों के अधीन हैं।

व्यापार के द्वार : पत्तन

अंग्रेजी का पोर्ट (Port) शब्द लैटिन भाषा के पोर्टा (Porta) शब्द से बना है, जिसका अर्थ प्रवेश द्वार होता है। इसके द्वारा आयात और निर्यात का संचालन होता है। अत: पत्तन को प्रवेश द्वार कहते हैं। पत्तन कई प्रकार के होते हैं–समुद्री पत्तन, नदीय पत्तन, और शुष्क पत्तन। शुष्क पत्तन में वायुमार्गों द्वारा संपर्क बनाया जाता है।

भारतीय पत्तनों की क्षमता में वृद्धि हुई है। सन् 1951 में केवल दो करोड़ टन माल जहाजों पर लादा और उतारा गया, लेकिन अब क्षमता बढ़कर 30 करोड़ टन हो गई है। देश के प्रमुख पत्तनों पर प्रतिवर्ष 15,000 मालवाही पोतों से सामान उतारा-चढ़ाया जाता है। सन् 2000-01 में पत्तनों पर 28.1 करोड़ टन माल उतारा-चढ़ाया गया।

भारत में छोटे पत्तनों का वितरण

भारत में छोटे पत्तनों का वितरण इस प्रकार है–गुजरात (40), महाराष्ट्र (53), गोवा (5), दमण और दीव (2), कर्नाटक (9), केरल (13), लक्षद्वीप (10), तमिलनाडु (14), पांडिचेरी (1), आंध्र प्रदेश (12), उड़ीसा (2) तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (23)।

मुंबई : एक प्राकृतिक पोताश्रय और देश का सबसे बड़ा पत्तन है। इस पत्तन ने देश के औद्योगिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस पत्तन द्वारा मुख्य रूप से पैट्रोलियम उत्पादों और शुष्क माल का व्यापार किया जाता है। मुंबई पत्तन पर दबाव कम करने के लिए यहां से कुछ दूरी पर न्हावा-शेवा में जवाहरलाल नेहरू नाम का पंजीकृत पत्तन का विकास किया गया है।

कांडला : कच्छ के रण के पश्चिमी छोर पर स्थित है। स्वतंत्रता के बाद कराची बंदरगाह के पाकिस्तान में चले जाने पर मुंबई पर दबाव बढ़ गया था। इस दबाव को कम करने के लिए सबसे पहले कांडला पत्तन का विकास किया गया था। देश के उत्तर पश्चिमी भाग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कांडला को प्रमुख पत्तन के रूप में विकसित किया गया है। इस पत्तन से कच्चे पैट्रोलियम उत्पादों, उर्वरकों, खाद्य पदार्थों, कपास, सीमेंट, चीनी, खाद्य तेलों और स्क्रैप (धात्विक कतरन) का व्यापार होता है।
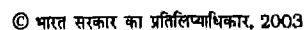
चित्र 14.1 भारत : प्रमुख पत्तन

मौर्मुगाओ : गोवा में स्थित एक प्राकृतिक पोताश्रय है। यहां से मुख्यत: लौह-अयस्क, मछलियों के उत्पादों, नारियल और मसालों का निर्यात किया जाता है। इस पत्तन पर आयात की जाने वाली मुख्य वस्तुएं हैं--उर्वरक रसायन, खाद्य पदार्थ आदि।

नया मंगलौर : कर्नाटक राज्य में स्थित पत्तन है। यह कुद्रेमुख के लौह-अयस्क और लौह-सांद्र का निर्यात करता है। यहां से उर्वरकों, पैट्रोलियम उत्पादों, खाद्य तेलों, काफी, चाय, लकड़ी, लुगदी, सूत, ग्रेनाइट, सीरा आदि का भी आयात-निर्यात होता है।

कोचीन : केरल में स्थित है। यहां से पैट्रोलियम और उसके उत्पादों, उर्वरकों और कच्चे माल का भी आयात-निर्यात होता है। कोचीन, केरल, दक्षिण कर्नाटक और दक्षिण-पश्चिमी तमिलनाडु की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

कोलकाता : हुगली नदी पर स्थित एक नदीय पत्तन है। यह बंगाल की खाड़ी से 128 कि.मी. दूर अंदर की ओर स्थित है। मुंबई की भांति इस पत्तन का विकास भी अंग्रेजों ने किया था। इसे अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक काल में भारत की राजधानी होने का लाभ भी मिला था। यह एक ज्वारीय पत्तन है। नदी में जल का न्यूनतम स्तर बनाए रखने तथा नौगम्यता सुनिश्चित करने के लिए निरंतर तलमार्जन करना पड़ता है। हुगली नदी को जल की आपूर्ति गंगा पर बने फरक्का बराज से की जाती है। कोलकाता एक विशाल और संपन्न पृष्ठभूमि को सुविधाएं प्रदान करता है। कोलकाता पत्तन पर भीड़-भाड़ कम करने के लिए कोलकाता से 105 कि.मी. दूरी पर हल्दिया नामक पत्तन बनाया गया है। ये दोनों पत्तन मिलकर विविध प्रकार की वस्तुओं का आयात-निर्यात करते हैं। इनमें इंजीनियरी का सामान, मशीनें, पैट्रोलियम और इसके उत्पाद, रसायन, चाय, चीनी, लोहा, इस्पात, जूट और जूट उत्पाद, कपास और सूती धागे प्रमुख हैं।

पारादीप : उड़ीसा के तट पर स्थित यह पत्तन मुख्य रूप से लौह-अयस्क और कोयले का व्यापार करता है।

विशाखापत्तनम : आंध्र प्रदेश के तट पर स्थित है। यह सबसे अधिक गहरा स्थल रुद्ध और सुरक्षित पत्तन है। यहां से लौह-अयस्क, कच्चा तेल, पैट्रोलियम उत्पादों और उर्वरकों का व्यापार होता है।

चेन्नई : सबसे पुराने पत्तनों में से एक है। यह पूर्वी तट पर स्थित एक कृत्रिम पत्तन है। इस पत्तन से पैट्रोलियम और इसके उत्पादों, उर्वरकों, लौह-अयस्क और सामान्य वस्तुओं का व्यापार होता है। तट के निकट जल की कम गहराई के कारण इस पत्तन पर बड़े-बड़े जहाज नहीं आ सकते हैं।

इन्नोर (एण्णर) : एक नया पत्तन है। इसका निर्माण चेन्नई से 25 कि.मी. दूर उत्तर की ओर किया गया है। चेन्नई पत्तन पर दबाव कम करने के लिए इस पत्तन को बनाया गया है। इन्नोर पत्तन कंपनी लिमिटेड इस पत्तन का प्रबंध करती है।

तूतीकोरिन : सुदूर दक्षिण में स्थित है। तमिलनाडु में यहां नया पत्तन है। यहां से कोयला, नमक, खाद्यान्न, खाद्य तेल, चीनी, रसायन और पैट्रोलियम उत्पादों सहित विविध प्रकार की वस्तुओं का व्यापार किया जाता है।

विमान पत्तन

वायु परिवहन के केंद्रों को विमान पत्तन कहा जाता है। वायु परिवहन किराया अपेक्षाकृत अधिक होता है। अत: इसका मुख्य रूप से यात्री परिवहन के लिए ही उपयोग किया जाता है। केवल हल्की और मूल्यवान वस्तुएं ही मालवाहक वायुयानों द्वारा भेजी जाती हैं। भारतीय निर्यातकों की सहायता करने के लिए तथा उनके निर्यात को और अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मक बनाने के लिए भारत सरकार ने व्यावसायिक माल के लिए "मुक्त आकाश की नीति" शुरू करने का निर्णय लिया है। इस नीति के अनुसार कोई भी विदेशी वायुयान कंपनी या निर्यातकों का संघ माल ले जाने के लिए देश में मालवाहक जहाज ला सकते हैं।

देश में 11 अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन (चित्र 14.2) तथा 112 घरेलू विमान पत्तन हैं। भारतीय विमान पत्तन प्राधिकरण इन विमान पत्तनों का प्रबंध करता है। इन विमान पत्तनों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है– अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन, प्रमुख राष्ट्रीय विमान पत्तन, मध्यम विमान पत्तन और लघु विमान पत्तन। अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन मुंबई (सांताक्रूज और सहारा विमान पत्तन), दिल्ली (इंदिरा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन), कोलकाता (दमदम), चेन्नई (मीनेबक्कम्) बंगलौर, हैदराबाद, अहमदाबाद, पणजी, अमृतसर, गुवाहाटी और कोच्चि हैं। ये पत्तन अंतर्राष्ट्रीय सेवाओं के साथ-साथ घरेलू सेवाएं भी प्रदान करते हैं।

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र से भारत का जल प्रदेश, उपयुक्त आधार-रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में हैं।
इस मानचित्र में अरुणाचल प्रदेश, असम और मेघालय में दर्शाई गई अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।
इस मानचित्र में अंतर्राज्य सीमा उत्तरांचल और उत्तर प्रदेश के मध्य, छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश के मध्य और बिहार और झारखंड के मध्य अभी सरकार के द्वारा सत्यापित नहीं हुई हैं।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

चित्र 14.2 भारत : वायुमार्ग

प्रमुख राष्ट्रीय विमान पत्तन अगरतला, औरंगाबाद, वाराणसी, भुवनेश्वर, भुज, इंफाल, जयपुर, खजुराहो, लखनऊ, मंगलौर, नागपुर, पन्नागढ़, पटना, रांची, तिरुवनन्तपुरम्, जयपुर, उदयपुर, तिरुचिरापल्ली, मदुरै आदि में स्थित हैं। अधिकतर विमान पत्तन मध्यम या लघु वर्ग के हैं, जहां से नियमित वायु सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित का संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   - (i) भारत के विदेशी व्यापार की विशेषताएं बताइए।
   - (ii) भारत में अन्य देशों से आयात की जाने वाली चार वस्तुओं के नाम बताइए।
   - (iii) भारत से निर्यात की जाने वाली चार प्रमुख वस्तुओं के नाम बताइए।
   - (iv) अफ्रीका के पांच देशों के नाम बताइए, जिनसे भारत के व्यापारिक संबंध हैं।
   - (v) पूर्वी तट पर स्थित भारत के पत्तनों के नाम बताइए।
   - (vi) भारत के एक राज्य का नाम बताइए जहां दो प्रमुख समुद्री पत्तन हैं।
2. अंतर बताइए :
   - (i) आयात और निर्यात।
   - (ii) पत्तन और पोताश्रय।
   - (iii) विदेशी और घरेलू व्यापार।
3. भारत के व्यापार के प्रमुख भागीदारों तथा उनके साथ होने वाले व्यापार की प्रमुख वस्तुओं का वर्णन कीजिए।
4. विगत चालीस वर्षों में भारत के आयात और निर्यात व्यापार के संघटन का वर्णन कीजिए।

परियोजना कार्य

5. भारत के रेखा मानचित्र पर निम्नलिखित की स्थिति दिखाइए :
   - (i) प्रमुख राष्ट्रीय पत्तन।
   - (ii) अंतर्राष्ट्रीय विमान पत्तन।
6. उचित उदाहरण देते हुए पृष्ठ प्रदेश और शुष्क पत्तनों की व्याख्या कीजिए।

15 अध्याय

गरीबी और पर्यावरण ह्रास

विगत पांच दशकों में भारत ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत प्रगति की है। इसकी अर्थव्यवस्था में विस्तार तथा विविधीकरण हुआ है। समाज में एकजुटता आई है तथा राज्यतंत्र प्रजातंत्र में बदल गया है। इसे अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ा है। इनमें से अनेक का सफलतापूर्वक समाधान कर लिया गया है। लेकिन अन्य बहुत-सी समस्याएं अभी भी तंग कर रही हैं। इस अध्याय में हम उन दो चुनौतियों की विवेचना करेंगे, जिनसे भारत को जूझना पड़ रहा है। ये समस्याएं हैं—गरीबी और पर्यावरण का ह्रास।

गरीबी

विगत साठ वर्षों से भी अधिक समय से गरीबी उपशमन को राष्ट्रीय कार्यक्रम में प्राथमिकता दी जाती रही है। अब से बहुत पहले 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया था। इस समिति ने घोषणा की थी कि नियोजन का सामान्य उद्देश्य "आम लोगों का एक समुचित जीवन स्तर सुनिश्चित करना होना चाहिए, दूसरे शब्दों में लोगों की भयंकर गरीबी से मुक्ति।" गरीबी को कम करने की महत्ता और अन्य आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सभी पंचवर्षीय योजनाओं में, मुख्य रूप से पांचवी योजना के बाद से विशेष बल दिया जाता रहा है। इस संदर्भ में सरकार ने दो नीतियां अपनाई हैं : एक आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना तथा दूसरे गरीबी उपशमन के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही।

गरीबी के अनुपात की प्रवृत्ति

गरीबी पर अनेक आकलन उपलब्ध हैं। योजना आयोग राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर गरीबी के विस्तार का आकलन करता रहा है। इसके लिए उसने गरीबों की संख्या और अनुपात के आकलन के लिए बनाए गए विशेषज्ञ दल लाकड़ावाला समिति के प्रतिवेदन में अपनाई गई विधियों का उपयोग किया था। उपभोग व्यय के प्राप्त आंकड़ों पर आकलनों को लागू किया गया था। उपभोक्ता के अध्ययन के लिए किए गए विस्तृत नमूना सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर आकलनों को लागू किया गया। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ऐसे सर्वेक्षण लगभग हर पांच साल बाद करता है। इस आधार पर राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर गरीबी के तुलनात्मक आकलन 1973-74 से लेकर 1999-2000 की अवधि के उपलब्ध हैं।

गरीबी का अनुपात (कुल जनसंख्या में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत) 1999-2000 की कुल जनसंख्या में 26 प्रतिशत आंका गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह 27.1 प्रतिशत तथा नगरीय क्षेत्रों में 23.6 प्रतिशत है। गरीबी का विस्तार निरंतर घट रहा है। 1973-74 में यह 54.9 प्रतिशत था, जो घटकर 1993-94 में 36.0 प्रतिशत और 1999-2000 में 26.1 प्रतिशत रह गया है (सारणी 15.1)। यद्यपि गरीबी का अनुपात तो घटता गया लेकिन गरीबों की संख्या दो दशक (1973-93) लंबी अवधि में लगभग 32 करोड़ ही बनी रही। इसका कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि थी।

ग्रामीण गरीबी निरंतर घट रही है। 1980 के दशक में ह्रास की दर तेज थी। अस्सी के दशक में गरीबी के घटने के दो कारण थे : कृषि का स्थिर विकास तथा सरकार के गरीबी उपशमन के कार्यक्रमों का प्रभाव । यह देखा गया है कि रोजगार के अवसर बढ़ाने के रूप में की गई सरकारी कार्यवाही का गरीबी के उपशसन पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ता है। 1980 दशक के दौरान गैर-कृषि रोजगार में भी वृद्धि हुई। इसने गरीबी को घटाने में मदद की। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि राष्ट्रीय स्तर पर नगरीय गरीबी सदैव ग्रामीण गरीबी के अनुपात से कम रही है।

विचाराधीन अवधि में सभी राज्यों में गरीबी का अनुपात घटा है। लेकिन, केरल, जम्मू और कश्मीर, गोवा, लक्षद्वीप, दिल्ली, आंध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम

सारणी 15.1 — भारत : गरीबी के अनुपात की प्रवृत्ति, 1973-2000 (संख्या दस लाख व्यक्तियों में)

वर्ष	संपूर्ण भारत की संख्या	संपूर्ण भारत का %	ग्रामीण संख्या	ग्रामीण %	नगरीय संख्या	नगरीय %
1973-74	321.3	54.9	261.3	56.4	60.0	49.0
1977-78	328.9	51.3	264.3	53.1	64.6	45.2
1983	322.9	44.5	252.0	45.7	70.9	40.8
1993-94	320.3	36.0	244.0	37.3	76.3	32.4
1999-2000	260.3	26.1	193.2	27.1	67.0	23.6
2007*	220.1	19.3	170.5	21.1	49.6	15.1

* *अनुमानित*

स्रोत : *आर्थिक सर्वेक्षण, 2002-03*

बंगाल तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में उल्लेखनीय कमी हुई है। जबकि कुछ राज्यों जैसे–पंजाब और हरियाणा ने कृषि के अत्यधिक विकास के मार्ग पर चलकर गरीबी घटाने में सफलता प्राप्त की है। इसके विपरीत अन्य राज्यों ने अन्य विशिष्ट क्षेत्रों के विकास द्वारा सफलता पाई है। केरल ने गरीबी उपशमन के लिए मानव संसाधन विकास पर अधिक ध्यान दिया है। पश्चिम बंगाल ने भूमि सुधार उपायों और पंचायत सशक्तिकरण को लागू किया है। आंध्र प्रदेश ने खाद्यान्नों के सार्वजनिक वितरण के रूप में प्रत्यक्ष सार्वजनिक हस्तक्षेप का सहारा लिया है।

गरीबी के अनुपात में प्रादेशिक विषमता

राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी का आकलन राज्यानुसार गरीबी के स्तरों के भारित औसत के रूप में किया जाता है। गरीबी के अनुपात का आकलन राज्य विशेष की गरीबी की रेखा द्वारा किया जाता है। उपभोग व्यय के आंकड़ों का संकलन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा तथ्यात्मक है। व्यय के आधार पर अनुमानित गरीबों के वितरण को भी आकलन के समय ध्यान में रखा जाता है। राज्यों के अनुसार गरीबी के अनुपात को सारणी 15.2 में प्रदर्शित किया गया है।

देश में गरीबी के विस्तार में बहुत अंतर है। सबसे कम जम्मू और कश्मीर में केवल 3.48 प्रतिशत है तथा उड़ीसा में सबसे अधिक 47.15 प्रतिशत है। यद्यपि गरीबी का अनुपात विगत तीन दशकों में काफी घट गया है, लेकिन गरीबी के पूर्णतया उन्मूलन में काफी समय लगेगा। बिहार और उड़ीसा में 40 प्रतिशत से भी अधिक लोग गरीबी की रेखा से नीचे रहते हैं (चित्र 4.3)। अन्य दस राज्यों में यह 30 और 40 के मध्य है। मध्यवर्ती, उत्तर-मध्यवर्ती, तथा पूर्वी भारत के सभी राज्य इसी वर्ग में आते हैं। इनमें से प्रमुख राज्य हैं : मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, बिहार तथा झारखंड। इसके विपरीत दक्षिण के राज्यों में गरीबी का अनुपात 20 से 30 के मध्य है। पश्चिमी और उत्तरी राज्यों में गरीबी का अनुपात कम और बहुत कम है।

राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब जनसंख्या का अनुपात नगरीय क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। लेकिन राज्य स्तर पर मिला जुला रूप दिखाई पड़ता है। आंध्र प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों और गरीबी में अंतर 15.58 अंकों का है। 16 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में गरीबी का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों में अधिक है। ये राज्य देश के दक्षिणी, मध्यवर्ती और पश्चिमी भागों में फैले हैं। दक्षिण में तमिलनाडु से लेकर उत्तर में हरियाणा और दिल्ली तक यह एक अविच्छिन्न पट्टी है। दिल्ली जैसे केंद्रशासित प्रदेश में भी ग्रामीण और नगरीय गरीबी के अनुपात में काफी अंतर है (7.02 प्रतिशत अंक)। इसका कारण यह हो सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों के विपरीत, नगरीय क्षेत्रों में गरीबी उपशमन के कार्यक्रम नहीं चलाए गए। ग्रामीण-नगरीय प्रवास ने भी इस अंतराल को बढ़ा दिया है। कस्बों और नगरों के आस-पास बसी मलिन बस्तियों में रहने वाले अधिकतर लोग गरीबों की श्रेणी में आते हैं। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में खाद्यान्नों की सार्वजनिक वितरण प्रणाली नगरीय क्षेत्रों में अधिक बेहतर है।

गरीबी और भूख

दो वक्त भर पेट भोजन पाने वाले लोगों के अनुपात से गरीबी के विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 1981 में 81 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को दोनों वक्त भरपेट भोजन मिलता था। 1993 तक यह प्रतिशत बढ़कर 93 प्रतिशत हो

सारणी 15.2 — भारत : राज्यानुसार गरीबी का अनुपात (1973-1974 और 1999-2000)

राज्य/केंद्र शासित प्रदेश	1973-74	1999-2000		
	योग	योग	ग्रामीण	नगरीय
आंध्र प्रदेश	48.96	15.77	11.05	26.63
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	55.56	20.99	20.55	22.21
अरुणाचल प्रदेश	51.93	33.47	40.04	7.47
असम	51.21	36.09	40.04	7.47
बिहार	61.91	42.6	44.3	32.91
चंडीगढ़	27.96	5.75	5.75	5.75
दादरा और नगर हवेली	46.55	17.14	17.57	13.52
दमण और दीव	अनुपलब्ध	4.44	1.35	7.52
दिल्ली	49.61	8.23	0.40	9.42
गोवा	44.26	4.40	1.35	7.52
गुजरात	48.15	14.07	13.17	15.59
हरियाणा	35.36	8.74	8.27	9.99
हिमाचल प्रदेश	26.39	7.63	7.94	4.63
जम्मू और कश्मीर	40.83	3.48	3.97	1.98
कर्नाटक	54.47	20.04	17.38	25.25
केरल	59.79	12.72	9.38	20.27
लक्षद्वीप	59.68	15.60	9.38	20.27
मध्य प्रदेश	61.78	37.43	37.06	38.44
महाराष्ट्र	53.24	25.02	23.72	26.81
मणिपुर	49.96	28.54	40.04	7.47
मेघालय	50.20	33.87	40.04	7.47
मिजोरम	50.32	19.47	40.04	7.47
नागालैंड	50.81	32.67	40.04	7.47
उड़ीसा	66.18	47.15	48.01	42.83
पांडिचेरी	53.82	21.67	20.55	22.11
पंजाब	28.15	6.16	6.35	5.75
राजस्थान	46.14	15.28	13.74	19.85
सिक्किम	50.86	36.55	40.04	7.47
तमिलनाडु	54.94	21.12	20.55	22.11
त्रिपुरा	51.00	34.44	40.04	7.47
उत्तर प्रदेश	57.07	31.15	31.22	30.89
पश्चिम बंगाल	63.43	27.02	31.85	14.86
संपूर्ण भारत	**54.88**	**26.10**	**27.09**	**23.62**

गया। दूसरे शब्दों में केवल सात प्रतिशत लोग ऐसे थे जिन्हें पर्याप्त भोजन नहीं मिलता था। इससे पता चलता है कि सुधार अवधि के बाद भूखे लोगों के प्रतिशत में कमी आई है। प्रारंभ में गरीबी की रेखा का निर्धारण मुख्यत: उस आय के आधार पर किया जाता था जिससे भोजन की न्यूनतम आवश्यकताएं पूंरी हो सकती थी। जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट है कि गरीबी के अनुपात और भूखे लोगों के प्रतिशत के मध्य कोई व्यापक अंतर नहीं होना चाहिए।

कभी-कभी खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति शुद्ध उपलब्धता को गरीबी में परिवर्तन के संकेतक के रूप में उपयोग किया जाता था, क्योंकि अधिक उपलब्धता से भोजन के मूल्यों में उलझन पैदा हो सकती थी। यहां पर बताना ठीक रहेगा कि खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में काफी गिरावट आई है। 1971 में यह प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 469 ग्राम थी, जो घटकर 2001 में केवल 417 ग्राम रह गई थी। सामान्य तथा आय के पैमाने पर निचले छोर के लोग अच्छी फसल होने तथा कीमतों के कम होने पर बेहतर भोजन कर पाते हैं। कभी-कभी खराब फसल के परिणामस्वरूप कीमतें असाधारण रूप से बढ़ जाती हैं और खाद्यान्नों की उपलब्धता घट जाती है। ऐसे समय में अधिक संख्या में लोगों को भरपेट भोजन जुटाना मुश्किल हो जाता है। अत: ऐसे लोगों को गरीबों में गिना जाता है। इस प्रकार गरीबी घटाने के लिए खाद्यान्नों का सार्वजनिक प्रबंधन महत्वपूर्ण है।

मानव गरीबी सूचकांक

यद्यपि लोगों की आय से गरीबी का अनुमान लगाया जा सकता है, लेकिन इससे गरीबी के विषय में पूरी सच्चाई का पता नहीं चलता। गरीबी का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसका मापन 'अभाव' के संदर्भ में होना चाहिए। आय के द्वारा गरीबी का पता नहीं चलता क्योंकि गरीबी जीवन के 'अभावों' में ही झलकती है। इस प्रकार गरीबी, सहनीय जीवन जीने के लिए विकल्पों और अवसरों का विरोध है। यही मानवीय गरीबी की संकल्पना है। इसका तात्पर्य है कि मानव विकास के लिए आवश्यक अवसरों और विकल्पों का निषेध हो जाता है, जिसके कारण वे दीर्घ, स्वस्थ और सर्जनात्मक जीवन नहीं जी पाते। उन्हें एक अच्छा जीवन स्तर, मान-मर्यादा, स्वतंत्रता, स्वाभिमान और दूसरों से आदर नहीं मिल पाता।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने अपनी 1997 की मानव विकास रिपोर्ट में मानव गरीबी सूचकांक प्रस्तुत किया है। रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि मानव गरीबी इतनी अधिक व्यापक है कि उसे मानव गरीबी सूचकांक समेत किसी भी मापक के द्वारा उसका आकलन नहीं किया जा सकता। लेकिन फिर भी संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने मानव जीवन में अभाव के तीन पक्षों की ओर ध्यान दिया है। जीवन के ये पक्ष हैं– दीर्घ जीविता, ज्ञान (शिक्षा) और एक अच्छा जीवन स्तर। इन्हीं के आधार पर मानव गरीबी सूचकांक बनाया गया है। इन पक्षों का प्रदर्शन इस प्रकार होता है– (1) 40 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले मरने की संभावना वाले लोगों का प्रतिशत, (2) निरक्षर प्रौढ़ों का प्रतिशत और (3) तीन चरों का औसत (क) सुरक्षित पेय जल सुविधा से वंचित लोगों का प्रतिशत, (ख) स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित लोगों का प्रतिशत और (ग) पांच वर्ष से कम आयु के सामान्य और अत्यधिक कम भार वाले बच्चों का प्रतिशत। मानव एक जैव सत्ता है जो स्वस्थ परिवेश में ही जीवित रह सकता है। केवल भूमि, जल, वायु, ऊर्जा और स्थान ही प्राकृतिक अवस्था में है। इन तीन चरों का सामान्य औसत निकाल कर ही मानव गरीबी सूचकांक बनाया जाता है।

इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा तैयार किया गया मानव गरीबी सूचकांक काफी ऊंचा अर्थात् दुनिया के 36.7 प्रतिशत लोग गरीब हैं। मानव गरीबी का मुख्य संकेतक अल्पावधि जीवन है। 40 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले मर जाना गंभीर अभाव का सूचक है। भारत में लगभग 20 प्रतिशत लोगों की इस आयु सीमा से पहले ही मर जाने की आशंका रहती है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों की तुलना में यह अनुपात चार गुना है। इस प्रकार प्रौढ़ साक्षरता दर भी बहुत ऊंची अर्थात् 48.8 प्रतिशत (1994) थी तथा 2001 में 34.6 प्रतिशत थी। सामाजिक सुविधाओं का भी अत्यधिक अभाव है। इस प्रकार भारत में मानव गरीबी उपशमन के लिए भी बहुत कुछ करना शेष है।

पर्यावरणीय ह्रास

विकास की प्रक्रिया में पर्यावरणीय गुणवत्ता के घटने से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग किया जाता है। जब तक उपयोग का पारितंत्रीय सिद्धांतों से

तालमेल बना रहता है, तब तक कोई हानि नहीं होती है। आधुनिक प्रौद्योगिकी से संपन्न मानव पारिस्थितिकी की कोई परवाह नहीं करता तथा अनेक पर्यावरणीय प्रदूषण पैदा करता चला जाता है। इससे स्त्री-पुरुषों, सभी के स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ता है।

प्रदूषण की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। "मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों से कुछ पदार्थ और ऊर्जा मुक्त होती है, जिससे प्राकृतिक पर्यावरण में कुछ परिवर्तन होते हैं, ये परिवर्तन प्राय: हानिकारक होते हैं।" प्रदूषण की पहचान के लिए प्राय: तीन कसौटियों का उपयोग किया जाता है। ये हैं : (i) मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ तथा मानवीय अपशिष्टों का निपटान, (ii) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से फेंके गए अपशिष्टों से उत्पन्न हानि, और (iii) परिस्थितियां जहां हानि का दुष्प्रभाव तीसरे पक्ष को सहना पड़ता है।

प्रदूषण कई प्रकार का होता है। प्रदूषण के प्रकारों का कारण प्रदूषक तथा वे अनेक और विविध माध्यम हैं जिसके द्वारा वे परिवाहित तथा विकीर्ण होते हैं। पारितंत्रों में विद्यमान प्राकृतिक संतुलन में ह्रास और प्रदूषण उत्पन्न करने वाली ऊर्जा या पदार्थ के किसी भी रूप को प्रदूषक कहा जाता है। ये गैस, तरल या ठोस रूप में हो सकते हैं। प्रदूषकों के परिवहन के माध्यम के आधार पर प्रदूषण को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता सकता है। ये हैं : (i) वायु प्रदूषण, (ii) जल प्रदूषण और (iii) भूमि प्रदूषण।

वायु-प्रदूषण

वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं– प्राकृतिक स्रोत जैसे– ज्वालामुखी विस्फोट, धूल, तूफान, अग्नि आदि तथा मानवकृत स्रोत जैसे– कारखाने, नगर-केंद्र, मोटर वाहन, वायुयान, उर्वरक, पीड़क जीवनाशी, ताप बिजली घर आदि। उद्योगों से अनेक प्रकार की विषैली गैसें, राख और धूल; ताप बिजली घरों से गंधक, नाइट्रोजन ऑक्साइड और कार्बन ऑक्साइड और मोटर वाहनों से मोनोक्साइड और सीसा वायुमंडल में छोड़े जाते हैं। यही नहीं ओजोन की परत को पतला करने वाला क्लोरो फ्लूरो कार्बन (सी एफ सी) भी वायुमंडल में छोड़ा जाता है। इनके अलावा अनेक औद्योगिक प्रक्रियाओं द्वारा हानिकारक गंध भी वायु में फैल जाती है। इसके लिए विशेष रूप से दोषी लुगदी और कागज, चमड़ा और रासायनिक उद्योग हैं।

संपूर्ण भारत के नगरों की वायु की गुणवत्ता घट गई है। इसके कारण हैं–प्रदूषण नियंत्रण का अभाव और सीसा युक्त ईंधन का उपयोग करने वाले मोटर वाहनों की संख्या में निरंतर वृद्धि। राष्ट्रीय पर्यावरणीय अभियांत्रिकी शोध संस्थान (एन ई ई आर आई) ने कुछ नगरों में वायुमंडलीय प्रदूषकों का पर्यवेक्षण करके संकेंद्रण की प्रवृत्तियों का वार्षिक औसत निकाला है। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि मुंबई, कोलकाता और चेन्नई में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के संकेंद्रण की प्रवृत्ति में स्थिरता आ रही है। इसके विपरीत दिल्ली में सल्फर डाइऑक्साइड का संकेंद्रण घट रहा है, लेकिन यह मुंबई और

सारणी 15.3 **— भारत : कुछ महानगरों में वाहनीय उत्सर्जन (प्रतिदिन अनुमानित भार टनों में)**

नगर	नि.क.प.	सल्फर डाइ ऑक्साइड	नाइट्रोजन के ऑक्साइड	हाइड्रो कार्बन	कार्बन मोनोक्साइड	योग
दिल्ली	8.58	7.47	105.38	207.98	542.51	872
मुंबई	4.66	3.36	59.02	90.17	391.6	549
बंगलौर	2.18	1.47	21.85	65.42	162.8	254
कोलकाता	2.71	3.04	45.58	36.57	156.87	245
अहमदाबाद	2.46	2.41	33.33	56.46	149.28	244
पुणे	1.99	1.07	13.5	61	135.2	213
चेन्नई	1.95	1.68	23.51	42.05	119.35	188
हैदराबाद	1.62	1.3	14.03	46.94	105.14	169
जयपुर	0.98	1.04	12.74	17.49	42.73	75
कानपुर	0.88	0.9	11.14	18.53	40.35	72
लखनऊ	0.95	0.79	8.07	18.75	41.02	70
नागपुर	0.46	0.34	4.24	13.6	29.16	48

संकेत : नि.क.प. : निलंबित कणिकीय पदार्थ

कोलकाता में बढ़ रहा है सभी नगरों में निलंबित कणिकीय पदार्थों का संकेंद्रण कुछ हद तक बढ़ गया है।

सीसा युक्त ईंधन का उपयोग करने वाले मोटर वाहनों से वायुमंडल में लगभग 95% सीसा-प्रदूषण होता है। विगत तीन दशकों में मोटर वाहनों की संख्या 32 गुनी बढ़ गई है। 1997-98 में देश में 5.3 लाख बसें, 25.3 लाख ट्रक, लगभग 2.83 करोड़ दुपहिया वाहन, 13.4 लाख आटोरिक्शा, तथा लगभग 50 लाख कारें, जीप और टैक्सियां थीं। महानगरों की वायु में यातायात से निकले उत्सर्जन के आंकड़े सारणी 15.3 में दिए गए हैं।

वायु प्रदूषण के प्रभाव : वायु प्रदूषण मौसम और जलवायु में मामूली परिवर्तन करता है और मानव स्वास्थ्य और पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं पर प्रभाव डालता है। क्लोफ्लूरोकार्बन ओजोन की परत को समाप्त कर देता है, इसके परिणामस्वरूप सूर्य की पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर पहुंच जाती हैं और इससे वायुमंडल में तापमान में वृद्धि हो जाती है। वायुमंडल में कार्बन-डाई- ऑक्साइड और अन्य गैसों के संकेंद्रण के बढ़ जाने से हरित गृह प्रभाव पैदा होता है। इससे भी वायुमंडल के तापमान में वृद्धि होती है। इन गैसों के कारण नगरों में धूम-कुहरा छा जाता है। इसे नगरी धूमकुहरा कहते हैं। यह मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। वायु प्रदूषण से 'अम्ल वृष्टि' भी हो सकती है। नगरीय पर्यावरण के वर्षा जल के विश्लेषण से पता चला है कि ग्रीष्म ऋतु के बाद पहली वर्षा में पी एच मान बाद की वर्षा की तुलना में कम होता है। एन ई ई आर आई द्वारा किए गए परीक्षणों के अनुसार कोच्चि का पी एच मान सबसे कम 4.5 था, जबकि सभी नगरीय संकुलों की वर्षा के जल का पी एच मान 6.2 और 7.6 के मध्य था।

वायु प्रदूषण से फेफड़ों, हृदय, स्नायु तंत्र और परिसंचरण तंत्रों के रोग होते हैं। सन् 1994 में कोलकाता और उसके आस-पास की वायु का परीक्षण किया गया था। इस परीक्षण के निष्कर्ष के अनुसार नगर के चार में से तीन व्यक्ति सांस की किसी न किसी बीमारी जैसे– खांसी और श्वास नली शोथ (ब्रोनकाइटिस) से पीड़ित थे। इन रोगों का संबंध वायु में निलंबित कणिकीय पदार्थों से था। वायु प्रदूषण का सबसे अधिक खतरा बच्चों को होता है, क्योंकि इसका सीधा प्रभाव फेफड़ों पर पड़ता है। इससे मनोवैज्ञानिक और शारीरिक हानियां भी होती हैं।

जल प्रदूषण

जनसंख्या वृद्धि और औद्योगिक विस्तार के परिणामस्वरूप पानी की मांग भी बढ़ी है, जिसके कारण जल की गुणवत्ता काफी घट गई है। जब मनुष्य द्वारा जल से इसकी स्वयं शोधन क्षमता से अधिक मात्रा में विजातीय अवांछनीय तत्व डाल दिए जाते हैं, तब जल प्रदूषित हो जाता है।

यद्यपि जल के प्रदूषक प्राकृतिक स्रोतों (अपरदन, भूस्खलन, पेड़-पौधों और जीव जंतुओं की सड़न और विघटन आदि) से भी प्रदूषक उत्पन्न होते हैं, लेकिन मानव जन्य स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषण गंभीर चिंता के कारण हैं। जल प्रदूषण के स्त्रोत हैं–औद्योगिक स्रोत, नगरीय स्रोत, कृषि-स्रोत, सांस्कृतिक स्त्रोत आदि।

उद्योग उत्पादों के अलावा अपशिष्ट जैसे अवांछनीय उत्पादों का उत्पादन करते हैं। ये अवांछनीय उत्पाद हैं– औद्योगिक अपशिष्ट, प्रदूषित अपशिष्ट जल, विषैली गैसें, रासायनिक अवशिष्ट, अनेक भारी धातुएं, धूल, धुआं आदि। अधिकतर औद्योगिक अपशिष्ट प्रवाहित जल में बहा दिए जाते हैं। परिणामतः विषैले तत्व जल के भंडार, नदियों, तथा अन्य जलाशयों में पहुंच कर इसके जैवतंत्र को नष्ट कर देते हैं। जल को प्रदूषित करने वाले मुख्य उद्योग– चमड़ा, लुगदी और कागज, वस्त्र तथा रासायनिक उद्योग हैं।

नदियों का प्रदूषण

तीव्र गति से होने वाले नगरीकरण और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप भारी मात्रा में अपशिष्ट जल नदियों में पहुंच रहा है। गंगा कार्य योजना के प्रारंभ होने से पूर्व गंगा में प्रतिदिन 87.3 करोड़ लीटर प्रदूषित जल बहाया जाता था। साबरमती एक छोटी-सी नदी है। इसमें भी अहमदाबाद शहर का 99.8 करोड़ लीटर गंदा पानी प्रतिदिन डाला जाता है।

प्रदूषित जल के नगरीय स्रोत ये हैं– मल जल, घरेलू तथा नगर पालिका का कचरा, औद्योगिक अपशिष्ट, मोटर वाहनों का धुआं आदि। कुछ उदाहरणों से नगरीय अपशिष्टों के नदियों में बहाव की विकरालता का अनुमान लगाया जा सकता है। कानपुर महानगरीय क्षेत्र में स्थित चमड़े के 150 कारखाने गंगा में प्रतिदिन 58 लाख लीटर अपशिष्ट जल बहाते हैं। दिल्ली के निकट यमुना तो एक गंदा नाला बन

सारणी 15.4 — गंगा और यमुना नदियों में प्रदूषण के स्रोत

नदी और राज्य	प्रदूषित भाग	प्रदूषण का स्वरूप	अतिशोषण द्वारा प्रमुख प्रदूषक
गंगा (उत्तर प्रदेश)	(i) कानपुर के नीचे का भाग (ii) वाराणसी के नीचे (iii) फरक्का बराज से इलाहाबाद तक	(i) कानपुर जैसे नगरों से औद्योगिक प्रदूषण (ii) नगरीय केंद्रों से घरेलू अपशिष्ट (iii) नदी में लाशों का प्रवाह	कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी पटना और कोलकाता नगरों से घरेलू अपशिष्ट नदी में बहा दिए जाते हैं।
यमुना (उत्तर प्रदेश)	(i) दिल्ली से चंबल के संगम तक (ii) मथुरा और आगरा	(i) हरियाणा और उत्तर प्रदेश द्वारा प्रदेश द्वारा सिंचाई के लिए जल की निकासी (ii) कृषीय अपवाह के परिणामस्वरूप यमुना में सूक्ष्म प्रदूषकों का उच्च स्तर (iii) दिल्ली के घरेलू और औद्योगिक अपशिष्टों का नदी में प्रवाह	दिल्ली नगर अपना घरेलू अपशिष्ट यमुना में प्रवाहित करता है।

स्रोत : *सिटीजन 5वां रिपोर्ट, 1999*

कर रह गई है। यमुना में 17 खुले गंदे नालों के द्वारा प्रतिदिन 32.3 करोड़ गैलन मल जल डाला जाता है। गंगा में प्रतिदिन गंदा और प्रदूषित जल डालने वाले गंदे नाले ही गंगा को अपवित्र करने वाले प्रमुख अपराधी हैं। गंगा की कुल लंबाई 2555 कि.मी. है। इसकी कुल लंबाई में से 600 कि.मी. का भाग बुरी तरह से प्रदूषित हो गया है। औद्योगिक और नगरीय स्रोतों से जल प्रदूषण के उदाहरण के रूप में गंगा और यमुना के नाम लिए जा सकते हैं (सारणी 15.4)।

अजैव उर्वरकों, पीड़क नाशकों और खरपतवार नाशकों में प्रयुक्त अनेक प्रकार के रसायनों से प्रदूषण फैलता है। ये रसायन बहकर नदियों, झीलों और तालाबों में चले जाते हैं। ये रिसकर जल में भी पहुंच जाते हैं। उर्वरक पृष्ठीय जल में नाइट्रेट की मात्रा को बढ़ा देते हैं। तीर्थ यात्राओं, धार्मिक मेलों, पर्यटन आदि जैसी सांस्कृतिक गतिविधियों से भी जल प्रदूषण होता है। भारत में पृष्ठीय जल के लगभग सभी स्रोत संदूषित तथा मानव के उपभोग के अयोग्य हैं।

संदूषित जल के कारण सामान्य रूप से उत्पन्न होने वाली बीमारियां ये हैं– अतिसार, रोहा, आंतों के कृमि, पीलिया, आदि। विश्व बैंक और विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में एक-चौथाई संक्रामक रोग जल से पैदा होते हैं।

भूमि प्रदूषण

भूमि प्रदूषण में ह्रास और मृदा तथा वनस्पति के आवरण का प्रदूषण शामिल है। मृदा की गुणवत्ता के घटने के ये कारण हैं–मृदा अपरदन, पौधों के पोषक तत्वों में कमी, मृदा में सूक्ष्म जीवों का घटना, नमी की कमी, विभिन्न हानिकारक तत्वों का संकेंद्रण आदि। अपरदन प्राकृतिक और मानवीय दोनों प्रकार के कारकों से होता है। निर्वनीकरण, अतिचराई और भूमि का अनुचित उपयोग भी अपरदन की गति को तेज कर देते हैं। एक अनुमान के अनुसार देश की 13 करोड़ हेक्टेयर भूमि अपरदन की समस्याओं से पीड़ित है। केवल स्थानांतरी कृषि के कारण ही तीन करोड़ हेक्टेयर भूमि अपरदन से प्रभावित है। अपरदन के अतिरिक्त, मृदा के लवणीकरण और जल भराव के निम्नलिखित कारण हैं– भूविज्ञान की दृष्टि से अनुपयुक्त क्षेत्रों में बांधों, जलाशयों, नहरों और तालाबों का निर्माण, नहरी सिंचाई का अत्यधिक उपयोग और अप्रवेश्य चट्टानों वाले क्षेत्रों में बाढ़ के पानी का रूख मोड़ना। इनके द्वारा भूमि की संभावित क्षमता घटती है। अति सिंचाई के कारण देश के उत्तरी मैदानों में लवणीय और क्षारीय क्षेत्रों में वृद्धि हुई है। सिंचाई मृदा की संरचना को भी बदल देती है। इनके अलावा, रासायनिक उर्वरक, पीड़कनाशी, कीट-नाशी और शाक-नाशी मृदा के प्राकृतिक, भौतिक रासायनिक और जैविक गुणों को नष्ट करके, मृदा को बेकार कर देते हैं। रासायनिक

सारणी 15.5 — भारत : नगरपालिकाओं द्वारा जनित ठोस अपशिष्टों की प्रति व्यक्ति तथा कुल मात्रा

जनित अपशिष्ट	*1971*	*1981*	*1991*	*1997*
प्रति व्यक्ति (ग्राम/प्रतिदिन)	375	430	460	490
कुल अपशिष्ट (टन/प्रतिदिन)	14.9	25.1	43.5	48.1

उर्वरक मृदा के सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देते हैं। ये जीव मृदा में नाइट्रोजन परिवर्तन का कार्य करते हैं। ये अनुर्वरता में वृद्धि करते हैं तथा मृदा की जलधारण क्षमता को घटा देते हैं। इनके कुछ अंश फसलों में चले जाते हैं, जो मानव के लिए धीमे विष का कार्य करते हैं। इसी प्रकार कीड़ों को मारने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले कार्बनिक फास्फेट के यौगिक मृदा में लंबी अवधि तक बने रहकर उसके सूक्ष्मजीवों को नष्ट करते रहते हैं।

औद्योगिक और नगरीय अपशिष्टों का अनुचित निपटान तथा नगरीय और औद्योगिक क्षेत्रों के निकट प्रदूषित मल जल से की गई सिंचाई भी मृदा का ह्रास करती है। उद्योगों और नगरों के अपशिष्टों के विषैले रासायनिक पदार्थ आस-पास के क्षेत्रों की मृदा में मिलकर उसे प्रदूषित कर देते हैं। इसके अलावा कारखानों तथा अन्य स्रोतों को चिमनियों से निकलने वाले गैसीय और ठोस कणिकीय प्रदूषकों को उड़ाकर हवा सुदूर क्षेत्रों तक ले जाती है। विषैले पदार्थों से युक्त ये प्रदूषक मृदा में मिलकर उसे प्रदूषित करते हैं। कारखानों से निकलने वाली गंधक अम्लीय वर्षा का कारण है। इससे मृदा में अम्लता बढ़ती है। कारखानों और सीमेंट के चूना बनाने वाली भट्टियों, कोयले की खानों, मोटर वाहनों, ताप बिजली घरों आदि से भारी मात्रा में निकलने वाले कणिकीय पदार्थों के द्वारा मृदा का बड़े पैमाने पर प्रदूषण होता है।

नगरीय अपशिष्टों के निपटान की समस्याएं : नगरों की पर्यावरणीय समस्याओं में जल, वायु और शोर प्रदूषण तथा विषैले और खतरनाक अपशिष्टों का निपटान शामिल है। मानव मल के सुरक्षित निपटान के लिए (सीवर) या अन्य माध्यमों की कमी और कूड़ा-कचरा संग्रहण की सेवाओं की अपर्याप्तता जल प्रदूषण को बढ़ाती है, क्योंकि असंग्रहीत कूड़ा-कचरा बहकर नदियों में चला जाता है। नगरीय केंद्रों और उनके आस-पास सकेंद्रित औद्योगिक इकाइयों से अनेक पर्यावरणीय समस्याएं पैदा हो गई हैं। औद्योगिक अपशिष्टों का नदियों में बहाया जाना जल प्रदूषण का मुख्य कारण है। नगर-आधारित उद्योगों और अनुपचरित मलजल से उत्पन्न प्रदूषण नीचे की ओर के नगरों में स्वास्थ्य की गंभीर समस्याएं पैदा करता है।

नगरों में ठोस अपशिष्ट की प्रति व्यक्ति और कुल मात्रा दोनों ही बढ़ रही हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि देश के नगरीय क्षेत्रों में अपशिष्टों का जनना प्रति व्यक्ति निरंतर बढ़ रहा है। 1971-97 की अवधि में यह 375 ग्राम प्रतिदिन से बढ़कर 490 ग्रा. प्रतिदिन हो गया है। अपशिष्ट जनन में वृद्धि तथा इसके साथ ही जनसंख्या वृद्धि ने अपशिष्टों की कुल मात्रा को प्रकट करने वाली संख्याओं को बहुत बढ़ा दिया है (सारणी 15.5)।

यही नहीं, ठोस अपशिष्टों में जैव प्रक्रियाओं से सड़ने-गलने जैव विघटनीय, जैव पदार्थों का स्थान प्लास्टिक और अन्य कृत्रिम पदार्थ लेते जा रहे हैं, जिनके विघटन में बहुत अधिक समय लगता है (सारणी 15.6)। जब इस ठोस अपशिष्ट का संग्रहण और निपटान सक्षम तथा प्रभावशाली ढंग से नहीं किया जाता है, तो इस पर कुतरने वाले जीव और मक्खियां मंडराने लगते हैं, जो बीमारियां फैलाते हैं। यह भूमि और जल संसाधनों का प्रदूषण और ह्रास भी करता है।

सारणी 15.6 — भारत : नगर जनित ठोस अपशिष्टों का संघटन (प्रतिशत में)

अंग / **वर्ष**	*कागज*	*प्लास्टिक*	*धातुएं*	*कांच*	*चिथड़े*	*राख और धूल*	*कुल विघटनीय*
1971-73(40 नगर)	4.14	0.69	0.60	0.40	3.83	49.20	41.24
1995 (23 नगर)	5.78	3.90	1.10	2.10	3.50	40.30	41.80

सारणी 15.6 से स्पष्ट है कि समय के अनुसार प्लास्टिक, कांच और धातुओं की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 20 वर्षों में प्लास्टिक में पांच गुनी वृद्धि दर्ज की गई है। इसमें से अधिकतर का कोई पुनश्चक्रीय मूल्य नहीं है। अतः नगरपालिकाओं द्वारा इसका रसोई के कचरे के रूप में निपटान कर दिया जाता है।

ठोस अपशिष्टों के संग्रहण में असमर्थता एक गंभीर समस्या है। मुंबई, कोलकाता, चेन्नई और बैंगलौर जैसे नगरों में 90 प्रतिशत ठोस अपशिष्ट इकट्ठा कर लिया जाता है। लेकिन अधिकतर नगरों और कस्बों में जनित अपशिष्टों का 30 से 50 प्रतिशत भाग का संग्रहण नहीं किया जाता। सड़कों, घरों के बीच की खाली भूमि और बेकार भूमि पर इसके ढेर लग जाते हैं। ऐसे ढेर स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा हैं। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि ठोस अपशिष्टों के संग्रहण में सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं दोनों कार्य कर रही हैं, लेकिन नगरीय अपशिष्टों के निपटान की समस्या अभी तक सुलझ नहीं पाई है। इन अपशिष्टों को संसाधन मानकर इनका उपयोग ऊर्जा और खाद उत्पादन के लिए किया जाना चाहिए ।

नागरिक अधिकारियों द्वारा संग्रहीत नगरपालिका के लगभग 90 प्रतिशत अपशिष्ट अनुपचरित रूप में ही, नगर या कस्बों के बाहर निम्नभूमि में डाल दिए जाते हैं। परिणामस्वरूप भारी धातुएं, भौमजल में मिलकर उसे पीने अयोग्य बना देते हैं। अनुपचरित अपशिष्ट धीर-धीरे सड़ते हैं। इस सड़न की प्रक्रिया के दौरान हानिकर जैव गैसें निकलकर वायुमंडल में फैल जाती हैं। इसमें मीथेन गैस (65 से 75 प्रतिशत) भी होती है जो हरित गृह प्रभाव उत्पन्न करने वाली गैस है। कार्बन ऑक्साइड की तुलना में इस गैस में भूमंडलीय तापन की 34 गुनी क्षमता है।

निष्कर्ष

वस्तुओं के उत्पादन और उपभोग की प्रक्रिया में मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करता है और जैव मंडल में प्रदूषण छोड़ता है। मानव की इस प्रक्रिया का पर्यावरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का अतिशोषण करके लोग अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं। औद्योगीकरण और नगरीकरण विकास के वर्तमान स्वरूप के स्वाभाविक परिणाम हैं। इनसे पर्यावरण ह्रास और प्रदूषण की गति तेज हो गई है। विगत कुछ दशकों में विकास के क्रियाकलापों ने इन समस्याओं को असाधारण रूप से गंभीर बना दिया है। आज हमें विकास के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। न तो हम विकास की उपेक्षा कर सकते हैं और न ही अपने अस्तित्व के आधार अपने आवास (पर्यावरण) को ही मिटा सकते हैं। अब सतत पोषणीय विकास की दिशा में बढ़ना अनिवार्य हो गया है। इस विषय में गांधी जी ने जो कहा था उसे हमें सदैव याद रखना चाहिए "यह पृथ्वी प्रत्येक की आवश्यकता को पूरा करने में तो समर्थ है, पर किसी के लालच को नहीं पूरा कर सकती है।" अब समय आ गया है कि हम विकास संबंधी नीतियों पर पुनर्विचार करें और आवश्यकता आधारित अर्थव्यवस्था का निर्माण करें। इसी से मानव गरीबी और पर्यावरणीय प्रदूषण की जुड़वां समस्याओं का समाधान हो सकता है।

अभ्यास

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित के संक्षेप में उत्तर दीजिए :
   - (i) गरीबी किसे कहते हैं?
   - (ii) भारत में कितने प्रतिशत लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं?
   - (iii) उन दो राज्यों के नाम बताइए, जिनमें गरीबी का अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक है।
   - (iv) उन चार राज्यों के नाम बताइए, जिनमें गरीबी का अनुपात 10 प्रतिशत से कम है।

रीबी सूचकांक

तैयार करने में उपयोग किया जाता है।

(vi) प्रदूषण की पहचान करने के लिए उपयुक्त कसौ का नाम

(vii) प्रदूषण और प्रदूषकों में क्या अंतर है?

(viii) भारत में नगरीय अपशिष्टों के निपटान से संबंधित प्रमुख समस्याओं की चर्चा कीजिए।

2. वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिए।

3. वायु प्रदूषण का मानव स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

4. भारत में जल प्रदूषण के स्वरूप का वर्णन कीजिए।

5. देश में भूमि प्रदूषण कम करने के उपाय सुझाइए।

परियोजना कार्य

6. (क) आपके पड़ौस में पर्यावरणीय प्रदूषण का क्या स्वरूप है? इसकी पहचान कीजिए।

(ख) प्रमुख प्रदूषकों के बारे लिखिए तथा उनके नियंत्रण के उपाय सुझाइए।

bulk of the contributors from India to the **Perspectives** in Education. Further one of the criteria for assessment of the Teachers' & Scholars' performance is the number of publications to their credit. Hence they are motivated to write more number of articles to the journals.

4.2.3. Distribution of Contributors: Position-wise

The contributors to the Perspectives in Education are from the different hierarchal status of the Universities, Research Institutions, Colleges, and other Bodies.

Table - 14 reveals that there are contributors to Perspectives in Education from the highest level of Director, Rector, Dean, etc., to the level of M.Phil Student (Research Scholar). The maximum representation is from the category of Lecturers accounting for 36.81% of the total number of contributors. This may be explained due to the fact that Lecturers and Research Scholars pursuing their doctoral studies have the motivating factors such as promotion, future prospects, etc. It was already pointed out that there are eminent Educationists and Former Vice-Chancellors' in the rank of the contributors to Perspectives in Education. Thus to get an article published in the Perspectives in Education may be viewed by Lecturers, Teachers and Research Scholars, a symbol of academic status.

TABLE - 14

Distribution of Contributors: Position-wise

S.No.	Position	No. of Contributors	Percentage
1.	Director	8	5.56
2.	Rector	1	0.70
3.	Dean	2	1.40
4.	Principal	1	0.70
5.	Professor	18	12.50
6.	Associate Professor	7	4.86
7.	Secretary to Government	2	1.40
8.	Fellow	4	2.78
9.	Project-Chief	2	1.40
10.	Reader	12	8.33
11.	Lecturer, Senior Lecturer, Assistant Professor	53	36.81
12.	Research Scholar	19	13.19
13.	School Teacher	4	2.78
14.	Senior Scientist	1	0.70
15.	Coordinator	1	0.70
16.	Writer (Journal Article)	1	0.70
17.	Not Classified	7	4.86
	Total	144	100.00

4.3.ANALYSIS OF CITED REFERENCES

This section deals with the analysis of references cited by the contributors to **Perspectives in Education** in their articles. The analysis of citations is based on the theory that there is a formal and subject based relationship between a source paper and the bibliographic references cited by it.

The analysis of the distribution of citations by such characteristics as Quantity, Form and Age provides certain interesting conclusions.

4.3.1. Distribution of Cited References by Quantity:

As pointed out earlier in the introduction, an author cites another work or author for a variety of reasons. The citing article and the cited reference are related to each other through the subject area or the nature of treatment. The cited reference augments or supports the conclusions of the citing author; it may just be a sort of acknowledgement for using the views, methodology of the author of the cited paper; it may be for further building up or the extension or elaboration of the earlier work.

The journal article is often evaluated on the basis of how many references have been cited and what reference in a specialised area is cited by authors frequently. While the former points to the comprehensive literature analysis by an author, the latter proves the popularity of the frequently cited reference, its author or the work wherein the cited reference appears. There is increasing tendency on the part of the authors to cite more number of references in their paper.

With regard to the journal **Perspectives in Education**, every article ends with a fairly long list of references. While the distribution of such cited references will be considered next, a knowkedge of the sheer quantity of such citations and the average number of citations per article will be interesting. There are 3238 references cited by the 146 articles that were published in the **Perspectives in Education** during seven years of its publication. The year-wise break-up of the total number of cited references is given in Table - 15.

TABLE - 15

Distribution of Cited References by Quantity

Volume No.	Year	No. of Cited References	Percentage
Vol.1	1985	383	11.83
Vol.2	1986	457	14.11
Vol.3	1987	290	8.96
Vol.4	1988	390	12.04
Vol.5	1989	434	13.40
Vol.6	1990	761	23.50
Vol.7	1991	523	16.16
	Total	3238	100.00

It can be seen from the table that there is an increasing tendency on the part of the authors to cite more references in their articles except in 1987 and 1991 where the trend is disturbed to some extent.

4.3.2. Distribution of Cited References by Form:

The analysis of the citations shows that the citations are drawn from various sources - Books, Journals, Theses, Reports & Records, and so on. Some references are of explanatory nature, explaining a point in detail separately under the references, as such a detailed explanation in the

body of the article may sometimes drift the attention of the reader from the main point under consideration.

Apart from the Forms of literature cited above, references may be to radio broadcasts, interviews, telecast, etc. Our analysis of the cited references by Form is concerned with the Form under Books, Journals, Theses (Masters), Theses (Ph.D Level), Reports and Records, and Explanatory only.

It is obvious that references from Books are far more than the citations in other categories listed above. 48.95% of total citations are from Books as against 19.15% from journals which come next. Basically, a journal article carries information in a narrower field and is more relevant to research. But books aim at a comprehensive study of a subject; it is concerned with older information; more slanted to historical approach.

TABLE - 16

Distribution of Cited References by Form

Volume No.	Year	Number of Cited References in							Total
		Books	Jnls.	MTheses	PTheses	Rep&Rec	Expln.	Misc	
Vol.1	1985	178	54	3	8	86	38	16	383
Vol.2	1986	196	67	4	89	75	25	1	457
Vol.3	1987	126	57	10	26	57	14	-	290
Vol.4	1988	254	49	4	6	65	12	-	390
Vol.5	1989	193	98	7	5	110	21	-	434
Vol.6	1990	436	185	10	41	70	19	-	761
Vol.7	1991	202	110	8	101	89	13	-	523
Total No.		1585	620	46	276	552	142	17	3238
Total %		48.95	19.15	1.42	8.52	17.05	4.39	0.52	100

It has been established by a number of studies that authors of articles in journals in Scientific disciplines cite more references from journals.

Figure 4
DISTRIBUTION OF CITED REFERENCES BY FORM
2000
1500
1000
500
0
Number of References
Books
Journals
Theses
Rep & Rec
Expln.
Misc.
Form of Literature
1991
1990
1989
1988
1987
1986
1985
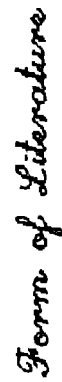
Paul Mohan Roy's study (1985) on the citation pattern of Indian Contributors to Physics Literature shows that 95% of the cited references in the three base years 1971, 1976 and 1981 were from journals. Books occupied only the fourth place with negligible percentage of cited references. While use of Theses was also very much minimum, there was an increasing trend from 1.02% in 1971; 1.97% in 1976; and 2.11% in 1981. An analysis of the citation pattern of authors in the Indian Journal of Physics by Gupta (1969) gives the figures as 82% for Journals and only 14% to non-serial publications, like Books, Reports, etc. A number of studies corroborate the above conclusions so far as Scientific Periodicals are concerned.

With regard to the **Perspectives in Education**, citations are more from books than from other forms. The authors' habit of citing more from Journals in scientific Periodicals is concluded as due to their concern for recent and up-to-date information in the Scientific disciplines. If so, are not the scholars and specialists in Education writing articles for Perspectives in Education not concerned with latest information and its treatment by a specialist in Journals? It is a matter to be studied, not in isolation, in one journal alone but in an elaborate manner, investigating the pattern in many journals in the field of Education.

There are 1.42% references from Theses (Master's level) and 8.52% from Ph.D. level. Explanatory references account for 4.39%.

The 620 references from journal literature are scattered over 211 journals belonging to different countries and subjects. Out of the 211 journals, 124 journals have got only one citation; the maximum number of citations from journal literature are from **Indian Adult Education** numbering 44 followed by **Review of Educational Research** 18, **Journal of Curriculum Studies** and **Indian Journal of Social Work** 14 each, **Comparative Education** and **University News** 12 each **Economic and Political Weekly** 11 etc.

33.38% of the cited references from journal literature are from 17 journals while the remaining 66.62% are from 194 journals.

The journal under investigation, **Perspectives in Education** has drawn only four references, in the course of its 7 years of publication, from its contributors.

4.3.3. Distribution of Cited References by Age:

The difference between the year of publication of the cited references and that of the citing document is the Age of the Citations.

The analysis of the citations with regard to Journal references only by the characteristic 'Age' yielded interesting conclusions. The Age of the cited references range from 0 to 75 years. According to Price, references to literature may be classified as belonging to Research Front and Archival Front on the basis of their age. References to recent literature form the Research Front and references to older literature constitute Archival Front. In the Scientific Periodicals, references with 0-2 or 0-3 years of Age are taken as belonging to the Research Front and references to Literature with 15 years and above ages are taken as those of Archival Front.

Now applying the same criteria in the case of cited references in Perspectives in Education, 20.31% fall in Research Front i.e., within 3 years. 21.72% of cited references fall in the category of Archival Front, i.e., more than 15 years.

TABLE - 17

Distribution of Cited References by Age

Age in Years	No. of Citations	Percentage
0 - 3	116	20.32
4 - 7	179	31.35
8 - 11	104	18.21
12 - 15	48	8.40
16 - 19	39	6.83
20 - 23	23	4.03
Above 24	62	10.86
Total	571	100.00
Age not mentioned in the Citations	49	

It is concluded that contributors to **Perspectives in Education** cited more references from rather 'aged' journals i.e., from the Archival Front (21.72%) than from the Research Front (20.31%) though the difference is only marginal. However, 78.28% of the journal references are having a citation age of less than 15 years.

CHAPTER V

SUMMARY & CONCLUSIONS

CHAPTER V

SUMMARY & CONCLUSIONS

5.0. INTRODUCTION

Modern era is experiencing an information explosion due to the rapid proliferation of knowledge in all disciplines. The mass of information generated by the information explosion has to be systematically recorded and organised for prompt and expeditious dissemination to the researchers and subject experts.

The periodical literature such as, Journals, Serials, Transactions, Bulletins, Proceedings, etc., has a major role to play in catering to the needs of the information thirsty researchers. The journals and the journal articles carry mostly primary information conveying the nascent and the latest ideas in any field. The journals act as a principal medium of communication between the researchers. They offer a forum for the continuous critical examination of the latest thoughts in every field.

According to **Ulrich's International Periodical Directory** 26th edition, there are 70,800 journals in 542 subject areas. The growth of periodical literature in the

field of education is also very high. In India, there are 156 Periodicals listed in the Directory of Periodicals Published in India (1991).

The Journal Perspectives in Education is the subject matter of the present study using Bibliometric Techniques.

5.1. BIBLIOMETRY

The bibliometric study is an emerging thrust area of research involving researchers from different disciplines. It involves the application of Mathematical and Statistical Methods to books and other media of communications. The various bibliographic variables of a document-Author, Title, Content Area, Citations- are analysed by applying simple Mathematical and Statistical methods. The unit of analysis here is the document and its characteristics, and not the user. It is emerging as a tool of research which can reveal important patterns in the literature of a discipline and provide a map of the field of study.

5.2. REVIEW OF RELATED LITERATURE

Literature survey reveals that from its advent in 1917 by Cole and Eales, more than 2000 items have been identified in Bibliometric study, even as on 1980. The review has

revealed that most the studies are based on straight forward counting and applications of simple Mathematical and Statistical methods. There are conceptual studies, empirical studies, theoretical modelling and application oriented studies. Most of the studies are on Citation Analysis and very large number are with regard to the scientific disciplines. The Bibliometric techniques are used for the following:

i) to quantify the growth of a discipline and its sub-areas and the growth of literature in a field;

ii) to rank individual Authors, Periodicals, Institutions etc.;

iii) to assess the productivity of an Author, Scientist, Organisation, Nation etc.;

iv) to study authorship trends;

v) to identify core periodicals in a discipline and help in the acquisition policy of libraries;

vi) to identify the pattern of referencing by authors;

vii) to develop norms of standardisation etc.

This study is unique in that Bibliometric technique is applied to a specific journal in Education, published in

India and the coverage is comprehensive with analysis of contributions, contributors and the cited references with one of the objectives being to assess whether the journal has realised its set objectives.

5.3. STATEMENT OF THE PROBLEM

The present investigation is "A Bibliometric Study of "Perspectives in Education". It is a journal published by the Society for Educational Research and Development, Baroda. The Seven Volumes of the Journal comprising 28 Issues published during 1985-91 were analysed with regard to the Bibliographical characteristics of

(A) The Contributions:

Distribution of the Contributions Category-wise; Inter-disciplinarity wise; on the basis of the Content-area of the articles as per Buch's Classification; Productivity of Authors; Authorship trend; and the Time-lag between the receipt of manuscript and its publication in the journal.

(B) The Contributors:

Distribution of the Contributors Geographically and Sex-wise; their distribution on the basis of the Institutions to which they are affiliated and the positions held by them.

(C) The Cited References on the basis of their Quantity, Form and Age.

5.4. OBJECTIVES & HYPOTHESES

The objectives of the above mentioned analyses were:

(1) To assess whether the Perspectives in Education has realised its objectives by finding out quantitatively:-

i) how far the contributions published in the Perspectives in Education are Inter-disciplinary;

ii) the extent of involvement of Third World countries in the contributions;

iii) the Category-wise contributions viz., in the categories of Issues & Trends, Research, Communication, Comments & Criticism and Review.

(2) To find out the dispersion of the content areas of the contributions as per the Buch's Classification of Subject-areas in his IV Survey of Research in Education and thereby ascertain the areas which attract more attention from the contributors and the areas which show 'gaps', if any.

(3) To calculate the average Time-lag between the receipt of Manuscript and its Publication in Perspectives in Education.

(4) To explore the trend towards multiple authorship with reference to the contributions in Perspectives in Education.

(5) To find out the Productivity of Authors Contribu ting to Perspectives in Education in the course of its 7 years of Publication.

(6) To analyse the Contributors with regard to their:-

i) Country

ii) If Indian, State

iii) Sex

iv) Institutional Affinity; and

v) Position

and assess their contributions quantitatively on the basis of above factors.

(7) To carry out an analysis of the Cited References with regard to their distribution:-

i) By Quantity;

ii) By Form; and

iii) By Age

soas to find out whether any pattern could be seen in the citations of the contributors to Perspectives in Education and whether the result is comparable to the results of earlier studies on Cited References in Scientific Periodicals.

The various Hypotheses made were:

(1) The Journal Perspectives in Education has realized its objectives as :-

i) majority of contributions are inter-disciplinary (or) multi-disciplinary;

ii) contributions from Third World Countries are significant;

iii) Perspectives in Education is an effective forum for dialogue and debate among scholars & educationists.

(2) There is correlation between the dispersions of the content areas of the articles in Perspectives in Education and the trend depicted in the IV Survey of Research in Education.

(3) There is an increasing trend towards multiple authorship.

(4) Authors of the articles in Perspectives in Education prefer to cite more from Journals.

(5) Cited References from Journals are of recent origin.

(6) The Time-lag between the receipt of manuscript and its publication in Perspectives in Education is very high.

5.5 METHODOLOGY

The Bibliometric analysis was carried out collecting all the required data on Author, Content Area, the Third World Country focussed, details of the Contributors and those of the Cited References from the 28 issues of the Perspectives in Education which formed the entire population.

A PC-AT was utilised to create two Data-bases for storing, sorting, collecting and tabulating the data. The data was converted into percentages. In the case of the dispersion of the content-area of the articles in Perspectives in Education vis-a-vis the number of studies in Buch's IV Survey (1981-88) Spearman Rank Correlation

Coefficient was found out to assess the correlation. In the case of Time-lag, weighted Arithmetic Mean index was calculated. Bar diagrams and Pie-charts were also used.

5.6 FINDINGS OF THE STUDY

5.6.1 Analysis of the Contributions

(A) Category-wise Distribution:

The Category Issues & Trends has attracted the major attention of the scholars. 44.44% of the contributions belong to this category. Reviews occupy 26.27%; Research 24.24%; Communication 5.05% and Comments & Criticism NIL.

The study shows that one of the contemplated categories, namely, Comments & Criticism has not drawn any response from the scholars, specialists or general readers. This area was meant to provide a forum for active debate and dialogue among the educationists. Therefore it is concluded that the readers have not taken to the contributions as seriously as expected.

An interaction between the readers and the contributors on the basis of the contributions would have led to more fruitful out-put from the contributors.

(B) **Inter-disciplinarity:**

85.25% of the articles are inter-disciplinary or multi-disciplinary viewing the educational issues and problems from Economic, Sociological, Historical, Psychological, Methodological and Philosophical perspectives. The articles also discuss education from the view points of Women, Mass-media, Technology, Peace-Science, etc.

It is concluded that the journal is encouraging articles of inter-disciplinary character on the basis of the quantity and diversity of the inter-disciplinary articles.

(C) **Focus on Third World Countries:**

125 of the 146 articles, focus attention on educational issues related to the Third World. That is, 85.62% of the contributions are about the conditions prevailing in Third World Countries.

(D) **Dispersion of the Content-area of the Articles:**

There is positive correlation between the dispersion of the the subject areas of the contributions in the Perspectives in Education and the studies reported in the IV Survey of Buch (1981-88). Spearman Rank Coefficient value of 0.603 shows that the trend of research studies as

depicted by Buch in his IV Survey is reflected in the articles published in his Perspectives in Education.

The study has helped to find out quantitatively the contribution in each area as per Buch's Classification.

(E) Productivity of Authors contributing to Perspectives in Education:

86.89% of the total of 144 contributors have contributed only one article; 9.66% two articles; 2.07% three articles; 0.69% four articles and another 0.69% six articles.

The conclusion is that the contributors may be further encouraged to contribute more number of articles by offering more number of reprints, issues of the journal, etc.

(F) Time-lag between the Receipt of Manuscript and its Publication in Perspectives in Education:

The time-lag varies from 2 months to 25 months. The weighted Arithmetic Mean of the time-lag is 6.85 months which compares favourably with some journals in Physics and Agriculture. However, in view of the importance of the nascent information to researchers, all possible steps to reduce the time needed for referring and editing may be taken by the publishers.

(G) **Trend of Authorship:**

An overwhelming number of contributions are single authored. 81.5% of the contributions are from single authors; 16.44% by joint authors and 2.15% are from multiple authors.

The trend of authorship in Scientific disciplines is established to be towards multiple authorship thereby indicating more of collaborative research or team research. The trend in Education or more generally in Social Sciences or Humanities may be studied in more detail.

Thus the conclusions drawn from the above analyses are that the journal has realised its objectives with regard to encouraging inter-disciplinary articles and focussing the issues and problems of Education appropriate to Third World countries. It has also achieved its aim of freeing educating from the narrow confines of a purely pedagogic component, as the articles view the problems in Socio-historical and Economic contexts.

With regard to its aim of providing a Forum for active dialogue and debate among the scholars, the readers and contributors have not taken advantage of the forum provided by the journal. Though the negative response from the

readers and the people concerned cannot say that the journal has failed in its aim, yet an interaction between the readers and the contributors would have led to a lively exchange of views and to more fruitful output.

Objectives of the journal are realised with regard to inter-disciplinarity, focus on Third World nations and emphasis on Socio-historical contexts. With regard to the journal providing a Forum for interaction among the scholars, the investigator's assumption is not correct. There is a need for more involvement on the part of the readers and others concerned towards this.

The investigator's assumption that there is an increasing trend towards multiple authorship is not correct as the authorship trend in Perspectives in Education is heavily slanted towards single authorship.

The time-lag between the receipt of manuscripts and their publications in Perspectives in Education was assumed to be very high but study has revealed that it is only 6.85 months which compares favourably with that of some Indian Periodicals in Physics.

5.6.2 Analysis of Contributors

(A) **Distribution of the Contributors Geographically:**

There are contributors from 20 Countries including India. The contributors represent the developed and developing nations of the world. The Indian contributors account for 60.42% and the contributors from abroad 39.58%. The analysis reveals the international character of the contributors and hence that of the journal.

The Indian contributors are from 10 States and one Union Territory with New Delhi topping the list with 28.74% of the Indian contributors followed by the state of origin of the journal, namely, Gujarat with 17.24%. Thus the journal is truly representative of the diverse states of India.

(B) **Distribution of Contributors: Sex-wise:**

The number of Women contributors is small, only 24.31% of the 144 contributors.

(C) **Distribution of Contributors : Institution-wise:**

Among the various types of Institutions, the distribution of contributors is as follows:

Universities 59.03%; Research Institutions 20.84%;
Colleges 10.11%; Government Departments 1.39%;
Schools 2.08%; and Miscellaneous 1.25%.

Universities and Research Institutions have the basic function of promoting research and hence the more number of contributors from these areas is an expected one.

The split-up for the contributors from Indian and Foreign Universities is 43 from India and 42 from abroad which is again a pointer towards the internationality of the journal.

M.S. University, Baroda has contributed the maximum number of Indian contributors from Universities, i.e., 15 out of 43 contributors. Jawaharlal Nehru University comes next with 7 contributors. 18 Universities are represented in the list of contributors.

For the Research Institutions in India, National Institute of Educational Planning & Administration (NIEPA), National Council for Educational Research & Training (NCERT), National Institute of Mental Health & Neuro Sciences (NIMHANS), are the major sources of the contributors in the given order.

It is concluded that the personnel in the Research Institutions and Teachers in Academic Bodies are motivated to write as the number of publications in journals is one of the criteria for assessment of their performance.

(D) Distribution of Contributors: Position-wise:

There are contributors to Perspectives in Education from the highest hierarchical status of Director, Dean, Professor, Rector, to the level of an M.Phil Scholar.

36.81% of the contributors are from the rank of Lecturers (including Senior Lecturers, Asst. Professors, etc.) and this is due to the reason that they have the motivation such as promotion to higher ranks, future prospects, etc.

The presence of former Vice-Chancellors, Eminent Educationists and Award Winners in the rank of the contributors may also be the strong motivating factor for others to write in a journal, as a symbol of academic status.

The list of contributors also includes editors of three journals in the field of education, **Manas; Education, Technology and Human Resources Development**, and **Comparative Educational Review.**

5.6.3 Analysis of Cited References:

(A) **By Quantity:** There are 3238 references cited by the contributors of articles at the end of their articles working out to an average of 22 references per article.

The more number of references in an article is a pointer to the comprehensive nature of the literature survey.

The number of cited references increases every year except for a marginal disturbance during 1987 and 1991.

(B) **By Form:** The analysis of Cited References by Form shows the following distribution:-

Books	- 48.95%	;	Journals	-	19.15%
Theses	- 9.94%	;	Reports & Records	-	17.05%
Explanatory	- 4.39%	&	Miscellaneous	-	0.52%

Thus Books are the major source of references for the contributors of Perspectives in Education. This shows a

drastic difference in the citation pattern of the contributors to Scientific Periodicals and the contributors to Perspectives in Education. It is a factor to be studied in detail with reference to more number of journals in Education and in other disciplines. More cited references from journal literature is taken as a measure of the author's concern for latest and up-to-date information in Scientific disciplines. If that criteria is applied to the cited references in Perspectives in Education, the authors are more inclined to use information from books which treat the subject in a comprehensive manner.

The 620 cited references from Journal literature are scattered in 211 journals. 33.38% of them are represented by 17 journals and the 66.62% by 194 journals. The Journal Perspectives in Education has drawn only 4 references during this period of seven years.

(C) **By Age:** The analysis of the cited references in Journal Form in the Perspectives in Education shows that the age of the references vary from 0-72 years.

In Scientific disciplines, references are considered as belonging to 'Research Front' and Archival Front on the basis of their age. Applying the criteria to the cited references in Perspectives in Education, only 20.32% fall in

the Category of Research Front (age 0-3 years) and 21.72% in the Category of Archival Front. Overall, 78.25% of the cited references are having a citation age of less than 15 years.

Thus, the contributors to **Perspectives in Education** are more concerned with older or obsolete information than recent and latest information. While this should be so for articles with a historical perspective, the number of such articles is only 4.8% of the total contributions.

5.7 EDUCATIONAL IMPLICATIONS

The Journal Perspectives in Education is being published by the Society for Educational Research and Development of the M.S. University, Baroda, with a set of goals and objectives. It wants to be a different journal, not 'yet another journal', the Bibliometric analysis has shown where the journal stands with regard to its aims and objectives. An evaluation of the journal after 7 years of its uninterrupted publication will be useful to the publisher to take decisions on suggestions based on the study. The quantitative method used is in a way an evaluation of the quality of the articles as the study has gone into all the details with reference to the contributions, contributors and cited references. The findings regarding the positive correlation of the trend of

the dispersion of the content areas of the articles with the trend depicted by Buch in IV Survey, the inter-disciplinarity, internationality of the contributors and the other factors will be pointers to the direction of the Journal.

5.8. POINTS FOR FURTHER STUDY

(A) Scope of the present study may be widened by taking into account a number of Indian Journals in Education and a comparative study with an equal number of foreign journals for a given period may be undertaken. Such an analysis may help in arriving at conclusions regarding Multiple Authorship, Citation Pattern, Trend of the dispersion of the Subject-areas, etc.

(B) The contribution of Indian Educationists and Scholars to the literature growth in education, globally may be studied for a period of 10 years. For this reputed abstracting journals like Current Contents may be taken as the base.

(C) The Literature growth in the field of education during 1980's in India and other Countries may be studied in detail.

5.9 . SUGGESTIONS

(A) The journal is truly international in character with 39.58% of the contributors from abroad and its focus is on Third World Countries. The journal has also the ISSN. Hence it will be very useful, if steps are taken to publish the abstracts of the articles in reputed abstracting journals of the world and also indexed in reputed indexing journals like Educational Abstracts, Current Contents, etc.

(B) The journal does not find a place in the world's most comprehensive periodical directory namely **Ulrich's Periodical Directory.** Steps may be taken to include the journal in the Ulrich's Periodical Directory in its next edition.

(C) The journal may continue to give the details of the date of receipt of manuscript at the end of each article. This will facilitate to know the Time-lag between the receipt of manuscript and its publication.

(D) With the present lay-out, the journal is already set to reach its aims and objectives; any change such as restricting a particular issue to a particular theme need

not be contemplated. The present status of the journal covering the general and specific issues in the various areas of education will be more useful.

(E) Efforts may be made to encourage responses from the readers by inviting their Comments and Criticisms at the end of each article or at one or two prominent places in each issue of the journal. Such Comments & Criticisms, worth publishing may be published along with the contributors reply at the earliest.

(F) The contributors may be instructed to furnish all bibliographic information pertaining to the cited references.

5.10. CONCLUSION

Thus, the overall conclusion of this Bibliometric Study of **Perspectives in Education** is that the journal is marching ahead to attain the set goals and objectives. The journal's endeavours to encourage inter-disciplinarity, to focus on issues and problems pertaining to Third World Countries and to free education from the narrow confines of class-room teaching, are meeting with success. The journal deserves more circulation support, but this demands an endeavour on the part of all concerned to free themselves from the notion that anything that is available cheap need

not be taken seriously. The Journal **Perspectives in Education** is providing a wealth of information at an incredibly low subscription rate which itself is an indication of the journal's genuine concern for the Third World.

BIBLIOGRAPHY

1. Best, John W. and Khan, James V. (1986). Research in Education. New Delhi: Prentice Hall of India.

2. Buch, M.B. (Ed.) (1991). Fourth Survey of Research in Education 1983-88. 2 Vol. New Delhi: NCERT.

3. Derrick, T. (1974). "A Review of Three Years for 1968-70", Educational Research, 17:1, p62-5.

4. ———— (1973). "Educational Research: A Three Year Review", Educational Research, 15:2, p94-6.

5. Ebel (Ed.) (1970). Encyclopaedia of Educational Research. Newyork: Macmillan.

6. Encyclopaedia Britannica. Vol.21. Ed.15 (1985). Chicago: University of Chicago.

7. Field, John, et-al. (1991). "Citation Counts and Research Quality in Continuing Education", Journal of Further and Higher Education. 15:2.

8. Furnhamm, A.F. (1990). "Quantifying Quality: An Argument in Favour of Citation Count", Journal of Further and Higher Education, 14:2.

9. Glenn, N.D. (1971). "American Sociologists' Evaluation of Sixty Three Journals", American Sociologist. Vol.6. Nov. p298-303.

10. Gopinath, M.A. (1984). "Current Trends in Information Sources and Communication Media", DRTC Refresher Seminar, 15. Bangalore: DRTC.

11. Grogan, Denis. (1976). Science and Technology: An Introduction to the Literature. London: Clive Bingley.

BIBLIOGRAPHY
(Continued)

12. Gupta, A.K. (1969). "Characteristics of Documents Cited by Indian Physicists: A Case Study", DRTC Seminar. 7. Bangalore: DRTC.

13. India: A Reference Annual 1991. New Delhi: Ministry of I & B, Govt. of India.

14. Jain, T.C. and Goyal, S.P. (1969). "A Study of the Time-lag in Publication of Research Papers in Some Selected Periodicals and Agriculatural and Allied Sciences", **Annals of Library Science and Documentation**, 16:1. p11-14.

15. Meadows, A.J. (1974). **Communication and Science**. London: Butterworth.

16. Moonis Raza. and Nirmal Malhotra. (1991). **Higher Education in India: A Comprehensive Bibliography**. New Delhi: Conept Publishing Company.

17. Pal, S.K. and Saxena, P.C. (Ed.) (1985). **Quality Control in Educational Research**. New Delhi: Metropolitan.

18. Paul Mohan Roy. (1985). "A Bibliometric Analysis and Evaluation of Research Writings by Indian Authors in the field of Physics". Ph.D. Thesis Submitted to Madurai Kamaraj University.

19. **Perspectives in Education**. (1985-91). All Issues in Vol.1-7.

20. Price, T.J. De Sola. (1963). **Little Science Big Science**. Newyork: Columbia University Press.

21. Pritchard, Alan. (1969). "Statistical Bibliography or Bibliometrics", Journal of Documentation, 25:4.

BIBLIOGRAPHY
(Continued)

Sathya Narayana, K. (1992). "What Ails Indian Science Journals", The Hindu, 12.5.92.

Sethu Madhava Rao, P.H. (1992). "Inter-Disciplinary Studies and Higher Education", University News, Vol.XXX No.17.

Sushil Kaur. and Sapra, P. (Ed.) (1991). Directory of Periodicals Published in India. New Delhi: Sapra & Sapra.

Ulrich's International Periodical Directory. (Ed.21). (1982). Newyork: R.R. Bowker Company.

Vaishnav, A.A. and Dharma Purikar, R.G. (1990). "Citation Analysis of the Herald of Library Science", Herald of Library Science, Vol.29: July-October.

APPENDIX - I

FILE STRUCTURE OF PIE.dBF

(created using dBASE III Plus DBMS software)

S.No	Field Name	Field Type	Field Length	Field Decimal	Remarks
1	AUTHOR1	Character	25	0	First Author
2	AUTHOR2	Character	25	0	Second Author
3	AUTHOR3	Character	25	0	Third Author
4	SEX1	Character	1	0	Sex of Author I
5	SEX2	Character	1	0	Sex of Author II
6	SEX3	Character	1	0	Sex of Author III
7	COUNTRY	Character	25	0	Country
8	STATE1	Character	20	0	State of Author I
9	STATE2	Character	20	0	State of Author II
10	INSTTN1	Character	35	0	Institution of Author I
11	INSTTN2	Character	35	0	Institution of Author II
12	POSITION1	Character	25	0	Position of Author I
13	POSITION2	Character	25	0	Position of Author II
14	POSITION3	Character	25	0	Position of Author III
15	VOLUME	Character	5	0	Volume
16	TITLE	Character	75	0	Title
17	BUCHSUBJ	Numeric	2	0	Buch Subject Area
18	INTERDISC	Character	30	0	Interdisciplinary
19	MANCRTYEAR	Character	6	0	Manuscript Date
20	THIRDWORLD	Character	20	0	Third World
21	CATEGORY	Character	20	0	Category

FILE STRUCTURE OF REFPIE.dBF

(created using dBASE III Plus DBMS software)

S.No	Field Name	Field Type	Field Length	Field Decimal	Remarks
1	CODE	C	9	0	Vol/Number/Article No
2	FORM	C	10	0	Form of cited reference
3	YEAR	N	4	0	Year of the cited reference
4	JTITLE	C	50	0	Title of the Journal
5	ORIGIN	C	20	0	Country of Publication